SAHITIY PRICHIY 1969 G.K.V.

साहित्य-परिचय

राष्ट्रभाषा और साहित्य की गतिविधियों का परिचायक पत्र

अप्रैल १९६९

आज विश्वविद्यालय अपनी अवनति के लिए हायर सेकेंडरी स्कूलों को और मिडिल स्कूल प्राइमरी स्कूलों को दोषी सिद्ध करते हैं। प्राइमरी स्कूल लौट कर विश्वविद्यालयों और उच्च शिक्षा-संस्थानों को अपनी दुर्गति के लिए जिम्मेदार बताते हैं क्योंकि शिक्षकों को प्रशिक्षण वहीं से मिलता है। इस प्रकार एक दुर्भेद्य चक्र बन जाता है, और इस बात का फैसला करना कठिन हो जाता कि हम अपना काम कहाँ से शुरू करें। मैं समझता हूं कि हमें अपनी जिम्मेदारी दूसरों पर टालने की यह मनोवृत्ति दूर करनी होगी। सभी क्षेत्र दूषित हैं, और सभी में सुधार करने होंगे। हाँ, एक क्षेत्र निर्दोष है, और कुछ कर सकने की हमारी आशा इसीलिए जीवित है। मैं मानता हूं कि हमारे देश की आधारभूत मानव-सामग्री अभी तक निर्दोष और स्वस्थ है। यह एक शुभ लक्षण है। लेकिन, इसके साथ ही लगा एक क्षेत्र ऐसा भी है जिसमें हमें शीघ्र से शीघ्र परिवर्तन करना ही होगा। आज हमारी सबसे बड़ी समस्या शिक्षक और छात्र के बीच सम्पर्क और सम्प्रेषणीयता के अभाव की समस्या है। इस विषय में सबसे दिलचस्प और सबसे अहम बात यह है कि यह समस्या नई है, पहले नहीं थी। जब हम पढ़ते थे तब यह समस्या नहीं थी। स्वतन्त्रता के बाद से यह समस्या प्रति दिन जटिल ही होती आई है। मैं समझता हूँ कि इसे सुलझाए बिना हम आगे नहीं बढ़ सकते।

—डा० बी० एन० गांगुलि

कुलपति—दिल्ली विश्वविद्यालय

शिक्षा-समस्या विशेषांक
विद्वानों व पाठकों की दृष्टि में

'साहित्य-परिचय' के **शिक्षा-समस्या विशेषांक** की प्रति मिली, अनेक धन्यवाद। सचमुच बहुत अच्छा प्रकाशन है। आप लोगों ने प्रशंसनीय परिश्रम और लगन से इतना मूल्यवान विशेषांक तैयार किया। यों भी मुझे इसका दुख था कि बहुत चाहने के बावजूद मैं इस विशेषांक के लिए कोई लेख नहीं भेज सका पर अब तो इस विशेषांक को देखने के बाद यह दुख द्विगुणित हो गया। अस्तु। मेरी हार्दिक बधाई स्वीकारें।

—डा० बालकृष्ण राव
सम्पादक—'माध्यम', इलाहाबाद

आपका भेजा हुआ साहित्य-परिचय का **शिक्षा-समस्या विशेषांक** प्राप्त हुआ, धन्यवाद। मैंने कई लेख पढ़े। निस्सन्देह बहुत ही उत्तम हैं और प्रधान सम्पादक, सम्पादक तथा लेखक वर्ग सभी बधाई के पात्र हैं।

—प्रो० बैजनाथ शर्मा, उदयपुर

शिक्षा-समस्या विशेषांक प्राप्त हुआ है। इतने बड़े विशेषांक की तो मैंने कल्पना ही नहीं की थी। देखकर चौंक गया। ....इस समय तो इसके कलेवर और विषयों के चयन आदि से प्रभावित होकर यह पत्र लिख रहा हूँ। बधाई स्वीकार हो।

—दयानन्द वर्मा, दिल्ली

आपने देश की सबसे ज्वलन्त समस्या पर विचारणीय सामग्री प्रस्तुत की है। शिक्षा के सभी पहलुओं पर एकत्र सामग्री कहीं इस रूप में भी मिल सकती है—यह जिज्ञासुओं के लिए हर्ष का कारण है। मुझे आशा है कि 'साहित्य-परिचय' अपने विशेषांकों के द्वारा स्थायी महत्व की सामग्री सदैव देता रहेगा। पुनः बधाई।

—सुरेशचन्द्र त्यागी, सहारनपुर

'साहित्य-परिचय' का **शिक्षा-समस्या विशेषांक** यथासमय मिला, धन्यवाद। यह अपने आप में एक अद्भुत ग्रन्थ है जिसमें स्तरीय, सुबोध तथा सर्वतोमुखी सामग्री का समाहार है। इसे यदि शिक्षा का 'ज्ञानकोश' कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। मैं नहीं समझता कि हिन्दी की किसी भी पत्रिका ने शिक्षा पर, आधुनिक तथा वैज्ञानिक ढंग से इतने अच्छे विशेषांक का प्रकाशन किया हो। इसकी हर दृष्टि से प्रशंसा की जानी चाहिए। इसका मुद्रण, कलेवर, मुखपृष्ठ, स्वच्छता तथा साजसज्जा सभी आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक हैं।

—डा० लक्ष्मीनारायण दुबे, सागर

'साहित्य-परिचय' का **शिक्षा-समस्या विशेषांक** निकालकर निस्सन्देह आपने महत्वपूर्ण कार्य किया है, और तदर्थ मैं आपको हार्दिक बधाई देता हूँ। भविष्य में यह अङ्क एक सन्दर्भ ग्रन्थ का काम देगा।

—बनारसीदास चतुर्वेदी, फिरोजाबाद

बड़ी प्रसन्नता से मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि विशेषांक अत्यन्त आकर्षक, मूल्यवान, समृद्ध और संग्रहणीय निकला है। उसमें संग्रहीत सामग्रियों का अध्यापन और आस्वादन अत्यन्त लाभप्रद अवश्य निकलेगा। यही मेरा विश्वास है।

—के० चन्द्रशेखरन नैयर, कोट्टायाम

[आवरण का तीसरा पृष्ठ भी देखें]
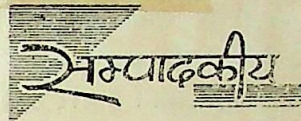
साहित्य-परिचय

[शिक्षा और साहित्य की प्रगति का परिचायक पत्र]

वर्ष ४ : अंक ३-४

अप्रैल, १९६९

सम्पादक

विनोदकुमार अग्रवाल

एम. ए., साहित्यरत्न

प्रबन्ध सम्पादक

सतीशकुमार अग्रवाल

स्वामित्व

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–२

मूल्य

एक प्रति ०.२५ : वार्षिक ५.००

साहित्य-परिचय

डॉ० रांगेय राघव मार्ग

आगरा–२

फोन : ७६४८६

इस अङ्क से पूर्व का अङ्क 'शिक्षा-समस्या' पर विशेषांक था। विशेषाङ्क विद्वानों एवं शिक्षकों की दृष्टि में कैसा बन पड़ा, इसके सम्बन्ध में उनसे प्राप्त सम्मतियों एवं सुझावों के आधार पर ही कुछ कहा जा सकता है। अतः सुधीजनों से निवेदन है कि वे हमारी त्रुटियों की ओर हमारा ध्यान दिलाते रहें जिससे आगामी विशेषाङ्कों में हम उन त्रुटियों को दूर कर सकें।

विगत शैक्षिक सत्र में देश भाषा-समस्या से बुरी तरह आक्रान्त था, तो 'साहित्य-परिचय' ने भाषा-समस्या सम्बन्धी विशेषाङ्क निकालकर इस समस्या के पूर्वापर पक्ष पर सावधानी से विचार करके पग बढ़ाने के लिए एवं इस समस्या को भली प्रकार समझ लेने के लिए अध्ययनार्थ उपयुक्त सामग्री का चयन किया था। वर्त्तमान शैक्षिक सत्र छात्रों एवं शिक्षकों के सत्याग्रहों से युक्त रहा है। सम्पूर्ण देश में विगत कुछ वर्षों से छात्रों में एक विचित्र प्रकार की निराशा व्याप्त हुई है जो चारों दिशाओं में हड़ताल के रूप में प्रकट हुई है। किन्तु सबसे बड़ी चिन्ता की बात इस वर्ष यह हुई है कि उत्तर प्रदेश में प्राथमिक स्तर से लेकर स्नातकोत्तर स्तर तक के शिक्षकों को अपनी न्यायोचित माँगों को मनवाने के लिए हड़ताल का आश्रय लेना पड़ा है। उत्तर-प्रदेश ही नहीं, देश के अन्य भागों में भी शिक्षकों के मन में गम्भीर असन्तोष है। अध्ययन-अध्यापन सम्बन्धी अन्य समस्याएँ तो वर्तमान हैं ही। अतः साहित्य-परिचय का इस वर्ष का विशेषाङ्क शिक्षा-समस्या पर आधारित किया गया।

'शिक्षा-समस्या' विशेषाङ्क के लिए हमें प्रसिद्ध लेखकों एवं शिक्षकों से आशातीत सहयोग मिला। इसका परिणाम यह हुआ कि हमें कुछ लेखकों के लेखों को आगामी अङ्कों के लिए स्थगित करना पड़ा। इधर विशेषांक के आकार का प्रश्न था, तो उधर प्रकाशक महोदय की अपनी कुछ सीमाएँ थीं। सभी लेखों को सर्वथा प्रकाश्य पाने पर भी साहित्य-परिचय परिवार विवश था। एक लोभ और था। विशेषाङ्क के लिए आए हुए सभी लेख सुन्दर थे, जिनमें से कुछ के द्वारा आगामी अङ्कों की शोभा बढ़ाने का मोह भी वर्तमान था। अतः कुछ लेखकों से साग्रह निवेदन किया गया कि वे विशेषाङ्कार्थ लिखे गए अपने लेख द्वारा आगामी अङ्कों के स्तर को बढ़ाने में साहित्य-परिचय परिवार को सहयोग दें। हमें हर्ष है कि कुछ ने हमारी प्रार्थना स्वीकार कर ली और उन महानुभावों के लेख आगामी अङ्कों में पाठकों को पढ़ने को

मिलेंगे। कुछ लेखकों ने यदि हमारी विवशता को अन्यथा समझ लिया हो तो हम उनसे क्षमा माँगते हुए पुनः निवेदन कर रहे हैं कि उनके सहयोग के लिए साहित्य-परिचय परिवार हृदय से कृतज्ञ है और उनके सहयोग का सदा आकांक्षी भी है।

विशेषाङ्क पर अनेक विद्वानों की सम्मतियाँ प्राप्त हुई हैं, अनेक विज्ञ पाठकों ने बधाई दी है, कुछ महानुभावों की शुभकामनाएँ भी प्राप्त हुई हैं। इन सभी के प्रति पत्रिका-परिवार हृदय से आभार प्रदर्शित करता है।

कुछ विद्वान् पाठकों ने रचनात्मक सुझाव भी भेजे हैं। एक महत्वपूर्ण सुझाव यह रहा है कि साहित्य-परिचय के अङ्कों में साहित्यिक निबन्धों के साथ-साथ शिक्षा सम्बन्धी लेख भी होने चाहिए। इस सुझाव का समर्थन भी हमें अनेक शिक्षा शास्त्रियों से मिला। अतः इस सुझाव को क्रियान्वित करने का संकल्प किया गया। शिक्षा-समस्या विशेषाङ्क में इस संकल्प को कुछ सीमा तक मूर्त रूप प्रदान किया गया। आगामी अङ्कों में भी शिक्षा सम्बन्धी लेख प्रकाशित करने की योजना है किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि पत्र के सम्पादन की नीति में आमूलचूल परिवर्तन कर दिया गया है और पत्र ने हिन्दी साहित्य की सेवा करना बन्द कर दिया है। यथा समय भाषा एवं साहित्य सम्बन्धी लेख तो रहेंगे ही, शिक्षा सम्बन्धी लेखों की ओर अब अधिक ध्यान दिया जाएगा क्योंकि चारों ओर यह अनुभव किया जा रहा है कि हिन्दी में शैक्षिक साहित्य का अभी भी अभाव है और अनेक महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा का माध्यम हिन्दी होने के कारण छात्रों एवं शिक्षकों को इस प्रकार के साहित्य की विशेष आवश्यकता है। अतः साहित्य-परिचय का क्षेत्र परिवर्तित नहीं किया जा रहा है, इसे विकसित एवं परिवर्द्धित करने की योजना है ताकि यह पत्र भाषा, साहित्य एवं शिक्षा की सेवा कर सके।

विशेषाङ्क को प्रत्येक दृष्टि से उपादेय एवं सुन्दर बनाने के प्रयत्न में फरवरी का महीना भी समाप्त हो गया और विशेषाङ्क पाठकों तक मार्च में पहुँच पाया। अतः मार्च का अङ्क नहीं निकल सका। वस्तुतः विशेषाङ्क एक प्रकार से तीन महीनों का संयुक्तांक बन गया क्योंकि इसके कलेवर में बहुत अधिक वृद्धि हो गई और इसमें समय भी पर्याप्त लग गया। अप्रैल का यह अंक पाठकों तक यथासमय पहुँच रहा है। फिर भी, यदि किसी अंक की प्रतीक्षा में किसी पाठक को अधीर होना पड़ा हो तो उसके लिए क्षमा की याचना है।

इस अंक में दो लेख जा रहे हैं। एक में लेखक ने शिक्षा के उद्देश्यों का विश्लेषण किया है और यह बताने का प्रयत्न किया है कि भारत के लिए कौन-से उद्देश्य अधिक उपयुक्त हैं। दूसरा लेख छात्र आन्दोलन से सम्बन्धित है जिसमें लेखक ने इस समस्या का विश्लेषण करके इस दिशा में शैक्षणिक जगत के दायित्व पर प्रकाश डाला है।

छात्र आन्दोलनों की समस्या : शैक्षणिक जगत् का दायित्व

प्रो० मोहनकृष्ण बोहरा

शासकीय महाविद्यालय, ब्यावर (राजस्थान)

छात्र आन्दोलनों की समस्या के सम्बन्ध में कुछ भी कहते हुए पिष्टपेषण से बचना बहुत ही कठिन है। आन्दोलन जितने व्यापक होते चले गये हैं, उतना ही बहुपक्षीय इनका विश्लेषण भी हुआ है। कई बार आन्दोलन का कारण हमें छात्रों की ज्यादती लगती है, जो जब-तब तोड़-फोड़ और अग्निकांड का रूप लेती रहती है, तो कई बार पुलिस का क्रूरतापूर्ण दमन ही कारणभूत लगता है। अनेक बार सामाजिक जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार और कमरतोड़ महंगाई को ही इसका हेतु मानकर उसे भी हमने जी भर कोसा है। इधर, जबसे विश्व के रंगमंच पर इण्डोनेशिया, पश्चिमी जर्मनी, फ्रांस आदि में छात्रों की उग्रता की घटनाएँ देखने में आई हैं, हमारे यहाँ के आन्दोलन भी उसी व्यापक परिदृश्य में देखे जाने लगे हैं। यह माना जाने लगा है कि ये आन्दोलन युवा-पीढ़ी में व्याप्त उस असंतोष और आक्रोश की छाया है जो विश्व भर में फैलता जा रहा है। जिनकी दृष्टि इतनी व्यापक नहीं है, वे राजनैतिक दलों को इन आन्दोलनों के लिए उत्तरदायी ठहराते हैं। हम देखना चाहेंगे कि मूल समस्या क्या है और जिन आधारों पर हम अपने तर्क टिकाते हैं, वे सचमुच कितने दृढ़ हैं ?

विश्व में आज युवा पीढ़ी जिन जड़ मान्यताओं के विरोध में आन्दोलित दीख पड़ती है, वे मान्यताएँ भारत में विद्यमान नहीं हैं, ऐसा कहना सचमुच दुस्साहस ही होगा; बल्कि कुछ दृष्टियों से भारत में तो ऐसे कारण अनेकानेक हैं जो युवा-पीढ़ी के आन्दोलन का आह्वान करते ही प्रतीत होते हैं। परन्तु छात्र-आंदोलनों के संदर्भ में हमारा अनुमान है कि अन्तरराष्ट्रीय भाई-चारे की लहर चाहे कभी दिल्ली के कगार से आ टकराती हो, आये दिन होती रहने वाली इस तोड़-फोड़ का नाता उस भाई-चारे से जोड़ना तो समस्या में गहरे पैठने से इन्कार करना ही होगा। कटु सत्य तो यह है कि हमारे छात्र वियतनामी युद्ध, नीग्रो जाति का दमन, पाकिस्तानी तानाशाही, कैनेडी और मार्टिन लूथर किंग की हत्याएँ जैसे प्रसंगों पर अनुशासनहीन होते तो क्या, रोष प्रकट करते भी कम ही देखे जाते हैं। तथ्य तो यह है कि ऐसे अन्तरराष्ट्रीय प्रसंगों पर आन्दोलित अनुभव करना चेतना के जिस क्षितिज-विस्तार की उपेक्षा करना है, हमारे छात्र उससे अभी पर्याप्त दूर हैं। अन्तरराष्ट्रीय समस्याएँ तो बड़ी बात है, ये छात्र तो देश की समस्याओं से भी अधिक चिन्तित या आंदोलित नजर नहीं आते। कितनी बार भ्रष्टाचार, महंगाई, मुनाफाखोरी और ऐसी ही अन्य समस्याएँ छात्र-आन्दोलनों का कारण बनी हैं ? बेकारी की समस्या, अवश्य ही कभी-कभी सताती है, पर बेकारों की चीख-पुकार भी नक्कारखाने में तूती की आवाज की तरह खो जाती है, कितना समर्थन उसे मिलता है ? स्पष्ट है कि हमारे छात्रों में राजनैतिक चेतना विकसित होनी शेष है।

जहाँ तक राजनैतिक दलों का प्रश्न है, उनकी चेतना भी अत्यन्त संकीर्ण है और जब-तब वे छात्रों को इस संकीर्णता का 'माउथपीस' ही बनाते रहते हैं। कैसे ये दल छात्र-आन्दोलनों का शोषण करते हैं, कैसे उनकी उग्रता की अग्नि का शमन करने के बजाय उसमें आहुति का काम करते हैं—यह किसी से छिपा हुआ नहीं है। प्रायः साम्प्रदायिक-आन्दोलन और भाषायी दंगों के सिलसिले में छात्रों को जो जान की बाजी लगाते हम देखते हैं, वह इन दलों का कृपा-प्रसाद ही है। परन्तु तब भी हमारा निवेदन है कि राजनैतिक दलों को एकमात्र और सीधे उत्तरदायी ठहराने से पूर्व स्थिति का विश्लेषण अपेक्षित है। विश्लेषण से ज्ञात होगा कि छात्र-आन्दोलनों में राजनैतिक दलों का हस्तक्षेप दो रूपों में होता है। एक रूप तो यह है कि छात्र अपनी माँगें रखते हैं, शिक्षाधिकारियों से उन्हें मनवाने का

यत्न करते हैं और निराश होने पर जब आन्दोलन छेड़ देते हैं, तब राजनैतिक दल उनका झण्डा थाम लेते हैं ताकि इसी बहाने उन्हें सरकार को कोसने और छात्रों (और अन्ततः शोषित वर्ग) के प्रति अपनी सदाशयता प्रचारित करने का अवसर मिल जाय। सरकार के प्रति अपनी दमित भावनाओं को छात्रों के हाथों पूरा करवा कर उन्हें मनोवैज्ञानिक सन्तुष्टि भी होती है। हस्तक्षेप का दूसरा रूप है—किसी विवाद पर अपनी दृष्टि स्वयं चरितार्थ न कर छात्रों को आगे कर देना, उन्हीं से अपनी माँगें रखवाने का नाटक रचना और बाद में वही, झण्डा थाम लेना। यह निश्चित बात है कि पिछले कुछ अर्से से दूसरे किस्म का हस्तक्षेप बढ़ता जा रहा है और समस्या को सुलझाते हुए इस पहलू को नजरंदाज नहीं किया जा सकता। परन्तु हमारा प्रस्ताव है कि यदि भारत में होने वाले इन छात्र आन्दोलनों का सर्वेक्षण किया जाय तो स्पष्ट होगा कि राजनैतिक दलों द्वारा छात्रों का जो शोषण किया जाता है वह प्रथम प्रकार का ही अधिक है। इसका आशय यह है कि अधिकांशतः छात्रों की माँगें अपने मूल रूप में राजनैतिक रंग लिये हुए नहीं होतीं या कम होती हैं; राजनैतिक रंग उन्हें बाद में मिलता है, तब, जब कि समस्या शिक्षाधिकारियों के हाथों से फिसल जाती है। इसका तात्पर्य यह भी है कि यदि शैक्षणिक जगत् ही सजग रहे तो समस्या को राजनैतिक रंग मिलने के अवसर कम किये जा सकते हैं। हमारा मन्तव्य यह नहीं है कि शिक्षा प्रणाली बदलकर ही समस्या हल की जा सकती है क्योंकि प्रणाली बदलने की बात कहना तो समस्या को लाइलाज मान लेना है (क्योंकि प्रणाली बदलना एकाएक बहुत कठिन है); हमारा मत यह है कि किंचित् सावधानी से काम लिया जाय तो इस समस्या की उग्रता को काफी कम किया जा सकता है।

आज स्थिति यह है कि नौकरशाही के स्तम्भों को तो आन्दोलन शब्द से ही 'एलर्जी' हो गई है। छात्र अनुशासित रहकर भी आन्दोलित हो सकते हैं, यह अधिकारियों की समझ से परे की बात हो गई है। उनके लिए तो अनुशासन यही है कि छात्र यांत्रिक गति से शिक्षा पाते रहें। जब कभी छात्र समुदाय अपने प्रति होने वाले अन्याय के प्रति जागरूक हो उठता है तो वह अनुशासनहीन करार दे दिया जाता है। अनुशासन की यह परिभाषा चित्य है, चित्य ही क्यों शिक्षा के हमारे उद्देश्य के भी प्रतिकूल है। मोटे तौर पर शिक्षा का लक्ष्य छात्रों के मस्तिष्क का विकास है, उनमें इतना विवेक विकसित करना है कि वे अपने हित-अहित, ग्राह्य-त्याज्य आदि में भेद कर सकें। और जहाँ सजग और विकसित मस्तिष्क होगा, वहाँ विचारों की वह टकराहट स्वाभाविक है, जो आन्दोलन को जन्म देती है। इसलिए आन्दोलन हमारे लिए उतनी चिन्ता का कारण नहीं होना चाहिए; अवश्य ही, वह रूप अत्यन्त चिन्ताकारक है जो इन आन्दोलनों ने धारण कर लिया है। मतभेद शिक्षाधिकारियों और छात्रों में होता है परन्तु लुटती दुकानें हैं, जलती बसें हैं। सामान्य जन-जीवन उथल-पुथल का शिकार होता है, विश्वविद्यालय तीन-तीन महीनों तक बन्द रहते हैं—यही कुछ चिन्ताकारक है। हम देखना चाहेंगे कि इसके क्या कारण हैं और उनका व्यावहारिक निवारण क्या है?

यदि हम यह बात सिद्धान्ततः स्वीकार करें कि हमारी चिन्ता का केन्द्र छात्र-आन्दोलनों का विकृत रूप होना चाहिये तो आपाततः इन आन्दोलनों के लिए जो तत्त्व उत्तरदायी ठहराया जा सकता है वह है—वर्तमान शैक्षणिक व्यवस्था अर्थात् छात्रों की माँगों के सम्बन्ध में अधिकारीगण सावधानी से काम लें तो स्थिति उतनी बिगड़ नहीं सकती जितनी कि हम प्रायः देखते हैं। परन्तु इस 'व्यवस्था' को दोष देने से पूर्व यह ध्यान रखना होगा कि वर्तमान शिक्षातन्त्र पर्याप्त जटिल है। हमें लगता है कि यह 'व्यवस्था' सहायक कारण ही है, आपाततः चाहे यही मुख्य लगता हो। मूल कारण है—स्पष्ट शिक्षा नीति का अभाव। इस जनतन्त्र में हमने अभी एक शब्द रटा है—समानता। हर दृष्टि से विषम और अभावग्रस्त इस देश में जहाँ जन-सामान्य के लिए, समानता के नाम पर और कुछ भी जुटाना सुलभ नहीं दीखता वहाँ हमारे नेताओं ने शिक्षा प्राप्त करने के अवसर जुटाने के सफल यत्न किये हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि शिक्षा प्रसार की समस्या हल हो गई है। हाँ, देश की क्षमता से अधिक कॉलेज अवश्य खुल गये हैं। क्षमता से हमारा अभिप्राय है—कॉलेजों को पर्याप्त साधनों से सम्पन्न बना सकने की क्षमता। सरकार को गर्व है कि उसने आजादी के बाद इतने स्नातक उत्पन्न कर दिये। पढ़ना अपना

अधिकार मानकर हर ऐरा-गैरा कॉलेज में प्रवेश पाने की दौड़ में है। स्थिति यह हो गई है कि पढ़ने में रुचि हो या नहीं, जिसे हायर सेकण्डरी पास करने के बाद कोई काम नहीं होता, वह कॉलेज में भर्ती हो जाता है। इस ओर किसी का ध्यान नहीं है कि इन स्नातकों का स्तर क्या है ? स्तर दिन-ब-दिन गिरता जा रहा है और छात्रों की संख्या बढ़ती जा रही है। इस अपार भर्ती का आकर्षण है—डिग्री। हम भूल गये हैं कि उच्च शिक्षा सभी के लिये नहीं होती, वह होती है जिज्ञासुओं के लिये। यदि जनतन्त्र के नाम पर कोई प्रतिबन्ध इस पर लगाना अनुचित हो, तब भी दो प्रतिबन्ध तो शिक्षा पद्धति के अन्तर्गत ही होते हैं—पाठ्यक्रम और परीक्षा। दुर्भाग्यवश न तो शिक्षा-नीति के अन्तर्गत हम यह स्पष्ट कर पाये हैं कि अनिवार्य शिक्षा हायर सेकण्डरी तक ही होती है और न ही शिक्षा-पद्धति में ही विद्यमान प्रतिबन्धों को इतना दृढ़ कर पाये हैं कि अवांछनीय तत्व शिक्षा जगत् में प्रवेश पाने से स्वयं ही कतरा जायें। पाठ्यक्रम और परीक्षा के वर्तमान स्वरूप के विश्लेषण से प्रकट होगा कि ये दोनों हो ऐसे शिथिल प्रतिबन्ध हैं कि हर कोई कॉलेज में प्रवेश पाने की सहज ही कामना करने लगता है। यही कारण है कि विद्यालयों में छात्रों की भरमार हो गई है—ऐसे छात्रों की, जो पढ़ाई के प्रति गंभीर नहीं हैं। ऐसी स्थिति में यह आन्दोलन हुआ करें तो आश्चर्य ही क्या ?

वर्तमान आन्दोलनों को देखकर तो हैरानी होती है कि तीन-तीन माह विश्वविद्यालय बंद रह कैसे जाते हैं ? छात्रों की पढ़ाई में व्यवधान नहीं आता ? परन्तु तथ्य यह है कि इसके बावजूद भी निर्धारित समय पर परीक्षाएं होती हैं और छात्रों का अच्छा-खासा प्रतिशत पास भी होता है। और इस सबका रहस्य है—पाठ्यक्रम और परीक्षा पद्धति में। जो छात्र निरी डिग्री के लालच से कॉलेज में भर्ती होते हैं, उन्हें, सचमुच, वर्तमान पद्धति में इतना समय मिल जाता है, बल्कि 'फालतू समय' मिल जाता है कि उसे काटना ही उसके लिये एक समस्या है। यह फालतू समय ही सारे आन्दोलनों की जड़ है। ये छात्र चाहें तो वर्ष में दस माह आन्दोलन और आन्दोलन नहीं तो कम से कम गैर-शिक्षण-कार्य बखूबी करते रह सकते हैं। पढ़ाई के लिये तो एक-दो माह ही पर्याप्त हैं। कक्षा की पढ़ाई उनके लिए तो नगण्य है कि अधिकांशतः प्राध्यापक किसी-न-किसी पुस्तक से 'डिक्टेशन' लिखाते हैं और यदि कोई 'कुछ' पढ़ाता भी है तो छात्रों को उसकी चिन्ता करने की जरूरत नहीं होती क्योंकि वह 'सभी कुछ' न सही, उसका काफी भाग उसे बाजारू 'नोट्स' में मिल ही जाता है। फिर परीक्षा पद्धति ऐसी है कि उसे आश्वस्त होने का अवसर देती है कि वह चुने हुए दस-बारह प्रश्नोत्तर रट ले, उनमें से इतने प्रश्न तो प्रश्न-पत्र में होंगे ही कि उसे तीस-तैंतीस प्रतिशत अंक मिल जाये, शेष 'ग्रेस' से पूरे हो सकते हैं, परीक्षक की दया भी हो सकती है ! इस प्रकार महीने भर का अध्ययन इतना काम कर दिखाता है कि छात्र में वह विश्वास प्रबल हो जाय जो कक्षा की पढ़ाई की उपेक्षा का भाव अंकुरित करे। वर्षभर की सिरपच्ची से मुक्ति का आश्वासन पाकर छात्र अपने अनुपयोगी समय को मनमाने ढंग से बिताने के लिये स्वतंत्र हो जाता है। उसे चिन्ता होती है मात्र—'हाजिरी' की, और हाजिरी के बाद कक्षा से खिसकने की। हाजिरी करवा कर कक्षा से निकल जाने वाले छात्रों को तो वह समय भी खाली मिल जाता है, जबकि वैधतः वे कक्षा में होते हैं। इस खाली समय को ये छात्र कैंटीन में कॉफी पीने, सिगरेट फूँकने या लड़कियों को घूरने में गुजारते हैं। अन्यत्र हमने विश्लेषित किया है कि कैसे कॉलेज, आकर्षण के केन्द्र बनते जा रहे हैं। 'तफरी' के लिये आने वाले ये छात्र जो शिक्षा के प्रति सर्वथा अगंभीर होते हैं, इतना फालतू समय पाकर गलत मार्ग पर ही बढ़ेंगे। वस्तुतः यह वर्ग ही है जो आन्दोलन को जेब में लिये घूमता है। आन्दोलन इन छात्रों के शैक्षणिक असंतोष का परिणाम कम, हाथ की सफाई ज्यादा होता जा रहा है। ऐसे छात्र ही टोक दिये जाने पर या दण्डित किये जाने पर आन्दोलन बिछाने की धुन में रहते हैं। इसमें उन्हें एक ओर तो उन सब की सहानुभूति मिलती है जो उन जैसी मनःस्थिति लिये कक्षाओं में बैठे रहते हैं, जो कैन्टीन में समय बिताना चाहते हैं या लड़कियों पर फिकरे कसना और उनका पीछा करना चाहते हैं, पर उतने धूर्त अथवा कहिये 'साहसी' बन नहीं पाते ! दूसरी ओर इन लोगों को समर्थन मिलता है—चवन्नी राजनीतिज्ञों से जो

जब तब अपने आन्दोलनों के लिये भी इन अपरिपक्वों का उपयोग करते रहते हैं। इस प्रकार पाठ्यक्रम और परीक्षा जैसे मुक्त करने वाले बंधनों से आश्वासन और अन्यान्य तत्वों से समर्थन की आशा पाकर ये लोग किसी भी सीमा तक अपने आन्दोलन को ले जा सकते हैं। दुकानें लूटना, बसें जलाना, इमारतें तोड़ना-फोड़ना आदि कार्य ऐसे छात्र ही करते हैं जिन्हें दो-चार साल फेल हो जाने का भी कोई रंज नहीं होता क्योंकि और कुछ नहीं तो 'राजनैतिक कार्यकर्ता' तो वे बन ही सकते हैं।

इस तरह छात्र-आन्दोलनों के लिये आपाततः जो व्यवस्थागत दोष दिखाई देता है, वह मूलतः शिक्षा नीति का दोष है। न तो उच्च शिक्षा देने से पूर्व हम जांचना चाहते हैं कि यह छात्र जिज्ञासु और योग्य भी है अथवा नहीं, न ही शिक्षा देते समय हमारा लक्ष्य यह होता है कि यह एक स्तर-विशेष का निर्वाह करने वाला छात्र तो बने ही ताकि उसका लाभ भावी जीवन में उसे भी मिले और राष्ट्र को भी। आज तो स्थिति यह है कि हमारे विश्वविद्यालयों से बी. ए. तो क्या एम. ए. और पी. एच-डी. प्राप्त छात्र भी विदेशों में (ज्ञान का जहाँ तक प्रश्न है) संदिग्ध दृष्टि से ही देखे जाते हैं। यदि वर्तमान पद्धति में ही हम कोई ऐसी व्यवस्था करें कि कुछ पाठ्यपुस्तकों को पढ़ने और दस-बीस सवालों को रटने के बजाय छात्र को विषय-विशेष का ठोस ज्ञान प्राप्त करने के लिये स्वाध्याय पर बल देना पड़े और उसमें विषयगत चिन्तन-मनन की वृत्ति अंकुरित हो तो निश्चय ही शिक्षण-संस्थाओं को फालतू समय काटने का आकर्षण केन्द्र बनने से रोका जा सकेगा। गम्भीर अध्ययन में प्रवृत्ति होने पर उच्छृङ्खलता का स्वतः ह्रास हो जायेगा। छात्रों की भीड़ पर भी स्वतः ही अंकुश लग जायेगा। इसका एक सहज परिणाम यह होगा कि छात्र और शिक्षक एक दूसरे के निकट आने का अवसर पा सकेंगे। अनुशासन बनाये रखने में यह निकटता जितनी आवश्यक है, उतनी और कोई बात नहीं। यह निकटता दोनों ओर गुणकारी होगी। आज छात्र कक्षा से छुटकारा पाने में सुख मानते हैं और शिक्षक भी किस्से-कथा कहकर समय गुजार सकता है। यदि पाठ्यक्रम ऐसा हो कि छात्र में स्वाध्याय की वृत्ति अंकुरित होने लगे तो अध्यापक भी इधर-उधर की हाँक कर काम नहीं चला जा सकेगा। दूसरी ओर, नियत संख्या में जिज्ञासु छात्र अध्यापक से सही अर्थ में 'ज्ञान' प्राप्त कर उसके 'ऋण' से दब से जायेंगे, कृतज्ञता महसूस करेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि शिक्षक के व्यक्तित्व का प्रभाव छात्र के जीवन और उसकी गतिविधियों पर आयेगा। इस स्थिति में सम्बन्ध चाहे जितने आत्मीयता से परिपूर्ण हों, चाहे जितने अनौपचारिक हों, एक गरिमा का आतंक भी उनमें होता ही है। आज का छात्र यदि हद दर्जे का उच्छृङ्खल हो गया है तो उसका एक कारण यह भी है कि छात्र-शिक्षक सम्बन्धों में गरिमा जैसी बात रही ही नहीं है और इसका दोष न शिक्षकों को दिया जा सकता है न छात्रों को ही; बल्कि उस वातावरण को ही यह दोष दे सकते हैं जिसमें यह उच्छृङ्खलता पनपने के भरपूर तत्व विद्यमान हैं। आज का छात्र कृतज्ञता अर्पित करने लायक और आतंकित महसूस करने योग्य व्यक्तित्व भी कम ही पाता है और इसीलिये उसके आन्दोलन किसी सीमा से सीमित और शंका से आशंकित नहीं होते।

उपर्युक्त विवेचन का यह अर्थ नहीं लिया जाना चाहिये कि हम शिक्षकों के आतंक को इतना बढ़ाना चाहते हैं कि आत्मीयता समाप्त हो जाय। आन्दोलन चाहे हों परन्तु उपर्युक्त व्याख्यायित अर्थ में शिक्षक के व्यक्तित्व का आतंक हो तो आन्दोलन उतने विकृत नहीं हो सकते। परन्तु यहाँ यह भी टाँक लेना होगा कि हमारी शिक्षा-व्यवस्था भी निर्दोष नहीं है। आंदोलनों के विकारग्रस्त होने का कारण एक ओर यदि छात्रों की अनियन्त्रित भर्ती में और पाठ्यक्रम और परीक्षा जैसे बंधनों के सर्वथा शिथिल होने में है (जो छात्र-शिक्षक की दूरी के लिये भी उत्तरदायी है) तो दूसरी ओर यह अफसरशाही के रुख में भी है। हिन्दुस्तान का औसत अफसर-वर्ग स्थिति के प्रति आँखें मूँदे रहता है और जब वह आन्दोलन करके जगाया जाता है तो एकदम असहिष्णु हो उठता है। छात्र-वर्ग के साथ व्यवहार में उपेक्षा और असहानुभूति ज्यादा देर तक नहीं चल सकती, सच पूछिये तो आन्दोलन को विध्वंसकारी बनाने में इन्हीं बातों का योग ज्यादा होता है। आज छात्रों के साथ यह व्यवहार इसलिये भी नहीं चल सकता कि हमारी शिक्षा पद्धति और

नीति बहुत कमजोर है, बल्कि उसका लक्ष्य स्वयं अधिकारियों के सामने ही स्पष्ट नहीं है। क्यों किसी वर्ष एक विषय में पुस्तकें कम हो जाती हैं, दूसरे वर्ष बढ़ जाती है; क्यों एक विषय कभी रखा जाता है, दूसरे वर्ष हटा दिया जाता है; कभी विशेष विषय के अंक जोड़े जाने का निर्णय होता है, तो कभी बिना अंक जुड़े ही उस विषय का बोझ ढोना पड़ता है—ये सब ऐसी बातें हैं कि इनकी समुचित व्याख्या अधिकारी व्यक्तियों के दिमाग में भी नहीं होतीं और यही कारण है कि छात्र जब आन्दोलन करते हैं और माँगें रखते हैं, तब एक बार तो अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाकर विद्या-सभा के सदस्य अड़ जाते हैं परन्तु प्रस्तावित ढाँचे स्वयं में ही प्रयोगात्मक होते हैं, फलतः बाद में तोड़-फोड़ और अग्निकांड के आगे उन्हें झुकना पड़ता है। विद्यार्थियों को विश्वास में लेकर और सहानुभूति पूर्ण व्यवहार से ऐसी स्थितियाँ टाली जा सकती हैं और यदि हमें अपने सिद्धान्तों से ही लगाव है तो अपने तर्क-पक्ष को इतना दृढ़ बनाना होगा कि अपनी बातों से दूसरों को भी सहमत कर लें। परन्तु आज दोनों बातों का अभाव है। इसीलिये यह कहते समय हमें जरा भी संकोच नहीं होता कि वर्तमान आंदोलन और उनका विध्वंसकारी रूप तो हमारी ढुलमुल नीति का ही परिणाम है। यदि हम छात्रों को नियन्त्रित रखना चाहते हैं तो उन्हें पूरी सुविधाएँ देनी होंगी और यदि हमारी नीति स्पष्ट नहीं है तो उसके बिना हम बहुत दूर नहीं जा सकते, हमें उसे सुदृढ़ और स्पष्ट करना होगा। इस बीच हमें मनमाने परिवर्तनों को भी रोकना होगा क्योंकि निरी कट्टरता तो विध्वंसकारी आंदोलनों का आह्वान ही है।

एक बात और। यह तो हम कह ही चुके हैं कि शिक्षण संस्थाओं में आन्दोलन के अन्यान्य कारणों के साथ ही, मुख्य कारण वे उद्दण्ड छात्र हैं जिनका लक्ष्य पढ़ना-लिखना नहीं होता और जो मात्र काम न मिलने की स्थिति में कॉलेज में आ भर्ती होते हैं। ऐसे छात्रों को तो पाठ्यक्रम और परीक्षा पद्धति को सुगठित करके हतोत्साहित किया जा सकता है। शेष के सम्बन्ध में अंकुश का एक सूत्र है—शिक्षक-अभिभावक सहयोग। अभिभावक यदि छात्रों की गतिविधियों से सम्पर्क रखें, इस सम्बन्ध में बराबर सजग रहें कि छात्र किन-किन क्षेत्रों में रुचि लेता है और तत्सम्बन्धी क्षेत्रों में उसकी क्रमिक प्रगति क्या है, तो छात्र की गतिविधियों पर अंकुश रह सकता है। यदि अभिभावक प्रारम्भ से ही सावधान रहें तो यह कार्य और भी सरल हो सकता है। छात्र में शुरू से ही यदि कोई 'हॉबी' विकसित की जाये तो वह उसके अवशिष्ट समय के सदुपयोग का हेतु भी बन सकती है और व्यक्तित्व के विकास में सहायक भी हो सकती है। ऐसे नियंत्रित रूप से विकसित होने वाला व्यक्तित्व कभी इस अर्थ में आंदोलनकारी नहीं हो सकता कि वह राष्ट्र के लिये घातक हो। उसकी विकसित बुद्धि ही नहीं, उसकी सुरुचि भी उसे आंदोलनों के विध्वंसकारी रूप से बचा लेगी क्योंकि सुरुचिपूर्ण ढंग से विकसित व्यक्तित्व के हर कार्य में सुरुचि परिलक्षित होती है—यहाँ तक कि आंदोलन में भी। अवश्य ही यह एक लम्बी प्रक्रिया है परन्तु हमारा अनुमान है कि यह प्रभावकारी हो सकती है। बहरहाल, शिक्षक-अभिभावक सहयोग भी छात्र की गतिविधियों को नियन्त्रित रखने में सहायक तत्व हो सकता है। अभिभावक को यदि नियमित रूप से छात्र की प्रगति सूचित की जाती रहे तो उन्हें इस बात की स्वतः चिन्ता रहेगी कि उसका भविष्य अन्धकारमय न होने पाये।

कुल मिलाकर हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि शिक्षण संस्थाओं की इस युवा पीढ़ी के आक्रोश के मूल कारण हमें शैक्षणिक जगत् में ही मिलेंगे। यदि शिक्षाधिकारी मूलतः पाठ्यक्रम को सुनियोजित कर सकें और परीक्षा प्रणाली में किंचित् सुधार ला सकें तो अनेकानेक समस्याएँ स्वतः सुलझ जाती हैं, यहाँ तक कि कॉलेजों में छात्रों की भीड़ की समस्या और छात्र-शिक्षक में निकटता के अभाव की समस्या भी बहुत हद तक हल हो जाती है। हाँ! पाठ्यक्रम को सुनियोजित करने की समस्या अपने आप में जटिल अवश्य है; इस विषय पर हमने अन्यत्र प्रकाश डाला है, यहाँ उसका विवेचन प्रासंगिक नहीं।

●

पुस्तक समीक्षा

शोध—तत्व और दृष्टि

सम्पादक—डॉ० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल, प्रकाशक—महामात्र, सरदार पटेल यूनिवर्सिटी वल्लभ विद्यानगर, पृ० सं० १४२, मूल्य ६.०० ।

प्रस्तुत पुस्तक सरदार पटेल यूनिवर्सिटी, वल्लभ विद्यानगर के हिन्दी-विभाग द्वारा आयोजित एक त्रिदिवसीय-शोध-गोष्ठी एवं तत्सम्वन्धित अन्य भाषणों का संकलित रूप है । इस ग्रंथ में शोध-विषयक विभिन्न पहलुओं पर हिन्दी जगत् के लब्ध प्रतिष्ठित विद्वानों के विचार संकलित किये गये हैं । आज का युग शोध का युग है । साहित्य एवं विज्ञान सभी क्षेत्रों में अनवरत रूप से शोध प्रक्रियाएँ चल रही हैं और यह ग्रन्थ निश्चय ही आज के अनुसन्धित्सुओं के लिए शोध-सम्बन्धी अनेक गुत्थियों को सुलझाने में अपनी प्रमुख भूमिका अदा करेगा ।

इस ग्रन्थ में १८ अध्याय हैं जो देश के ख्याति प्राप्त विद्वानों के हैं । ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, साहित्यिक, भाषा-वैज्ञानिक, तुलनात्मक, क्षेत्रीय शोध-कार्यों का इसमें विशदता से विवेचन प्रस्तुत किया गया है । साथ ही स्नातकोत्तर अध्यापन और अनुसन्धान के लिए भी इसमें विशिष्ट सामग्री को संकलित किया गया है । अहिन्दी प्रदेशीय विश्वविद्यालय द्वारा हिन्दी भाषा में किया गया यह उपकार निश्चय ही स्तुत्य एवं प्रेरणाप्रद है । आशा है आज के अनुसंधित्सु वर्ग को इस पुस्तक से वहुमूल्य सहायता मिलेगी । वैसे हिन्दी में अनुसंधान की प्रक्रिया विषयक कतिपय ग्रन्थ यथा—डॉ०सावित्री सिन्हा कृत—'अनुसन्धान का स्वरूप एवं, अनुसन्धान की प्रक्रिया', डॉ० विश्वनाथ प्रसाद कृत—'अनुसन्धान के मूल तत्व', डॉ उदयभानुसिंह कृत—'अनुसन्धान का विवेचन', सं० कृष्णाचार्य का 'हिन्दी के स्वीकृत शोध-प्रबंध', प्रकाशित हो चुके हैं । परन्तु प्रस्तुत ग्रंथ का अनुसंधान की विभिन्न प्रक्रियाओं एवं रूपों से सम्बन्धित अपना निजी महत्व है ।

समग्र रूप में यह पुस्तक शोध-कर्त्ताओं के लिए नितान्त अपेक्षित है ।

आस्तीन के साँप

लेखक—मन्मथनाथ गुप्त, प्रकाशक—राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली; पृष्ठ संख्या—१२४; मूल्य २.५० ।

यह मन्मथनाथ गुप्त का एक समस्या मूलक उपन्यास है । देश के वास्तविक रूप को लेखक ने इसमें विभिन्न पात्रों के माध्यम से व्यक्त किया है । जिस थाली में खाते हैं उसी में छेद करने वाले तत्व देश में किस तेजी से पनप रहे हैं यह इस उपन्यास से भली-भाँति ज्ञात हो जाता है । मि० सिंह या अली ना मालूम कौन हैं वह हिन्दू, मुसलमान या अन्य किसी रूप में छिपा हुआ देशद्रोही तत्व है । वह अपनी देशद्रोहात्मक हरकतों से देश का कितना अनर्थ कर रहा है परन्तु दुर्भाग्य तो यह है कि उस पर कोई अंकुश और नियंत्रण नहीं है । इसी परिप्रेक्ष्य में लेखक ने काश्मीर की वर्तमान समस्या को प्रश्नवाचक चिन्ह के रूप में पाठकों के सम्मुख रखा है । इसी के साथ लेखक ने भूमिका में काश्मीर की ज्वलन्त समस्या के हल के दो समाधान भी प्रस्तुत किये हैं यथा—काश्मीर को निरापद करने का तरीका स्पष्ट रूप से यह था कि वहाँ पाकिस्तानी मनोवृत्ति के मुसलमानों की बहुसंख्या घटा दी जाती । यह दो रूप में हो सकता था । या तो काश्मीरियों को (रूस) के उजवेकियों की तरह बना दिया जाता या उन्हें राष्ट्रीयतावादी मुसलमानों आदि की संख्या बढ़ाकर अल्पसंख्या बना दिया जाता तभी काश्मीर भारत का अविच्छेद्य अंग बन सकता था ।

डॉ० कुमार, अरुणा और वीणा नामक पात्रों के

चरित्र भी उपन्यास के कथानक में बड़े ही रहस्य एवं रोमांच से परिपूर्ण हैं। इन्हीं बातों के कारण उपन्यास में अत्यन्त रोचकता बनी रहती है।

समग्र रूप में उपन्यास रोचक एवं पठनीय है।

अपने पार (कहानी-संग्रह)

लेखक—राजेन्द्र यादव, प्रकाशक—नेशनल पब्लिशिग हाउस, दिल्ली, पृष्ठ—११६, मूल्य-३.००।

प्रस्तुत संग्रह की दस कहानियों में विद्वान् लेखक ने मनुष्य को अपने ही मनन्दरपन के सामने बिठा कर थ्री डाइमेन्शन ही नहीं, टेन डाइमेन्शन यानी दसहुदिसि की कोणगत झाँकी दिखा दी है। 'अपने पार' देखना तो शायद फुलस्टाप ही सिद्ध होगा क्योंकि तत्पश्चात् कुछ भी देखना शेष न रहेगा। लेखक ने तिलमिला देने वाला ही तथ्य कहा है कि पल-पल पलटते दृश्य-पटलों बीच जीवन में पारस्परिक सम्बन्ध उसी तीव्रता से संश्लिष्ट होते जाते हैं। सच, कहानी वही जो बोल भी पड़े! वार्तालाप बन जाए।

यादवजी की कहानियाँ दर्द को थपकियाँ दे-दे के सुलाने की अपेक्षा हर ज़ख्म को ज़ुबां देने की क्षमता रखती हैं। प्रत्येक कहानी में परिलक्षित विद्रोह, स्वास्थ्यकर विद्रोह, रचनात्मक विद्रोह हमारे बीमार दिलो-दिमाग़ के लिए आवश्यक भी है। लेखक इस प्रयास में पूर्णतः सफल है।

मानव की कहानी

लेखक—राहुल सांकृत्यायन, प्रकाशक—राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली; मूल्य—२.००।

नानी-दादी से नींद बुलाने योग्य कहानी (बेड टाइम स्टोरी) सुनाने का आग्रह करने वाले नन्हें-मुन्नों के लिए एक कहानी—एक रात के हिसाब से महीने भर का पाथेय विश्वप्रसिद्ध महापण्डित राहुलजी ने इस पुस्तिका के तीस पाठों में दे दिया है। सिद्धान्ततः भी किसी पण्डित अथवा महापण्डित का पाण्डित्य इसी में परखा जाता है कि जिस स्तर के पाठकों हेतु उसने अपना कृतित्त्व दिया है, उसमें वह कहाँ तक सफल हुआ है। इस दृष्टि से राहुल जी के प्रस्तुत कृतित्व के विषय में कुछ भी कहना दिवाकर को दीपक दिखाना है।

गुहानिवासी अर्द्धमानव से प्रारम्भ होकर प्रस्तर युग और ताम्र युग की मंजिलें पार करके इस 'मानव की कहानी' ने वर्तमान शताब्दी की शबनमी सुबह पर विराम लिया है। मानव-विकास की कहानी तो गंगा की धारा है; उसे विराम कहाँ? अल्पविराम भले ही हो; पूर्ण विराम कहाँ? जहाँ से जहाँ तक यह 'मानव की कहानी' चली है, नानी-दादी की गोद में दुबका बाल-मानस मानव के क्रमिक विकास की कहानी समझ लेगा और उसमें रसानुभूति कर लेगा। यही शैली की रोचकता है, लेखन और लेखनी की सफलता है।

प्रकाशक ने प्रस्तुत पुस्तक को 'प्रथम संस्करण' घोषित किया है। उचित रहेगा कि आगामी संस्करण में अन्तिम कहानी का लेखन काल भी उद्घाटित कर दिया जाये। यह आवश्यक इसलिए भी है कि—मानव की कहानी बढ़ ही रही हैं, बढ़ती रहेगी ही।

भारतीय शिक्षा की सामयिक समस्याएँ

लेखक—रामखेलावन चौधरी एवं राधावल्लभ उपाध्याय, प्रकाशक—विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा; पृष्ठ ४१६, मूल्य ६.००।

श्री रामखेलावन चौधरी और श्री राधावल्लभ उपाध्याय द्वारा लिखित उत्तम पुस्तक 'भारतीय शिक्षा की सामयिक समस्याएँ' के विषय में यह कहना व्यर्थ है कि यह कृति अत्यन्त उग्र कोटि की विद्वता का प्रमाण है। लेखकों ने भारतीय शिक्षा की अति आधुनिक तथा सामयिक समस्याओं से सम्बन्धित लगभग सभी महत्वपूर्ण विषयों पर अपने विचार बड़े मनोरंजक एवं प्रभावपूर्ण ढंग से प्रकट किये हैं। पुस्तक की भाषा सादी, बोधगम्य और शैली प्रवाहपूर्ण है।

राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा बी० एड० परीक्षा के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुकूल यह पुस्तक लिखी गयी है और मुझे विश्वास है कि शिक्षा के गंभीर विद्यार्थियों के लिए यह उपयोगी सिद्ध होगी। इस देश की प्रशिक्षण संस्थाओं के छात्राध्यापकों के लिए इसकी उपयोगिता निर्विवाद सिद्ध होगी।

सम्प्रति, भारतीय शिक्षा की समस्याओं को लेकर लिखी गयी पुस्तकों की संख्या बहुत कम है और यह पुस्तक स्वागत के योग्य है।

शोध-ग्रन्थ

प्रसाद-दर्शन (डी० लिट० का शोध-प्रबन्ध), डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना, डिमाई, पृष्ठ ३४२, मूल्य १२.००
हिन्दी में शब्दालङ्कार विवेचन, डा० देशराजसिंह भाटी, डिमाई, पृष्ठ ३६८, मूल्य २०.००
सूरदास और नरसिंह मेहता तु० अध्ययन, डा० भ्रमरलाल जोशी, डिमाई, पृष्ठ ३२२, मूल्य ३५.००
गुरुमुखी लिपि में हिन्दी गद्य, गोविन्दनाथ राजगुरु, डिमाई, पृष्ठ ३७१, मूल्य १६.००
मध्यकालीन रस दर्शन और सौन्दर्य बोध, रमेश कुन्तल मेघ, डिमाई, पृष्ठ ३६५, मूल्य १६.००
हिन्दी वैष्णव भक्ति काव्य, काव्यादर्श तथा काव्य सिद्धान्त, योगेन्द्र प्रतापसिंह, डिमाई, पृष्ठ ३२३३ मूल्य २०.००
गुरु गोविन्दसिंह और उनकी हिन्दी कविता, डा० महीपसिंह, डबल क्राउन, पृष्ठ ३६०, मूल्य ३०.००
कबीर काव्य का भाषा शास्त्रीय अध्ययन, भगवत प्रसाद दुबे, डिमाई, पृष्ठ २७२, मूल्य १५.००

आलोचना

हिन्दी सा० का वृहत इतिहास भाग ४, सं० परशुराम चतुर्वेदी, डबल क्राउन, पृष्ठ ५५८, मूल्य ३०.००
शब्दार्थ दर्शन, रामचन्द्र वर्मा, डिमाई, पृष्ठ ६६४, मूल्य ३५.००
निराला स्मृति ग्रन्थ, सं० ओंकार शरद, डबल क्राउन, ५५०, मूल्य ३०.००
निराला की साहित्य साधना, रामविलास शर्मा, डिमाई, पृष्ठ ६३०, मूल्य २७.००
कामायनी की पारिभाषिक शब्दावली, वेदज्ञ आर्य, डबल क्राउन, पृष्ठ ५१२, मूल्य ३५.००
जायसी का पदमावत शा० भाष्य, गोविन्द त्रिगुणायत, डिमाई, पृष्ठ ८५३, मूल्य ३०.००
प्रसाद के नाटक एवं नाट्य शिल्प, शान्तिस्वरूप गुप्त, डिमाई, पृष्ठ २०८, मूल्य १५.००
ब्रजभाषा काव्य में राधा, ऊषा पुरी, डिमाई, पृष्ठ १२८, मूल्य १०.००
बच्चन निकट से, सं० आजित कुमार एवं ओंकारनाथ, डिमाई, पृष्ठ २५३, मूल्य १५.००
नयी कहानी प्रकृति और पाठ, श्री सुरेन्द्र, डिमाई, पृष्ठ ३४५, मूल्य २५.००
साहित्य सिद्धान्त, अस्टिन वारेन, डिमाई, पृष्ठ ३७७, मूल्य १२.००
शब्दों का अध्ययन, भोलानाथ तिवारी, डिमाई, पृष्ठ २४०, मूल्य ८.००
साहित्य विविध सन्दर्भ, लोढार लुत्से, डिमाई, पृष्ठ ९४, मूल्य ८.००
बिहारी की काव्य कला, राजकिशोरसिंह, डिमाई, पृष्ठ १६८, मूल्य ५.००
बिहारी और उनकी सतसई, राजकिशोरसिंह यादव, डिमाई, पृष्ठ ३५८, मूल्य १५.००
समीक्षा के संदर्भ, भगवतशरण उपाध्याय, डिमाई, पृष्ठ २२०, मूल्य ८.००
भाषा विज्ञान की रूपरेखा, हरीश शर्मा, डिमाई, पृष्ठ २९२, मूल्य १२.५०
साहित्य परिशीलन, रामेश्वरनाथ भार्गव एवं देवीकृष्ण गोय, डिमाई, पृष्ठ ३७१, मूल्य ५.७५
सृजन की मनोभूमि, डा० रणवीर रांग्रा, डिमाई, पृष्ठ १७१, मूल्य १०.००

दिशाओं का परिवेश, ललित शुक्ल, डिमाई, पृष्ठ २८६, मूल्य १६.००
अमृत और विष, श्याम मिश्र, क्राउन, पृष्ठ २७२, मूल्य १०.००
प्रयोगवाद और अज्ञेय, शैल सिन्हा, डिमाई, पृष्ठ १७२, मूल्य १०.००
निराला, पदमसिंह शर्मा, डिमाई, पृष्ठ २७७, मूल्य ८.५०
प्रेमचन्द, डा० प्रतापनारायण टण्डन, डिमाई, पृष्ठ १६०, मूल्य ९.००
सुबोध काव्यशास्त्र, विश्वम्भर अरुण, क्राउन, पृष्ठ १४४, मूल्य २.००
कबीर काव्य संग्रह, (कबीर के पद और साखियाँ टीका एवं आलोचना सहित) डा० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी, क्राउन, पृष्ठ ३६४, मूल्य ३.५०
साहित्यिक-निबन्ध, (११ वाँ संस्करण), राजनाथ शर्मा, डिमाई, पृष्ठ ८८३, मूल्य १०.००
राम की शक्ति पूजा और निराला, (पुनर्मुद्रण), देवेन्द्र शर्मा इन्द्र, क्राउन, पृष्ठ २८४, मूल्य ३.५०
आचार्य शुक्ल और त्रिवेणी, (पुनर्मुद्रण), राजनाथ शर्मा, क्राउन, पृष्ठ २१२, मूल्य २.५०

उपन्यास

ऋतुचक्र, इलाचन्द्र जोशी, क्राउन, पृष्ठ ५६४, मूल्य १५.००
सेतुबन्ध, मनोजवसु, डिमाई, पृष्ठ ३३५, मूल्य १२.००
कगार और फिसलन, विमलमित्र, क्राउन, पृष्ठ १५८, मूल्य ५.००
नायिका, विमल मित्र, डिमाई, पृष्ठ १६०, मूल्य ६.००
एक दो तीन, शंकर, क्राउन, पृष्ठ १६०, मूल्य ५.००
आठवीं भांवर, आनन्द प्रकाश जैन, क्राउन, पृष्ठ १९५, मूल्य ५.००
कर्निवाल, कृष्णचन्द्र, क्राउन, पृष्ठ १६५, मूल्य ४.००
यारों के यार तिन पहाड़, कृष्णा सोवती, क्राउन, पृष्ठ १४२, मूल्य ४.००
इमरतिया, नागार्जुन, क्राउन, पृष्ठ ११५, मूल्य ३.००
एक प्यासा तालाब, श्याम व्यास, क्राउन, पृष्ठ १४६, मूल्य ४.५०
बहता पानी रमता जोगी, ओमप्रकाश निर्मल, क्राउन, पृष्ठ ११२, मूल्य ३.००
चार बहनें, लुइसा एम स्काट, क्राउन, पृष्ठ ३६४, मूल्य ६.००
कटी पतंग गुलशन नन्दा, क्राउन, पृष्ठ २२२, मूल्य ४.५०
बाहर और परे, अनु० निर्मल वर्मा, क्राउन, पृष्ठ १७८, मूल्य ५.००
जंगली भंगली, अनु० द्रोणवीर कोहली, क्राउन, पृष्ठ १४१, मूल्य ३.००
एक किरण सौ झाइयाँ, जानकी वल्लभ शास्त्री, क्राउन, पृष्ठ १५९, मूल्य ५.५०
लोहे की लाशें, सुदर्शन सिंह, क्राउन, पृष्ठ २७६, मूल्य ७.००
आँखों की देहलीज, मेहरून्निसा परिवेश, क्राउन, पृष्ठ १४४, मूल्य ५.००
चरित्र का समझौता, शिवदत्त, क्राउन, पृष्ठ १२७, मूल्य ४.००
जलती गोद, अज्ञात, क्राउन, पृष्ठ २३१, मूल्य ७.५०
दिव्या, यशपाल, क्राउन, पृष्ठ २३२, मूल्य ४.५०
सोनार वाड़ी के पार, गंगाप्रसाद मिश्र, क्राउन, पृष्ठ १२८, मूल्य ४.५०
अपने पराए, राजवंश, क्राउन, पृष्ठ १४७, मूल्य ३.५०

अपने से अलग, गंगाप्रसाद विमल, क्राउन, पृष्ठ २०३, मूल्य ६.००
रहीम, प्रेमचन्द महेश, क्राउन, पृष्ठ १६७, मूल्य ३.५०
अपराध और दण्ड, अनु० सुदर्शन चोपड़ा, क्राउन, पृष्ठ १७०, मूल्य ३.५०

कहानियाँ

युद्ध की कीमत, अनु० शिवदानसिंह क्राउन, पृष्ठ २२७, मूल्य ५.००
लाजवंती, द्विजेन्द्रनाथ मिश्र, क्राउन, पृष्ठ १४४, मूल्य ३.५०
मन्नू भण्डारी की श्रेष्ठ कहानियाँ, मन्नू भण्डारी, क्राउन, पृष्ठ १६४, मूल्य ५.००
निठल्ले की डायरी, हरिशंकर परसाई, क्राउन, पृष्ठ १६१, मूल्य ५.५०
लोग बिस्तरों पर, काशीनाथ सिंह, क्राउन, पृष्ठ ११९, मूल्य ४.५०
लक्ष्मी वाहन, परशुराम, क्राउन, पृष्ठ १२१, मूल्य ४.००
बेचारी राधा, कौशिल्या अश्क, क्राउन, पृष्ठ १६४, मूल्य ५.५०
बादलों के बीच धूप, कमल जोशी, क्राउन, पृष्ठ १३३, मूल्य ४.००
गली कूचे, सं० गुलशन नन्दा, क्राउन, पृष्ठ १६८, मूल्य ४.५०
मुट्ठी भर पहचान, अविन्ता अग्रवाल, क्राउन, पृष्ठ १३९, मूल्य ४.००
एक अदद औरत, मस्तराम कपूर, क्राउन, पृष्ठ १२०, मूल्य ४.००

काव्य

निशीथ एवं अन्य कविताएँ, उमाशंकर जोशी, डिमाई, पृष्ठ ३५१, मूल्य १०.००
पतझर, सुमित्रानन्दन पंत, डिमाई, पृष्ठ २८५, मूल्य १५.००
अतुकान्त, लक्ष्मीकान्त वर्मा, डिमाई, पृष्ठ १८५, मूल्य ५.००
अनार नर, गोपाल प्रसाद व्यास, डिमाई, पृष्ठ १०५, मूल्य ६.००
पंख कटा मेघदूत, प्रक्षय जैन, डिमाई, पृष्ठ ९८, मूल्य ५.००
चकित है दुख, भवानी प्रसाद मिश्र, डिमाई, पृष्ठ १२८, मूल्य ७.००
हम हिन्दू हैं विराज, क्राउन, पृष्ठ १४८, मूल्य ५.००
देखती आकाश आँखें, श्रुतीक्षण कुमार, डिमाई, पृष्ठ ६४, मूल्य ४.००

नाटक

न्याय की रात, चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार, क्राउन, पृष्ठ १५०, मूल्य ३.५०
लहरों के राजहंस, मोहन राकेश, क्राउन, पृष्ठ १४०, मूल्य ६.००
आधे और अधूरे, मोहन राकेश, क्राउन, पृष्ठ ११३, मूल्य ६.००
अमर बलिदान, हरिकृष्ण प्रेमी, क्राउन, पृष्ठ १५६, मूल्य ४.५०
कलंकी, लक्ष्मीनारायणलाल, क्राउन, पृष्ठ ६४, मूल्य ३.५०

मनोविज्ञान, शिक्षा

बाल मनोविज्ञान, (संशोधित तृतीय संस्करण), भाई योगेन्द्रजीत, डिमाई, पृष्ठ ३४०, मूल्य ८.००
समाज मनोविज्ञान, (प्रारम्भिक अध्ययन) डा० एस० एस० माथुर, डिमाई, पृष्ठ ३०६, मूल्य ७.००

विद्यालय प्रशासन एवं संगठन, (संशोधित संस्करण), श्रीमती एस० पी० सुखिया, डिमाई, पृष्ठ ३४७, मूल्य ६.००
शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा, (द्वितीय संशोधित संस्करण), भाई योगेन्द्रजीत, डिमाई, मूल्य ६.००
शिक्षा और समाज व्यवस्था, वट्रेण्ड रसेल, डिमाई, पृष्ठ १७२, मूल्य ९.००
अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव के लिए शिक्षा, अनु० जीवननायक, डिमाई, पृष्ठ १२३, मूल्य ७.५०
राष्ट्रीयता तथा भारतीय शिक्षा, अनु० उर्मिला दीक्षित, डिमाई, पृष्ठ १७९, मूल्य ६.२५

विविध

हिन्दी विश्व कोश (भाग १०), रामप्रसाद त्रिपाठी, डबल डिमाई, पृष्ठ ४९६, मूल्य ३०.००
इतिहास चक्र, डा० राममनोहर लोहिया, डिमाई, पृष्ठ १०३, मूल्य ४.५०
पहाड़ी चित्रकला, किशोरीलाल वैद्य एवं प्रेमचद हांडा, डबल डिमाई, पृष्ठ २६३, मूल्य ७०.००
वेदार्थ प्रवेशिका, सम्पूर्णानन्द, क्राउन, पृष्ठ ८४, मूल्य २.५०
श्री और सौरभ, उमाशंकर जोशी, डिमाई, पृष्ठ १९८, मूल्य ८.००
कुछ उथले कुछ गहरे, इन्द्रनाथ मदान, क्राउन, पृष्ठ १३९, मूल्य ३.००
हलो हलो, गोपाल प्रसाद व्यास, डिमाई, पृष्ठ १०३, मूल्य ६.००
तो क्या होता, गोपाल प्रसाद व्यास, डिमाई, पृष्ठ १०३, मूल्य ६.००
और अन्त में, हरिशंकर परिसाई, क्राउन, पृष्ठ १४७, मूल्य ४.५०
युगद्रष्टा भगतसिंह, वीरेन्द्र सिंधु, डिमाई, पृष्ठ ३४३, मूल्य १५.००
राधा कृष्णन्, राजेन्द्रपाल, डिमाई, पृष्ठ ९८, मूल्य ४.२५
नाना साहेब पेशवा, श्री निवास लालाजी हार्डीकर, क्राउन, पृष्ठ २८८, मूल्य ७.००
एडीसन, संतराम वत्स्य, क्राउन, पृष्ठ ६८, मूल्य १.२५
कैनेडी, सी० सोरेन्सन, डिमाई, पृष्ठ १६७, मूल्य ३.००
प्रफुल्ल चन्द्र राय, संतराम वत्स्य, क्राउन, पृष्ठ ६८, मूल्य १.२५
आइन्स्टाइन, संतराम वत्स्य, क्राउन, पृष्ठ ५६, मूल्य १.२५
आजादी के पहरेदारी में, सत्यदेव नारायण, क्राउन, पृष्ठ ११२, मूल्य ४.००
आखिरी चट्टान तक, मोहन राकेश, क्राउन, पृष्ठ १२५, मूल्य ३.००
भल्लिनाथ की परम्परा रवीन्द्रनाथ त्यागी, क्राउन, पृष्ठ १८२, मूल्य ५.५०
प्रगति के स्वर, अनु० तारातिक्कू, डिमाई, पृष्ठ १०३, मूल्य ७.५०
ब्रह्माण्ड दर्शन, छोटू भाई सुथार, डबल डिमाई, पृष्ठ २७२, मूल्य २०.००
हिन्दी रचना प्रबोध, डा० बच्चूलाल, क्राउन, पृष्ठ १८२, मूल्य ३.००
संस्कृत सूक्ति रत्नाकर, रामजी उपाध्याय, क्राउन, पृष्ठ २०६, मूल्य ३.५०
वेदान्त सार, संत नारायण श्रीवास्तव, डिमाई, पृष्ठ २२८, मूल्य १०.००
स्मृति के वातायन से, जानकी वल्लभ शास्त्री, क्राउन, पृष्ठ १६८, मूल्य ४.००
हिमनील, भगवतीशरण सिंह, डिमाई, पृष्ठ १३७, मूल्य १०.००

प्राप्ति–स्थान

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा.

शिक्षा-समस्या विशेषांक पसन्द आया। अनेक निबन्ध बहुत अच्छे हैं। आपका प्रयास सराहनीय है। विनोद जी को विशेष रूप से बधाई दे दें।

—डा० एस० एल० माथुर, चण्डीगढ़

साहित्य-परिचय के विशेषांकों की शृङ्खला में आपका यह प्रयास स्तुत्य है। वस्तुतः आपने अपने गौरव के अनुकूल यह विशेषांक विद्वत्समाज के समक्ष प्रस्तुत किया है। विशेषांक में शिक्षा जगत के शीर्षस्थ विद्वानों ने शिक्षा-समस्याओं पर विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार करते हुए उनका तात्विक निरूपण किया है तथा अपने ठोस सुझाव भी प्रस्तुत किए हैं। अतः यह विशेषांक शिक्षा-शास्त्रियों के लिए चिन्तन के क्षेत्र खोलता है और प्रेरणा देता है। मेरी बधाई स्वीकार करें।

—डा० इन्द्रपालसिंह 'इन्द्र', नागपुर

'साहित्य-परिचय' का **शिक्षा-समस्या विशेषांक** यथा समय प्राप्त हुआ। बड़ी दिलचस्पी से उसे पढ़ने में लग गया। आपको उपयोगी, पठनीय लेख प्रकाशित करने में सफलता प्राप्त हुई है। बधाइयाँ। मार्गदर्शन में इससे बहुत सहायता पहुँचेगी।

—देवदूत विद्यार्थी, त्रिपूणितुरा (केरल)

शिक्षा-समस्या विशेषांक मिला, धन्यवाद। बड़े परिश्रम से आपने उपयोगी सामग्री का संकलन किया है। विशेषांक निःसन्देह संग्रहणीय और उपादेय है। बधाई स्वीकार करें।

—गोपालप्रसाद व्यास दिल्ली

'साहित्य-परिचय' **शिक्षा विशेषांक** प्राप्त हुआ, धन्यवाद। पत्रिका की प्रतीक्षा में ही था। लगातार कई लेख पढ़ने का अवसर मिला। पत्रिका छोड़ने की इच्छा नहीं हो रही है। राष्ट्रभाषा हिन्दी की तथा शिक्षा के क्षेत्र में यह पत्रिका माइल स्टोन (Mile-stone) मानी जाएगी। आपका कार्य प्रशंसनीय है और आशा नहीं विश्वास करता हूँ कि भविष्य में भी इसी प्रकार के विशेषांकों से हिन्दी जगत की सेवा करते रहेंगे।

—भरतसिंह ठाकुर, महबूब नगर

आपका 'साहित्य-परिचय' का **शिक्षा-समस्या विशेषांक** प्राप्त हुआ। यह अङ्क अपने ढंग का और अत्यन्त उपयोगी है। योग्य लेखकों के निबन्ध पठनीय होने के साथ-साथ मननीय भी हैं। आपको इस सम्बन्ध में जितना भी धन्यवाद दिया जाय, कम ही है। आशा है साहित्य-परिचय द्वारा लोक कल्याण की भावना का विकास आपके सम्पादकत्व में उत्तरोत्तर होता ही रहेगा।

—गुरु रामप्यारे अग्निहोत्री, रीवा

विशेषांक वास्तव में अति उत्तम तथा उपयोगी है। आशा है कि सम्बन्धित क्षेत्रों के व्यक्ति इससे काफी मात्रा में लाभान्वित होंगे।

—रामपालसिंह वर्मा, अजमेर

'शिक्षा-समस्या विशेषांक' की प्रति प्राप्त हुई। सम्पादक द्वय एवं परामर्श दाता बधाई के पात्र हैं। आज की शिक्षा कई प्रश्न लिए हुए है, कई समस्याएँ लिए हुए है। आज का विद्यार्थी वर्ग एक ऐसे चौराहे पर खड़ा है जहाँ वह यह भूल गया है कि किस राह से आया है और उसे यह विदित नहीं कि किस राह को अपनाए। परिवार, शिक्षक, समाज एवं राजनीति के परिपार्श्व में उसकी इस स्थिति पर सम्यक् विचार किया गया है इस अंक के निबन्धों में। शिक्षा का अतीत क्या था, वर्तमान क्या है और भविष्य क्या होना चाहिए इस पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला है।

आपके विशेषांकों की परम्परा में इस विशेषांक का मूल्य निस्सन्देह बहुत अधिक है।

जगमोहन मिश्र, बिलासपुर

बिना टिकट प्रेषण करने का प्रमाण-पत्र संख्या—५७

हमारी आगामी शैक्षिक सत्र में भेंट

कबीर-ग्रन्थावली (सटीक)
डा० भगवत्स्वरूप मिश्र

विद्यापति पदावली (सटीक)
डा० देशराजसिंह भाटी

रामचन्द्रिका (संक्षिप्त, सटीक)
देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र'

बिहारी सतसई (संक्षिप्त, सटीक)
देवेन्द्र शर्मा इन्द्र

मैथिलीशरण गुप्त और उनका काव्य
दान बहादुर पाठक

साकेत : एक अध्ययन
दान बहादुर पाठक

महाकवि देव
सीताराम शास्त्री

पाश्चात्य साहित्य शास्त्र
डा० कृष्ण वल्लभ जोशी

भारतीय काव्य शास्त्र
प्रो० कृष्णदेव शर्मा

पाश्चात्य काव्य शास्त्र
प्रो० कृष्णदेव शर्मा

औद्योगिक मनोविज्ञान
डा० आर० के० ओझा

बाल व्यवहार विकास
डा० सरयू प्रसाद चौबे

शैक्षिक पर्यवेक्षण के मूल तत्व
पारसनाथ राय

नैतिक-शिक्षा शिक्षण
के० सी० मलैया

शिक्षण कला
भाई योगेन्द्रजीत

काष्ठ कला शिक्षण
डा० सत्यनारायण दूबे

चित्रकला शिक्षण
आर० पी० वैश्य

संस्कृत साहित्य की प्रवृत्तियाँ
डा० जयकिशन प्र
पं० सदाशिव शास्त्री मुसलगाँव

संस्कृत-नाट्य साहित्य
डा० जयकिशन प्र
पं० सदाशिव शास्त्री मुसलगाँव

अभिज्ञान शाकुन्तल चतुर्थ अं (सटीक)
डा० रामकृष्ण आ

कालिदास और उनकी शकुन्त
डा० जयकिशन प्र

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा.

प्रकाशक एवं मुद्रक : विनोदकुमार अग्रवाल। हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस के हेतु कैलास प्रिंटिंग प्रेस, आगरा—२ में मुद्रित

साहित्य-परिचय

राष्ट्रभाषा और साहित्य की गतिविधियों का परिचायक पत्र

मई १९६९

यह भी सच है कि शिक्षा-जगत की हालत बहुत खराब है। एक पागल भीड़ हमारे विश्वविद्यालयों के दरवाजे खटखटा रही है, और हम उन्हें शिक्षित-दीक्षित करके अपने राष्ट्र के सम्मानित और पूर्ण सदस्य बनाने की स्थिति में नहीं हैं। यह स्थिति हमें कहाँ ले जायगी ? मैं इस सवाल पर सोचता हूँ तो सोचता रह जाता हूँ। इसी सवाल से जुड़ा हुआ एक सवाल और है—नगरों की ओर बढ़ती हुई भीड़। इसे रोकना होगा, रोकना ही होगा। हमें शिक्षित युवकों को इस बात के लिए प्रेरित करना होगा और सारी सुविधाएँ देनी होंगी कि शिक्षा पूर्ण करने पर वे उसी वर्ग की, उसी क्षेत्र या अंचल को, अपनी सेवाएँ अर्पित कर सकें जिसने उन्हें पढ़ाया-लिखाया है, और जिसका उन पर अधिकार है। क्रान्ति की आवश्यकता हमें शायद न हो, लेकिन मैं यह जरूर महसूस करता हूँ कि आज भारतीय शिक्षा जिस विन्दु पर आ पहुँची है वहाँ हमें कुछ अत्यधिक प्रगतिशील कदम उठाने ही होंगे। इसके विना काम नहीं चल सकता !

—डा० बी० एन० गांगुलि

कुलपति—दिल्ली विश्वविद्यालय

शिक्षा-समस्या विशेषांक

विद्वानों व पाठकों की दृष्टि में

'साहित्य-परिचय' का शिक्षा-समस्या विशेषांक प्राप्त हुआ। आद्योपान्त पढ़ने के उत्कट आकर्षण को रोक न सका। इसमें वर्तमान भारतीय शिक्षा के विषय में अत्यन्त उपयोगी, ज्ञानप्रद तथा बहुमुखी लेखों का संकलन किया गया है। आज भारत में ऐसे जागरूक प्रकाशन की अत्यन्त आवश्यकता है। प्रत्येक शिक्षा-प्रेमी के लिए यह एक मूल्यवान, विचारोत्तेजक तथा संग्रहणीय प्रकाशन है। प्रधान सम्पादक, सम्पादक, प्रबन्ध-सम्पादक तथा अन्य जिन लोगों ने कठिन परिश्रम और लगन के साथ इस विशेषांक को इतना सफल बनाया है वे सभी बधाई के पात्र हैं।

—प्रो० बी० डी० सिंह

प्राचार्य—राजा बलवन्तसिंह कालेज आफ एजूकेशन, आगरा

'साहित्य-परिचय' के विशेषांक अपने विषय का पूर्ण विवेचन प्रस्तुत करते हैं। वर्तमान अङ्क भी अपनी पूर्व परम्परा के अनुरूप शिक्षा-समस्याओं पर अच्छा प्रकाश डालता है। कृपया मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार कीजिए।

—विनयमोहन शर्मा

हिन्दी विभागाध्यक्ष, विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

'शिक्षा-समस्या विशेषांक' मिला। लगभग सभी लेख पढ़े। लेख अत्यन्त विचारोत्तेजक और रोचक शैली में लिखे गए हैं। उनसे शिक्षा-सम्बन्धी विविध समस्याओं पर प्रकाश पड़ता है।—डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

'साहित्य-परिचय' का शिक्षा-विशेषांक अब पूरा पढ़ पाया हूँ। सामग्री की गम्भीरता तथा रोचकता ने मुझे इतना प्रभावित किया कि कोई भी लेख बिना पढ़े छोड़कर अंक, पत्रिकाओं के संग्रह में सम्मिलित कर देना सम्भव नहीं हो सका। अब, जबकि मैं पूरा अङ्क पढ़ चुका हूँ, यह धारणा बन गई है कि आपने शिक्षा समस्या की दिशा में स्थायी महत्व का कार्य किया है। निश्चय ही हर शिक्षक को इस सामग्री से अपने शिक्षण कार्य में लाभ पहुँचेगा। इस महत्वपूर्ण शिक्षा-कार्य के लिए मेरी बधाई। —डा० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'

विश्वविद्यालय, उदयपुर

'शिक्षा-समस्या विशेषांक' की प्रति यथासमय मिल गई थी। शिक्षा क्षेत्र की विभिन्न समस्याओं पर उक्त विशेषांक में प्रस्तुत सामग्री द्वारा पर्याप्त प्रकाश पड़ जाता है। शिक्षा की प्रगति के लिए वित्तीय अभाव का प्रश्न पर्याप्त जटिल है। यदि स्वैच्छिक संस्थायें इस दिशा में आगे न आवें तो समस्या का आंशिक निराकरण ही होगा। सफाई, छपाई और सामग्री-संकलन की दृष्टि से साहित्य-परिचय का यह विशेषांक संग्रहणीय होगा।

—जीवन नायक, उप निदेशक,

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय (शिक्षा मंत्रालय), नई दिल्ली

इस विशेषांक में शिक्षा की विभिन्न समस्याओं पर संग्रहीत लेख काफी सुविचारित एवं तथ्यपरक लगे। सर्वश्री वेणीशंकर झा, डा० गोपालदत्त सारस्वत, श्री लक्ष्मी नारायण दुबे और श्री रामविलास शर्मा के निबन्ध विशेष स्पृहणीय हैं।

—(श्रीमती) तारा तिक्कू

संपादिका—"भाषा" (शिक्षा मंत्रालय), नई दिल्ली

आप द्वारा सम्पादित 'साहित्य-परिचय' का शिक्षा समस्या विशेषांक देखा। बड़ा सुन्दर निकला है। इतने सुन्दर लेखों का एकत्र संग्रह सचमुच एक महत्वपूर्ण पुस्तक के सदृश है। इसके लिए आपको हार्दिक बधाई है।

—रमापति शुक्ल, वाराणसी
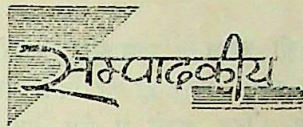
साहित्य-परिचय

[शिक्षा और साहित्य की प्रगति का परिचायक पत्र]

वर्ष ४ : अंक ५
मई, १९६९

सम्पादक
विनोदकुमार अग्रवाल
एम. ए., साहित्यरत्न

प्रबन्ध सम्पादक
सतीशकुमार अग्रवाल

स्वामित्व
विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–२

मूल्य
एक प्रति ०.२५ : वार्षिक ५.००

साहित्य-परिचय
डॉ० रांगेय राघव मार्ग
आगरा–२
फोन : ७६४८६

धन, श्रम और शक्ति का दुरुपयोग मत कीजिए

हमारा देश आर्थिक रूप से बहुत साधन-सम्पन्न तो नहीं है पर जो साधन और सुविधाएँ हमारे पास हैं, उनका भी हम ठीक-ठीक दिशा में उपयोग नहीं कर पाते। साहित्य और कला की समृद्धि के लिए भारत सरकार किसी न किसी रूप में आर्थिक सहायता अवश्य देती है। विश्वविद्यालयों की सहायता के लिए 'विश्वविद्यालय अनुदान आयोग' भी काफी महत्वपूर्ण संस्था है। इसके अतिरिक्त कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में हजारों विद्यार्थी हैं जो किसी न किसी विषय पर खोज कार्य कर रहे हैं और कारखानों में जिस प्रकार उत्पादन होता है उसी प्रकार शोध-प्रबन्धों का भी विश्वविद्यालयों में उत्पादन हो रहा है। शिक्षा-संस्थाएँ अपनी गम्भीरता खो बैठी हैं और जो भी आर्थिक सहायता उन्हें दी जाती है, उसे वे ठीक ढंग से काम में नहीं लातीं। धन और श्रम तथा शक्ति का दुरुपयोग कैसे हो रहा है? इसका विश्लेषण करने के लिए अभी हम हिन्दी से उदाहरण देना चाहते हैं यद्यपि यह समस्या केवल हिन्दी की ही नहीं, अन्य सभी भारतीय भाषाओं की है। शोध के नाम पर जिस प्रकार श्रम का दुरुपयोग है, उसकी भी हम कभी चर्चा करेंगे।

हिन्दी में लगभग दो लाख रुपये का अपव्यय कोश-निर्माण में हुआ है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने पाँच भागों में एक प्रामाणिक कोश तैयार कराया है। हमें ठीक-ठीक तो नहीं मालूम है पर इस पर कुल खर्च डेढ़-दो लाख से कम न बैठा होगा। कोश एकदम बेकार तो नहीं है पर इससे अच्छा काम दूसरे ढंग से किया जा सकता था। इस डेढ़-दो लाख रुपयों से 'नागरी प्रचारिणी सभा' का पुराना कोश जिसमें हमारे विद्वानों ने काफी खून-पसीना दिया है, काफी अच्छा बनाया जा सकता था। एक आधार तैयार था, एक नींव बन चुकी थी, जिसमें परिवर्द्धन और परिवर्तन से उसको अधिक उपयोगी बनाया जा सकता था। नागरी प्रचारिणी सभा अपने पुराने कोश को संशोधन के साथ फिर छाप रही है। एक ही कार्य के लिए दो संस्थाएँ धन खर्च कर रही हैं और उनके स्तर में थोड़ा-बहुत ही अन्तर है। उपयुक्त तो यह होता कि सम्मेलन किसी ऐसी दिशा में काम करता जो हमारे लिए अधिक उपयोगी होता। हिन्दी में आदिकालीन और मध्ययुगीन साहित्य का कोश नहीं है। रीतिकाल काल के ग्रन्थों का भी कोई कोश नहीं है। सम्मेलन यदि इस कार्य को हाथ में लेकर आगे बढ़ा होता तो

आज एक और महत्वपूर्ण सन्दर्भ ग्रन्थ से हिन्दी धनी होती।

नागरी प्रचारिणी सभा ने एक और गलती की कि जब सम्मेलन ने कोश तैयार ही कर दिया था तब उसे अपना कोश पुनर्मुद्रित करने में पैसे नहीं खर्च करना चाहिए था। हिन्दी में ऐसे विषय और क्षेत्र हैं जिनमें काम बिल्कुल नहीं हुआ है। "भारतीय भाषाओं का तुलनात्मक कोश", "हिन्दी की बोलियों का कोश" जैसे क्षेत्र अछूते पड़े हैं। एक ही विषय पर एक ही ढंग से दो संस्थाएँ काम करें, इससे तो अच्छा यह है कि दो संस्थाएँ अलग-अलग दिशाओं में कार्य करें जिनसे उन अंगों की पूर्त्ति हो जिनके लिए हिन्दी अभी भी रंक बनी हुई है।

एक दूसरा उदाहरण हिन्दी साहित्य के इतिहास का है। 'नागरी प्रचारिणी सभा' ने १८ खण्डों में हिन्दी का विशद् इतिहास छापना शुरू किया है। उसके गुण और दोष के विवेचन का यह स्थल नहीं है पर सुनने में आया है कि 'विश्वविद्यालय योजना आयोग' के धन से हिन्दू विश्वविद्यालय में भी हिन्दी-साहित्य के इतिहास की योजना चल रही है। यदि यह सच है तो यह सरासर रुपये का दुरुपयोग हो रहा है। नागरी प्रचारिणी सभा का इतिहास धीरे-धीरे निकल रहा है। भारतीय हिन्दी परिषद् ने भी हिन्दी का इतिहास प्रकाशित किया है। इस विषय पर डेढ़-दो लाख रुपये और ख़र्च करना अपव्यय ही है। यदि इस नये इतिहास में थोड़ी नई सामग्री आ भी जाय तो भी हम उसको अधिक महत्व देने को तैयार नहीं हैं। उसके पीछे जिस श्रम, शक्ति तथा धन का दुरुपयोग होगा, उसका सदुपयोग कहीं अन्यत्र किया जा सकता था। यदि व्यवसायी व्यवसाय की दृष्टि से इतिहास छापते हैं तो वह एक भिन्न स्थिति है किन्तु संस्थाएँ धन को योजनाबद्ध रूप में नहीं खर्च करतीं और नयी दिशा में उपयोगी काम करने की ओर नहीं बढ़तीं तो हिन्दी समृद्ध न हो सकेगी। हिन्दी के अनेक ग्रन्थ पड़े हुए हैं जिनका प्रामाणिक सम्पादन नहीं हो सका है। प्रामाणिक टीकाएँ उपलब्ध नहीं हैं। शब्दों की अनुक्रमणिकाएँ नहीं हैं। अच्छे कोश नहीं हैं। अनुसन्धान के लिए अच्छी ग्रन्थ-सूचियाँ नहीं हैं। इन दिशाओं में काम किया जाय तो हिन्दी में विद्वत्ता का ठोस आधार तैयार हो सकेगा। सस्ते हल्के विषयों पर उपाधियाँ देने के बजाय विद्यार्थियों को भी इन दिशाओं में लगाया जाय। नौकरी देने में पी-एच० डी० से अधिक महत्व इस बात पर दिया जाय कि तीन वर्ष में हिन्दी का शोधकर्ता क्या ठोस कार्य कर सका है? योजनाबद्ध कार्य करके हिन्दी को अधिक सशक्त बनाने की आज अधिक आवश्यकता है।

भारतीय शिक्षा की पाठ्यक्रम सम्बन्धी समस्याएँ

ईश्वरसिंह
प्राध्यापक, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा

"शिक्षा के विषय क्या होने चाहिए ?" शिक्षा प्रक्रिया का यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। यह प्रश्न शिक्षा में पाठ्यक्रम सम्बन्धी समस्याओं की ओर संकेत करता है। भारतीय शिक्षा का इतिहास प्रमाण प्रस्तुत करता है कि पाठ्यक्रम सम्बन्धी विभिन्न समस्याएँ शिक्षा के क्षेत्र में सदैव रही हैं। मैं इस सन्दर्भ में भारतीय आधुनिक शिक्षा की पाठ्यक्रम सम्बन्धी समस्याओं पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करता हूँ। ब्रिटिशकाल सन् १९१३ ई० में शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं को लेकर विवाद उठ खड़ा हुआ जिसके प्रमुख आधार शैक्षिक उद्देश्य और शिक्षा का माध्यम तथा शैक्षिक उद्देश्यों के अनुरूप ही पाठ्यक्रम का निर्माण करना था, ऐसी दशा में शिक्षा का आधार प्राच्य या पाश्चात्य विचार हों अथवा दोनों का समन्वयात्मक रूप। सन् १८५४ ई० में चार्ल्स वुड के घोषणा-पत्र में भी पाठ्यक्रम संबंधी समस्या का समाधान यह कहकर किया कि हम जिस शिक्षा का प्रसार करना चाहते हैं, उसका उद्देश्य यूरोपीय उच्च कला, विज्ञान, दर्शन एवं यूरोपीय साहित्य अर्थात् संक्षेप में यूरोपीय ज्ञान की शिक्षा देना चाहते हैं। वर्तमान भारतीय शिक्षा की आधार-शिला यह घोषणा-पत्र माना जाता है। इसके उपरान्त शिक्षा का मूल्यांकन करने के लिए समय-समय पर शिक्षा आयोगों की नियुक्ति की गई और उन्होंने पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में अपने विचार प्रस्तुत किए।

इसी काल में भारतीय विद्वानों और देश-प्रेमियों ने यह अनुभव किया कि देश का पुनरुद्धार केवल शिक्षा द्वारा ही सम्भव है। स्वदेशी आन्दोलन के परिणाम-स्वरूप शिक्षा के स्वदेशीकरण अथवा राष्ट्रीयकरण की बात निरन्तर जोर पकड़ती जा रही थी। प्रचलित अंग्रेजी शिक्षा का विश्लेषण करते हुए राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने कहा था कि वर्तमान शिक्षा नीति ब्रिटिश सरकार द्वारा निर्धारित होती है और पूर्णरूपेण शासन से सम्बन्धित होने के कारण इसमें अनेक दोष विद्यमान हैं जिनमें विशेष उल्लेखनीय यह है कि वर्तमान शिक्षा विदेशी सभ्यता और संस्कृति पर आधारित है। अतः सम्पूर्ण पाठ्यक्रम इन पर आधारित विचारों से ओतप्रोत है। इसका सम्बन्ध केवल मस्तिष्क से है।

शिक्षा राष्ट्रोन्नति का प्राण है। अतः सम्पूर्ण शिक्षा का पुनर्गठन होना चाहिए और पाठ्यक्रम इसका मूल आधार है। बालकों की आधारभूत आवश्यकताओं को दृष्टि में रखते हुए राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने बेसिक शिक्षा का स्वरूप प्रस्तुत किया। यह शिक्षा हमारी संस्कृति और सभ्यता का आधार होगी और जीवन की आधारीय आवश्यकताओं की—व्यक्तिगत, सामाजिक, आर्थिक तथा मानसिक—पूर्ति करेगी।

इस विवेचन का अभिप्राय यह है कि प्राथमिक, माध्यमिक, उच्चतर माध्यमिक तथा विश्वविद्यालयीय स्तर पर पाठ्यक्रम का स्वरूप क्या हो ? जिसके द्वारा पूज्य गांधीजी के विचारों के अनुरूप हम जीवन से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान कर सकें। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् यह अनिवार्य है कि विदेशी सत्ता द्वारा प्रचलित शिक्षा पद्धति का आमूल परिवर्तन करके, जन जीवन के सर्वाङ्गीण विकास हेतु ऐसे पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाये जो भारत के नागरिकों को आत्म-निर्भर, स्वावलम्बी, सुसंस्कृत तथा मेधावी बनाकर देश की जनतन्त्रात्मक शासन प्रणाली को सफल बनाये। साथ-साथ भारतीय परम्परा के जीवन और दर्शन के मूल्यों को समझ कर आत्मसात कर सकें।

व्यावहारिक कठिनाइयाँ हमें यह सोचने के लिए विवश करती हैं कि सैद्धान्तिक स्तर पर शैक्षिक लक्ष्यों के सम्बन्ध में निर्णय करना सहज है किन्तु उन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए पाठ्यक्रम सम्बन्धी विभिन्न समस्याओं पर व्यावहारिक उपलब्धि की दृष्टि से सतत् जागरूक रहना आवश्यक है। इस पृष्ठभूमि के साथ हम भारतीय

शिक्षा के पाठ्यक्रम सम्बन्धी यथार्थ समस्याओं पर आते हैं। पाठ्यक्रमीय समस्याओं को वर्गीकृत करने के अनेक आधार हैं परन्तु इनको हम समस्या की व्यावहारिकता को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित रूप में निरूपित कर सकते हैं :—

१. उद्देश्य निर्धारण की समस्याएँ
२. विषयों के चयन की समस्याएँ
३. विधि-विज्ञान की समस्याएँ
४. सामाजिक उत्तरदायित्व की समस्याएँ
५. व्यक्तित्व निर्माण की समस्याएँ
६. प्रशासनिक एवं संगठनात्मक समस्याएँ
७. मूल्यांकन सम्बन्धी समस्याएँ।

ये सभी समस्याएँ एक-दूसरे से सम्बन्धित होते हुए भी अपना अलग विशेष महत्त्व रखती हैं। वर्तमान शैक्षिक समस्याओं का समाधान इनके निराकरण द्वारा ही सम्भव है। अतएव हमारी शिक्षा के पाठ्यक्रम का सार्वदेशिक स्वरूप क्या हो ? इस पर शिक्षाविदों का चिन्तन निरन्तर होता रहा है। शिक्षा में पाठ्यक्रम सम्बन्धी समस्याओं को समझने के लिए तथा उनका निराकरण करने के लिए इन शिक्षाविदों ने पाठ्यक्रम का निर्माण करते हुए विभिन्न आधारों पर चिन्तन किया है। इनके अनुसार दार्शनिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक आधार को दृष्टि में रखकर पाठ्यक्रम का निर्माण करना विधिवत् होता है। इन आधारों को मूल मानते हुए भी हमें यह ध्यान रखना है कि सिद्धान्त और व्यवहार में सामंजस्य स्थापित किये बिना समस्या का समाधान सम्भव नहीं। अतः आगे के विवेचन में सिद्धान्त और व्यवहार में सन्तुलन स्थापित करने की पूर्ण चेष्टा की गई है।

उद्देश्य निर्धारण की समस्याएँ

पाठ्यक्रम की समस्या एक दार्शनिक समस्या है क्योंकि पाठ्यक्रम का नियोजन शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए होता है। शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण में दार्शनिक विचारधारा अपना विशेष महत्व रखती है। विभिन्न देशों के इतिहास का अवलोकन तथा विभिन्न विचारधाराओं के अन्तर्गत आयोजित होने वाली शिक्षा का पर्यवेक्षण करने पर विदित हुआ है कि पाठ्यक्रम विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओं के आधार पर परिवर्तित होते रहे हैं। देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार विचारधाराओं और मान्यताओं में अन्तर आना स्वाभाविक है। आजकल प्रजातन्त्रात्मक युग में हमारी शिक्षा का उद्देश्य जनतन्त्रीय भावनाओं का विकास करना है। अतः पाठ्यक्रम में भी ऐसे विषयों तथा क्रियाओं का समावेश होना आवश्यक है जिनके माध्यम से जनतन्त्रीय भावनाओं को प्रोत्साहन मिले और यह भी आवश्यक है कि राष्ट्रीय विचारधारा के पोषक तत्त्वों का समावेश पाठ्यक्रम में हो। यदि हम संविधान के अनुसार कल्याणकारी राज्य के विचार को साकार करना चाहते हैं तो पाठ्यक्रम में इनके अनुरूप व्यवस्था हो। लक्ष्य को दृष्टि में रखकर भारतीय विचारधाराओं, मूल्यों और परम्पराओं के आधार पर पाठ्यक्रम का निर्माण करना आवश्यक होगा तथा धर्म निरपेक्ष के सिद्धान्त का पालन करना भी आवश्यक है।

शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है और सामाजिक प्रक्रिया का व्यक्ति की शिक्षा पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है क्योंकि समाज से भिन्न व्यक्ति का कोई महत्त्व नहीं है। इसलिए शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति में वे सभी क्षमताएँ उत्पन्न करना है जिनके आधार पर सामाजिक परिस्थितियों के साथ सामंजस्य स्थापित कर सके। शिक्षा का पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जिससे वह अपनी और अपने समाज की आवश्यकताओं को पूर्ण कर सके। सामाजिक अध्ययन से हमें वर्तमान स्थिति का ज्ञान प्राप्त होता है और यह भी जानकारी उपलब्ध होती है कि सामाजिक आवश्यकताएँ क्या-क्या हैं ? ये आवश्यकताएँ व्यक्ति और समाज दोनों की हैं। हमारा देश विविधताओं से परिपूर्ण है जिन्हें दृष्टि में रखकर पाठ्यक्रम का निर्माण करना अधिक युक्तिसंगत और लाभप्रद होगा। सामाजिक प्रवृत्तियाँ और समाज की बदलती हुई आवश्यकताएँ अवश्य ही पाठ्यक्रम को प्रभावित करेंगी। यदि हम भारतीय समाज की रचना का--राष्ट्रीय एकता, औद्योगीकरण, साधन सम्पत्ति का उपयोग आदि—संकल्प करना चाहते हैं तो इनका सम्बन्ध पाठ्यक्रम से जोड़ना अति आवश्यक है।

मनोवैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि मनुष्यों के बीच व्यक्तिगत विभिन्नताएँ विद्यमान हैं। विशेष रूप से छोटे बच्चे जब बढ़ने लगते हैं और किशोरावस्था में पदार्पण करते हैं तो यह विभिन्नताएँ पूरी

तरह प्रस्फुटित होने लगती हैं। इसलिए प्रत्येक स्तर पर यथासम्भव छात्रों की विभिन्न अभिरुचियों, मनोवृत्तियों और भावनाओं को दृष्टि में रखते हुए विविध प्रकार के विषयों के अध्यापन को व्यवस्था होनी चाहिये। बालक की रुचियों को ध्यान में रखकर जो पाठ्यक्रम बनाया जायेगा, उससे बालक को अधिक लाभ होगा। आधुनिक शिक्षाशास्त्री पाठ्यक्रम में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण ही अपनाते हैं, क्योंकि इसके आधार पर ही अभीष्ट उद्देश्यों की उपलब्धि सम्भव है और बालक का समुचित एवं सर्वाङ्गीण विकास हो सकेगा। विभिन्न स्तरों पर प्रचलित पाठ्यक्रमों पर विचार करने पर कुछ ऐसे तत्त्व उभर कर सामने आ जाते हैं जिनके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि उद्देश्य और शैक्षिक क्रियाओं में कोई मेल नहीं है।

विभिन्न अवसरों पर गठित शिक्षा समितियों तथा आयोगों ने सर्वप्रथम शैक्षिक उद्देश्यों का उल्लेख किया और यह स्पष्ट रूप में चित्रित करने का यत्न किया कि वर्तमान पाठ्यक्रम हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करते। अतः इनके आधार पर उद्देश्यों तक पहुँचना असम्भव है। कोठारी आयोग ने वर्तमान स्थितियों का अध्ययन करने के उपरान्त यह विचार व्यक्त किया कि राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के लिए शिक्षा में परिवर्तन करके उसे जीवनोपयोगी बनाया जाये। मेरी दृष्टि में यह उचित ही है क्योंकि अभी भी हमारी शिक्षा मस्तिष्क-प्रधान है, क्रिया-प्रधान नहीं।

विषयों के चयन की समस्याएँ

शिक्षा के पाठ्यक्रम का स्वरूप हमें अपने शैक्षिक उद्देश्यों को दृष्टि में रखकर निश्चित करना चाहिए तभी जीवन और राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान सम्भव है। पाठ्यक्रम के उपादान—ज्ञान और क्रियायें हैं। अतः ऐसे विचार संग्रहीत करने चाहिए जो राष्ट्रीय विचारधाराओं के अनुकूल, मानवीय गुणों के विकास में सहायक हों तथा विद्यालय और सामाजिक क्रियाओं का समावेश भी आवश्यक है। इसलिए जिन छात्रों के लिये पाठ्यक्रम बनाया जाता है, उसमें ऐसे विषय होने चाहिये जिनसे बालकों की शारीरिक, सामाजिक, मानसिक और आध्यात्मिक आवश्यकताएँ पूर्ण हो सकें। उनकी बौद्धिक विशेषताओं और रुचियों पर ध्यान देना आवश्यक है।

प्रचलित पाठ्यक्रम छात्र और समाज की वर्तमान तथा भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करते। इसलिए शिक्षा आयोगों ने दोषों की ओर संकेत कर, नवीन सुझावों द्वारा पाठ्यक्रम में विषयों का चयन किया है जिनका सम्बन्ध जीवन से है। परन्तु व्यावहारिक क्षेत्र में बहुत ही मन्थर गति से सुझावों को क्रियात्मक रूप प्रदान करने का यत्न किया गया है।

विधि-विज्ञान की समस्याएँ

पाठ्यक्रम निर्धारण मात्र से समस्या का समाधान नहीं हो जाता बल्कि विचारणीय प्रश्न है कि विषय-वस्तु छात्रों को कैसे आत्मसात् कराई जाये ? प्रचलित शिक्षण प्रक्रिया सन्तोषजनक नहीं। मनोवैज्ञानिक और शिक्षण सिद्धान्तों को व्यावहारिक बनाने की आवश्यकता है। उचित शिक्षण विधि द्वारा ही छात्र में व्यावहारिक परिवर्तन लाना सम्भव है। शैक्षिक स्तर गिरने का मुख्य कारण नवीनतम विधियों को न अपनाना है।

शिक्षण की सफलता पाठ्य-पुस्तकों और सहायक सामग्री पर आधारित है। पाठ्य-पुस्तकों के दोषों से सभी परिचित हैं। आयोगों के सुझावानुसार राज्य एवं केन्द्रीय स्तर पर पाठ्य-पुस्तक निर्माण कार्य तथा अनुसन्धान हो रहा है। शिक्षक निर्देश पुस्तिकाओं के निर्माण से शिक्षण उपयोगी सिद्ध होगा। पाठ्य-विषय को दृष्टि में रखकर दृश्य-श्रव्य उपकरणों का उपयोग करना आवश्यक है।

सामाजिक उत्तरदायित्व की समस्याएँ

शिक्षा का कार्य केवल ज्ञान की वृद्धि करना ही नहीं वरन् व्यक्ति को सामाजिक बनाना है। बालक शिक्षा द्वारा समाज की आर्थिक, सामाजिक तथा नैतिक आवश्यकताएँ पूर्ण कर सके। पाठ्यक्रम में सामाजिक सभ्यता और संस्कृति से सम्बन्धित बातों का समावेश करना आवश्यक है। असामाजिक रूढ़िगत विचारों और परम्पराओं को दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि नई परिस्थितियों के अनुरूप समाज और संस्कृति को दृष्टि में रखकर नवीन विचार प्रस्तुत किए जायँ, जिससे समाज सुख-अनुभव करे।

व्यक्तित्व निर्माण की समस्याएँ

शिक्षा का उद्देश्य बालक के व्यक्तित्व का विकास करना है। इसकी उपलब्धि पाठ्यक्रम द्वारा ही संभव है। बालकों की विभिन्नताओं को दृष्टि में रखकर ऐसे

विषय निर्धारित करने चाहिये जिनसे शारीरिक, मानसिक और संवेगात्मक विकास समुचित रूप में हो सके। बालकों की रचनात्मक शक्तियों का विकास करने पर ही साहित्यिक, सांस्कृतिक और कलात्मक उन्नति संभव है। पाठ्यक्रम की विविधता द्वारा ही व्यक्तित्व निर्माण की समस्याओं को हल किया जा सकता है।

प्रशासनिक एवं संगठनात्मक समस्याएँ

संविधान के अनुसार भारतीय शिक्षा व्यवस्था को दो प्रमुख भागों में विभाजित किया गया है :—(१) केन्द्रीय शिक्षा व्यवस्था, (२) राज्यीय शिक्षा व्यवस्था।

केन्द्रीय सरकार ने विभिन्न राज्यों के लिए शिक्षा विकास योजनाएँ बनाना, शिक्षा नीति निर्धारित करने, शिक्षा विकास के लिए आवश्यक व्यवस्था आदि का पूर्ण उत्तरदायित्व राज्य सरकारों को सौंप रखा है। प्रत्येक राज्य की आवश्यकताएँ, कठिनाइयाँ, समस्याएँ भिन्न-भिन्न हैं। अतः राज्य सरकार स्वयं अपनी आवश्यकताओं आदि को ध्यान में रखते हुए स्वतन्त्र रूप में शिक्षा नीति निर्धारित करती है और उसे कार्यान्वित करने का उपाय सोचती है।

केन्द्रीय सरकार वैज्ञानिक, व्यावसायिक तथा अनुसन्धान आदि की राष्ट्रीय स्तर पर व्यवस्था करने, राष्ट्रीय महत्व की बातों; जैसे—अनिवार्य शिक्षा, राष्ट्र-भाषा प्रसार आदि तथा शिक्षा प्रसार योजनाओं के सम्बन्ध में ही सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए समान शिक्षा-नीति निर्धारित करती है और उसे कार्यान्वित करती है।

केन्द्रीय शिक्षा व्यवस्था और राज्यीय शिक्षा व्यवस्था होने के कारण दोनों में सामंजस्य होना अति आवश्यक है वरन् कभी-कभी ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि केन्द्रीय शिक्षा नीति और राज्य शिक्षा-नीति में ताल-मेल ही नहीं खाता। निश्चय ही इसका प्रभाव पाठ्यक्रम पर पड़ता है, तमिलनाड इसका प्रमाण है। केन्द्रीय सरकार आयोग गठित कर देती है परन्तु उसके द्वारा दिये गये सुझाव आदि को राज्य-सरकारें सुगमता से नहीं अपनातीं। माध्यमिक शिक्षा आयोग द्वारा प्रस्तावित शिक्षा पद्धति का क्या हमारे देश में पालन हुआ है? यह चिन्तनीय विषय है। ये सभी बातें पाठ्यक्रम निर्धारण नीति को प्रभावित करती हैं और इस क्षेत्र में अनेक समस्याएँ शिक्षा के संगठनात्मक पक्ष को लेकर उत्पन्न हो जाती हैं। मैं राज्य सरकारों के अधिकार छीनने की बात नहीं करता; परन्तु सुझाव है कि शिक्षा के लिये उदार नीति अपनानी चाहिए जिससे राष्ट्र-हित हो और सभी नागरिकों को उन्नति करने के लिए समान अवसर प्राप्त हो।

मूल्यांकन सम्बन्धी समस्याएँ

मूल्यांकन शिक्षा का महत्त्वपूर्ण अंग है। शिक्षा से सम्बन्धित सभी तत्त्वों का मूल्यांकन आवश्यक है। शैक्षिक उद्देश्यों को दृष्टि में रखकर पाठ्यक्रम निर्धारित किया जाता है। उद्देश्यों की उपलब्धि किस सीमा तक हुई है? यह जानकारी मूल्यांकन द्वारा ही सम्भव है। पाठ्यक्रम में निर्धारित विषय उपयुक्त हैं अथवा उनमें क्या-क्या परिवर्तन अपेक्षित है? वास्तव में परीक्षण शिक्षण योजना का अभिन्न एवं अपरिहार्य अंग है। इसलिए परीक्षण पद्धति पाठ्यक्रम को अवश्य प्रभावित करेगी। व्यावहारिक परिवर्तन लाना ही पाठ्यक्रम का प्रमुख उद्देश्य है परन्तु उनका मापन करना भी आवश्यक है। इसलिए मूल्यांकन एक ऐसी निरन्तर प्रक्रिया होनी चाहिए जिसका लक्ष्य छात्र-उपलब्धि का स्तर उन्नत करने में सहायता प्रदान करना है। शिक्षा आयोगों ने पाठ्यक्रमीय समस्याओं के साथ-साथ मूल्यांकन पर भी विचार किया क्योंकि ये दोनों परस्पर प्रभावित करती हैं।

पाठ्यक्रम शिक्षा का मूल आधार है। इसके बिना अभीष्ट लक्ष्य की उपलब्धि सम्भव नहीं। अतः देश के आर्थिक और सांस्कृतिक विकास, राष्ट्रीय एकता तथा समाजवादी समाज का निर्माण के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए शिक्षा आयोगों के सुझाव कार्यान्वित करने चाहिए। पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जिससे राष्ट्रीय सेवा और विकास के लिये कृतसंकल्प, चरित्र सम्पन्न और योग्य युवक-युवतियों का निर्माण हो तथा राष्ट्रीय एकता सुदृढ़ बन सके।

●

किशोर बच्चों में धार्मिक सहिष्णुता

जमनालाल बायती

●

भारतवर्ष धार्मिक विश्वासों, पूजा-पाठों एवं कर्म-काण्डों का अजायबघर है। यही कारण है कि भारतवासियों के जीवन में धर्म का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। यह प्रसन्नता की बात है कि भारतवासी विभिन्न धार्मिक-सम्प्रदायों के अनुयायी होते हुये भी अपने को प्रथम 'भारतीय' मानते हैं। राधाकृष्णन् आयोग के प्रतिवेदन (पृष्ठ २९५) के अनुसार, "धर्म का अभिप्राय किसी मतमतांतर को मानना, भावनाओं की अनुभूति करना अथवा धार्मिक कृत्यों की पूर्ति करने से ही नहीं है अपितु यह तो एक परिवर्तित जीवन है।" माध्यमिक शिक्षा आयोग के प्रतिवेदन (पृष्ठ १२५) में भी कहा गया है कि "चरित्र निर्माण में धार्मिक व नैतिक शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है।"

आज लोगों को पग-पग पर समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। कर्मचारी, व्यापारी पथ-भ्रष्ट हो रहे हैं। इन सबके लिये कुछ लोगों का विचार है कि हम भौतिक उन्नति को ही सब कुछ मान बैठे हैं तथा आध्यात्मिकता की ओर से मुख मोड़ बैठे हैं। डा० भगवानदास भी इसी संदर्भ में लिखते हैं—"यदि शिक्षा से धर्म इसलिये अलग कर लिया जाय कि वह कठिनाइयाँ प्रस्तुत करता है तो यह इसी प्रकार होगा कि जैसे रोग निवारण के लिये शरीर को ही समाप्त कर दिया जाय।" इससे स्पष्ट है कि मानव-जीवन में धर्म का कितना महत्वपूर्ण स्थान है।

धार्मिक सहिष्णुता ज्ञात करने के लिये १५ कथनों की एक प्रश्नावली तैयार की गई, जिस पर विद्यार्थियों को हाँ, नहीं या अनिश्चय की स्थिति में से किसी एक के लिये अपनी स्वीकृति देनी थी। सेम्पल के रूप में राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, कमोल (उदयपुर) के ९० छात्र चुने गये। छात्रों का आयु के अनुसार वर्गीकरण इस प्रकार है—

	संख्या	प्रतिशत
१३-१४ वर्ष	१२	१३.३
१५-१६ ,,	५०	५५.५
१७-१८ ,,	२८	३१.२

इससे स्पष्ट है कि सेम्पल में आधे से अधिक विद्यार्थी १५-१६ वर्ष की आयु के हैं तथा लगभग एक तिहाई भाग १७-१८ वर्ष की आयु के हैं। अभिभावकों की शिक्षा का स्तर भी जानना उपयोगी है। छात्रों के पिताओं की शिक्षा सम्बन्धी आँकड़े इस प्रकार हैं—

	संख्या	प्रतिशत
निरक्षर	१६	१७.७
साक्षर व कक्षा २ तक शिक्षित	३६	४०
कक्षा ३ से कक्षा ५ तक ,,	३२	३५.५
,, ६ से ,, ८ तक ,,	६	६.६
,, ९ से ,, ११ ,, ,,	२	२.२

ऊपर की तालिका से स्पष्ट होता है कि हाई स्कूल तक शिक्षित पिताओं की संख्या नगण्य है। ६ठी से ८वीं कक्षा तक शिक्षित भी ६.६ पिता हैं। अन्य लोग या तो निरक्षर हैं या वे केवल साक्षर हैं। हाँ, ३५.५ प्रतिशत पिता कक्षा ५ तक पढ़े-लिखे हैं। कुल मिलाकर ये आँकड़े सन्तोषजनक हों, ऐसी बात नहीं है।

आँकड़ों का सारिणीकरण करके सांख्यिकीय विधियों की मदद से निष्कर्ष निकाले हैं, जो इस प्रकार हैं—

संख्या कथन	हाँ	ना	अनिश्चित	काई स्क्वायर	लेवल आफ सिग्नीफिकेन्स
१. सभी धर्म अच्छे नहीं हैं।	२०	१६	४	६६	.००१
२. ईश्वर एक है, लोग इसे भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं।	४२	२४	२४	७२	·०५
३. केवल मेरा धर्म सबसे अच्छा है।	२०	५०	२०	१६.६	·००१
४. मेरा धर्म, साथी लोगों के साथ प्यार से रहना सिखाता है।	७४	८	८	१०७.८	·००१
५. सभी धर्म समाज के सदस्यों में घृणा व कलह पैदा करते हैं।	१८	७०	२	८४.२	·००१
६. हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, पारसी आदि सभी भाई-भाई हैं।	२४	४२	२४	७२	·०५
७. हमें दूसरों के विचारों, उनके धर्म का आदर करना चाहिये।	७४	८	८	१०७.८	·००१
८. दूसरों के धर्म की आलोचना करने से मुझे कष्ट होता है।	४४	३२	१४	१५.१३	·००१
९. धार्मिक शिक्षा शाला में अनिवार्य होनी चाहिये।	५६	२२	१२	३५.४	·००१
१०. स्कूल में प्रातःकाल की प्रार्थना में समय नष्ट होता है।	४	८२	४	१०१.८	·००१
११. पूजा के महत्व पर मुझे सन्देह है।	३६	३०	२४	२.४	·३०
१२. ईश्वर हमारे सब काम देखता है।	८२	४	४	१०१.८	·००१
१३. सभी धर्म ईश्वर के पास पहुँचने के भिन्न-भिन्न मार्ग हैं।	७६	१२	१२	९२.१	·००१
१४. धार्मिक पुस्तकों में झूठी कहानियाँ होती हैं।	२४	४८	१८	१६.८	·००१
१५. अच्छे लोग प्रतिदिन ईश्वर की प्रार्थना करते हैं।	७८	६	६	११५.२	·००१

काई वर्ग का मान जितना कम होगा, प्रेक्षित व प्रत्याशित परिणामों में उतनी ही अधिक निकटता होगी। 'ईश्वर एक है, लोग उसे भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं, '·०५ स्तर पर सही है या यों कहा जा सकता है कि ९५ प्रतिशत निष्कर्ष आशा के अनुकूल प्राप्त हुये हैं। यही स्थिति 'हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिक्ख, पारसी आदि सभी भाई-भाई हैं' की भी है। इससे भी अधिक सही कथन हैं 'पूजा के महत्व पर मुझे सन्देह है', जो ९७ प्रतिशत सत्यता प्रकट करता है। अन्य कथन और भी अधिक ऊँचे स्तर पर सही हैं। बालकों की परिपक्वता इससे जानी जा सकती है कि कथन एक 'सभी धर्म अच्छे नहीं हैं' तथा कथन ५ 'सभी धर्म समाज के सदस्यों में घृणा व कलह पैदा करते हैं।' 'समान स्तर पर महत्वपूर्ण' है। कथन ९ एवं १५ तथा ७ एवं ८ की भी यही स्थिति है।

(अ) क्या आप प्रार्थना करते हैं ?

		प्रतिशत
१. प्रतिदिन	७६	८४.४
२. कभी-कभी	४	४.४
३. कभी नहीं	०	०
४. केवल परीक्षा के दिनों में	२	२.२
५. कष्ट के समय	८	८.८

(आ) क्या आप धार्मिक स्थान पर जाते हैं ?

		प्रतिशत में
१. प्रतिदिन	१०	११.१
२. कभी-कभी	७६	८४.४
३. कभी नहीं	२	२.२

(इ) आप प्रार्थना क्यों करते हैं ?

१. फेल होने से बचने के लिये	०	०
२. माता-पिता के दबाव से	०	०
३. ईश्वर से परस्पर बातचीत के लिये	४	४.४
४. मृत्यु के भय से	२	२.२
५. क्षमा याचना हेतु	२२	२४.४
६. दूसरों की मदद के लिये	२	२.२
७. आराम पाने के लिये	२	२.२
८. मार्ग-दर्शन के लिये	५६	६२.२
९. निजी लाभ के लिये	२	२.२
१०. स्वभाव से	०	०

(ई) आप धार्मिक स्थान पर क्यों जाते हैं ?

१. ईश्वर का ज्ञान पाने के लिये	२६	२८.८
२. माता-पिता के दबाव से	०	०
३. ईश्वर की पूजा के लिये	१२	१३.३
४. वहाँ का वातावरण शान्त होता है	१०	११.१
५. पढ़ाई के लिये शान्ति मिलती है।	०	०
६. वहाँ अच्छे विचार मिलते हैं।	४२	४६.६

ऊपर के आंकड़ों से स्पष्ट है कि ८४.४ प्रतिशत विद्यार्थी प्रतिदिन ईश्वर की प्रार्थना करते हैं जबकि प्रतिदिन धार्मिक स्थान पर जाने वाले विद्यार्थी ११.१ प्रतिशत हैं तथा ८४.४ प्रतिशत कभी-कभी धार्मिक स्थानों पर जाते हैं। ६२.२ प्रतिशत विद्यार्थी मार्गदर्शन के लिये तथा २४.४ प्रतिशत विद्यार्थी क्षमा याचना हेतु प्रभु से प्रार्थना करते हैं। फेल होने से बचने हेतु माता-पिता के दबाव से तथा स्वभाव से प्रार्थना करने वाले छात्रों की संख्या शून्य है। ४६.४ प्रतिशत विद्यार्थी अच्छे विचारों की प्राप्ति के लिये तथा २८.८ प्रतिशत विद्यार्थी ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करने के लिये धार्मिक स्थानों पर जाते हैं। केवल ११.१ प्रतिशत विद्यार्थियों को धार्मिक स्थानों का वातावरण मनोहारी लगता है। माता-पिता के दबाव से व शान्ति प्राप्ति हेतु जाने वाले विद्यार्थियों की संख्या शून्य है।

धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता

समस्त धर्मों का सार एक ही है, उनके सिद्धान्त मुख्यतः एक ही हैं और एक प्रमुख सिद्धान्त है कि धर्म समस्त समुदाय के निर्माण का एकमात्र साधन है। अतः इस प्रकार के धार्मिक स्वरूप की शिक्षा शालाओं में होनी चाहिये। इस सम्बन्ध में डा० राधाकृष्णन् के विचार बड़े उपयोगी हैं—"हमारा कार्य शिक्षा देना नहीं किन्तु शक्ति व ओज को विद्यार्थी समाज तक पहुँचाना है। उद्देश्य तो मानव हृदय को सुसंस्कृत करना है।" (राधाकृष्णन्-आयोग का प्रतिवेदन, पृष्ठ ३००)।

धार्मिक शिक्षा को ३५ या ४० मिनट के पीरियड में बाँधा नहीं जा सकता। जरूरत इस बात की है कि शाला के हर एक कोने से धार्मिक व नैतिक शिक्षा की गंगा प्रवाहित हो तथा विद्यार्थी उस गंगा में स्वभाव वश स्नान कर सके। धार्मिक शिक्षा का लक्ष्य मानव हृदय का विकास, हृदय की उदारता तथा सदाचार के उच्च संस्कार डालना है।

धार्मिक शिक्षा को व्यावहारिक बनाने के लिये श्रीप्रकाश समिति के निम्न सुझावों का भी महत्वपूर्ण स्थान है—

१. शाला का कार्य प्रारम्भ होने से पूर्व शान्त तथा मौन रहने का अभ्यास।
२. महापुरुषों की जीवनियों के प्रभावोत्पादक प्रसंग प्रस्तुत करना।
३. अन्तरराष्ट्रीय धर्मों की रुचिकर कहानियाँ बतलाना।
४. महान धर्मों के नैतिक मूल्यों पर प्रवचन दिलवाना।
५. विद्वानों के नैतिक मूल्यों पर प्रवचन कराना।
६. प्रमुख धर्मों के मुख्य-मुख्य त्यौहारों को स्कूल में मनाना।
७. मानव प्रेम, आत्म-नियन्त्रण आदि के विकास हेतु शिविर आयोजित करना।

हिन्दी में प्रकाशित कुछ सन्दर्भ-ग्रन्थ

१. मानक हिन्दी कोश भाग १	सं० रामचन्द्र वर्मा	२५.००
२. मानक हिन्दी कोश भाग २	सं० रामचन्द्र वर्मा	२५.००
३. मानक हिन्दी कोश भाग ३	सं० रामचन्द्र वर्मा	२५.००
४. मानक हिन्दी कोश भाग ४	सं० रामचन्द्र वर्मा	२५.००
५. मानक हिन्दी कोश भाग ५	सं० रामचन्द्र वर्मा	२५.००
६. बृहत हिन्दी कोश	सं० सर्वश्री कालिका प्रसाद आदि	३०.००
७. हिन्दी साहित्य कोश भाग १	सं० धीरेन्द्र वर्मा एवं अन्य	२५.००
८. हिन्दी साहित्य कोश भाग २	सं० धीरेन्द्र वर्मा एवं अन्य	२०.००
९. भाषा विज्ञान कोश	भोलानाथ तिवारी	२५.००
१०. अँग्रेजी हिन्दी कोश भाग १	हरदेव बाहरी	२५.००
११. अँग्रेजी हिन्दी कोश भाग २	हरदेव बाहरी	२५.००
१२. ज्ञान शब्द कोश	सं० मुकन्दीलाल श्रीवास्तव	१५.००
१३. ब्रजभाषा सूर कोश भाग १	सं० डा० प्रेमनारायण टण्डन	२०.००
१४. ब्रजभाषा सूर कोश भाग २	सं० डा० प्रेमनारायण टण्डन	२०.००
१५. नालन्दा विशाल शब्द-सागर	सं० नवलजी	२५.००
१६. नालन्दा अद्यतन कोश	सं० पुरुषोत्तम नारायण	९.००
१७. हिन्दी सेवी संसार भाग १	सं० प्रेम नारायण टण्डन	२०.००
१८. हिन्दी सेवी संसार भाग २	सं० प्रेम नारायण टण्डन	२०.००
१९. हिन्दी मुहावरा कोश	भोलानाथ तिवारी	१२.५०
२०. बृहत पर्यायवाची कोश	भोलानाथ तिवारी	१५.००
२१. संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर	सं० रामचन्द्र वर्मा	२५.००
२२. लघु हिन्दी शब्द सागर	सं० करुणापति त्रिपाठी	१५.००
२३. हिन्दी विश्व कोश भाग १	सं० धीरेन्द्र वर्मा एवं रामप्रसाद त्रिपाठी	अप्राप्य
२४. हिन्दी विश्व कोश भाग २	सं० धीरेन्द्र वर्मा एवं रामप्रसाद त्रिपाठी	अप्राप्य
२५. हिन्दी विश्व कोश भाग ३	सं० धीरेन्द्र वर्मा एवं रामप्रसाद त्रिपाठी	३०.००
२६. हिन्दी विश्व कोश भाग ४	सं० धीरेन्द्र वर्मा एवं रामप्रसाद त्रिपाठी	३०.००
२७. हिन्दी विश्व कोश भाग ५	सं० धीरेन्द्र वर्मा एवं रामप्रसाद त्रिपाठी	३०.००
२८. हिन्दी विश्व कोश भाग ६	सं० धीरेन्द्र वर्मा एवं रामप्रसाद त्रिपाठी	३०.००
२९. हिन्दी विश्व कोश भाग ७	सं० धीरेन्द्र वर्मा एवं रामप्रसाद त्रिपाठी	३०.००
३०. हिन्दी विश्व कोश भाग ८	सं० धीरेन्द्र वर्मा एवं रामप्रसाद त्रिपाठी	३०.००
३१. हिन्दी विश्व कोश भाग ९	सं० धीरेन्द्र वर्मा एवं रामप्रसाद त्रिपाठी	३०.००
३२. हिन्दी विश्व कोश भाग १०	सं० धीरेन्द्र वर्मा एवं रामप्रसाद त्रिपाठी	३०.००
३३. शब्द परिवार कोश	बद्रीनाथ कपूर	२५.००
३४. बृहत हिन्दी शब्द सागर भाग १	सं० श्याम सुन्दरदास	२१.००
३५. बृहत हिन्दी शब्द सागर भाग २	सं० श्याम सुन्दरदास	२१.००

३६. बृहत हिन्दी शब्द सागर भाग ३	सं० श्याम सुन्दरदास	२१.००
३७. बृहत हिन्दी शब्द सागर भाग ४	सं० श्याम सुन्दरदास	२१.००
३८. आदर्श हिन्दी संस्कृत कोश	रामस्वरूप शास्त्री	१२.५०
३९. अंग्रेजी हिन्दी कोश	कामिल बुल्के	१५.००
४०. शिक्षा विज्ञान कोश	सीताराम जायसवाल	१६.००
४१. वनस्पति कोश	डा० एस० के० जैन	१०.००
४२. हस्तलिपि विज्ञान कोश	बालकृष्ण मिश्र	१०.००
४३. अंग्रेजी हिन्दी पर्यायवाची कोश	बद्रीनाथ कपूर	९.००
४४. मानविकी पारिभाषिक कोश (साहित्य खण्ड)	सं० डा० नगेन्द्र	१२.५०
४५. मानविकी पारिभाषिक कोश (दर्शन खण्ड)	डा० बी० एस० नरवणे	१२.५०
४६. मानविकी पारिभाषिक कोश(मनोविज्ञान खण्ड)	डा० पदमा अग्रवाल	१५.००
४७. प्राचीन चरित्र कोश	म० म० सिद्धेश्वर शास्त्री	६०.००
४८. भार्गव अंग्रेजी हिन्दी कोश	आर० सी० पाठक	१३.५०
४९. भार्गव हिन्दी अंग्रेजी कोश	आर० सी० पाठक	१३.५०
५०. भार्गव हिन्दी अंग्रेजी कोश छोटा साइज	आर० सी० पाठक	५.००
५१. भार्गव अंग्रेजी हिन्दी कोश छोटा साइज	आर० सी० पाठक	५.००
५२. उर्दू हिन्दी कोश	केदारनाथ भट्ट	८.००
५३. दोहा कोश	राहुल सांकृत्यायन	१३.२५
५४. सचित्र विश्व कोश (दस खण्डों में)	(राजपाल एण्ड सन्ज़ प्रकाशन)	७०.००
५५. उर्दू हिन्दी शब्द कोश	श्री मु० मुद्दाह	१६.००
५६. हला युध कोश	श्री हलायुध भट्ट	२३.००
५७. बृहत हिन्दी मराठी शब्द कोश	गो० म० नेने	२०.००
५८. गणितीय कोश	डा० ब्रजमोहन	९.००
५९. प्रसाद साहित्य कोश	डा० हरदेव बाहरी	१०.००
६०. तुलसी शब्द सागर	उदयभानुसिंह	१८.००
६१. शब्दार्थ दर्शन	श्री रामचन्द्र वर्मा	३५.००
६२. हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास		
भाग १ (हिन्दी साहित्य की पीठिका)	काशी नागरी प्रचारिणी सभा प्रकाशन	३०.००
भाग २ (हिन्दी भाषा का विकास)	काशी नागरी प्रचारिणी सभा प्रकाशन	३०.००
भाग ४ (भक्तिकाल : निर्गुण भक्ति)	काशी नागरी प्रचारिणी सभा प्रकाशन	३०.००
भाग ६ (रीतिकाल)	काशी नागरी प्रचारिणी सभा प्रकाशन	३०.००
भाग १३ (समालोचना : निबन्ध)	काशी नागरी प्रचारिणी सभा प्रकाशन	३०.००
भाग १६ (लोक साहित्य)	काशी नागरी प्रचारिणी सभा प्रकाशन	३०.००

प्राप्ति-स्थान

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

पुस्तक समीक्षा

शैक्षिक पर्यवेक्षण के मूल तत्त्व

लेखक--पारसनाथ राय, प्रकाशक—विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, पृष्ठ—१८७, मूल्य—५.०० ।

शैक्षिक पर्यवेक्षण का पठन-पाठन अब विश्वविद्यालयों में होने लगा है। पिछले कुछ वर्षों से शिक्षा के अन्य अंगो के सम्बन्ध में हिन्दी में पर्याप्त साहित्य की रचना हुई है, किन्तु शैक्षिक पर्यवेक्षण का क्षेत्र अछूता ही रहा है। जो छात्र हिन्दी के माध्यम से शिक्षा शास्त्र का उच्च अध्ययन करना चाहते हैं, उन्हें इस प्रकार के साहित्य की विशेष आवश्यकता का अनुभव होता रहा है। प्रस्तुत पुस्तक इसी दिशा में एक प्रयास है।

पुस्तक में कुल ग्यारह अध्याय हैं। पहले अध्याय में शैक्षिक प्रशासन की प्रक्रिया में पर्यवेक्षण के स्थान को निश्चित करते हुए पर्यवेक्षण की परिभाषायें, उसकी परिवर्तित गतिविधियाँ, दार्शनिक आधार तथा पर्यवेक्षण के क्षेत्र के सम्बन्ध में विस्तृत चर्चा की गयी है। दूसरे अध्याय से दसवें अध्याय तक पर्यवेक्षण की विशेष प्रवृत्तियाँ, कार्यक्रम के सहयोगी, पर्यवेक्षण का क्षेत्र, नियोजन, व्यवस्थापन, पर्यवेक्षण की विधियाँ, पर्यवेक्षक, वित्तीय व्यवस्था तथा मूल्यांकन आदि के सम्बन्ध में लेखक ने बड़े ही सरल ढंग से व्याख्या करने का प्रयास किया है। अन्तिम अध्याय में भारत में पर्यवेक्षण सम्बन्धी संगठन तथा क्रियाओं का उल्लेख करते हुए शिक्षा आयोग की संस्तुतियाँ भी दे दी हैं।

पुस्तक के प्रत्येक अध्याय में और पूरी पुस्तक में विषय की योजना इस प्रकार की गयी है कि पर्यवेक्षण सम्बन्धी धारणा का स्पष्टीकरण बड़ी सुगम रीति से हो जाता है। यह पुस्तक एम० एड० के छात्रों, पर्यवेक्षकों, प्रशासकों तथा शिक्षा में रुचि रखने वाले सभी लोगों के लिए उपयोगी है।

लेखक ने इस गहन विषय को बहुत संक्षेप में तथा सरल भाषा में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। संक्षिप्तता ने किसी-किसी स्थल पर विषय की स्पष्टता पर भी प्रभाव डाला है।

पुस्तक की भाषा प्रवाहपूर्ण है। शब्दावली का चयन सुरुचिपूर्ण है। मुद्रण अच्छा है। साज-सज्जा सुन्दर है। मूल्य भी उचित है। वास्तव में शिक्षा शास्त्र के छात्रों एवं अध्यापकों के लिए पुस्तक बहुत ही उपादेय है।

सफल शिक्षण-कला

लेखक—पी० डी० पाठक व जी० एस० डी० त्यागी, प्रकाशक—विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, पृ०—३४९, मूल्य—७·०० ।

प्रस्तुत पुस्तक प्रशिक्षण महाविद्यालयों एवं विभिन्न विश्वविद्यालयों में प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे छात्राध्यापकों के निमित्त लिखी गई। पुस्तक में कुल आठ खण्ड एवं ४२ अध्याय हैं। इसमें उन सभी बातों पर विचार किया गया है जो एक सफल शिक्षक के लिए आवश्यक हैं।

पुस्तक में शिक्षण-कला के अर्थ व स्वरूप पर अच्छा विचार किया गया है। शिक्षक के सामान्य सिद्धान्तों के विवेचन के साथ-साथ शिक्षण की विभिन्न युक्तियों एवं प्रविधियों का भी विस्तार से कई अध्यायों में विचार किया गया है।

आधुनिक शिक्षा-शास्त्र में बहुप्रचलित विभिन्न शैक्षिक प्रणालियों पर भी अध्याय २५ से अध्याय ३६ तक प्रकाश डाला है।

शिक्षा में आधुनिकतम प्रवृत्तियों, यथा छात्र-निर्देशन, मूल्यांकन, सामूहिक व वैयक्तिक शिक्षण, क्रियात्मक विधि, खेल-विधि आदि का भी विवेचन किया गया है।

लेखकों ने विषय का प्रतिपादन सफलतापूर्वक किया है। किन्तु पुस्तक की भाषा में यत्र-तत्र कुछ सुधार अपेक्षित हैं। विषय-सामग्री में कोई नया दृष्टि-

कोण नहीं प्रस्तुत किया गया है । पुस्तक में लेखकों का यही दृष्टिकोण सर्वत्र दिखाई पड़ता है कि छात्र पुस्तक से लाभ उठाएँ और परीक्षा की तैयारी सफलतापूर्वक कर सकें । इस दृष्टि से पुस्तक निस्सन्देह छात्रों के लिए उपयोगी है । पुस्तक का कलेवर सुन्दर है, छपाई अच्छी है और मूल्य उचित है ।

अहं मेरा गेय

लेखक—डॉ० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश', वितरक—उमेश पुस्तक प्रकाशन, १५६, अशोकनगर, उदयपुर, पृष्ठ ८०, मूल्य ६.०० ।

विगत कई दशकों की हिन्दी कविता वादों और दलों के घेराव में इस कदर उलझी रही है कि अनेक प्रातिभ-सृजन इस घने कुहासे में अर्चचित, अविवेच्य, और उपेक्षित रहे हैं । आलोचकों ने भी बँधी-बँधाई लीकों पर, उछलने और उछाले जाने वाली कविता को मद्देनज़र रखा है । इससे काव्य के इतिहास में अनेक विसंगतियाँ उठ खड़ी हुई हैं ।

बँधी रूढ़ियों को तोड़ने का अहसास देने वाली नयी कविता जब स्वयं अभिव्यञ्जना-रूढ़ि से ग्रस्त हो गई, तब विसंगतियों को पनपाने वाली अकविता का स्वर मुखर हुआ । साठोत्तरी कविता का यह अयाचित स्वर स्वयं ही मर्माहत हो गया, लेकिन इसके साथ ही स्वस्थ मानसिकता से अनुप्रेरित कवि अपने परिवेश और सृजन से प्रतिबद्ध रहकर सृजन की अखंडधारा को सींचते रहे हैं । इस दृष्टि से डॉ० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' किसी खेमे से प्रतिबद्ध नहीं हैं; न उनमें अकविता की भौंडी एक रसता है, अपितु परम्परा के साथ भोगी हुई अनुभूतियों की प्रामाणिकता है । यह अनुभूति की सच्चाई कवि के मानसिक क्षितिज की परिचायक है । क्योंकि उसमें वक्तव्य की अपेक्षा आत्म-बोध की संक्रमणता है, बौद्धिकताजन्य अहं न होकर अहं का विराट चेतना है, और स्वयं की लघुता का अहसास है । 'अहं मेरा गेय' की कविताओं में कवि की ईश्वरी आस्था, जिजीविषा, अस्तित्व की सजगता, आजकल के चालू मुहावरों—निराशा, अनास्था, कुण्ठा आदि से कटकर व्यवहृत हुई हैं—

राम ।
तुम नहीं लौटेगे ?
भले ही तुम न हो
पर लौट आओ
तुम्हारे बिना मेरा बौनापन
मुझे खा रहा है ।

परन्तु इसमें जुड़ी हुई, बार-बार दोहरायी गई 'भीड़ में अकेलेपन' की अनुभूति अप्रामाणिक होने के साथ-साथ चालू मुहावरों से चयनित है । इस संग्रह की यही कमजोरी है कि कवि जहाँ नयी लीक बनाना चाहता है, वहीं थोड़े डग भर कर पुनः पगडंडी पर लौट आता है । भाषा में जहाँ प्रतीकात्मकता और बिम्बों की सघनता है, वहाँ प्रतीकों में अभिमन्यु, चक्रव्यूह, राम और सीता आदि शब्द रूढ़ होने के साथ-साथ अपनी अर्थवत्ता भी खो चुके हैं ।

किन्तु जहाँ परिवेश की सजगता कवि को तीखापन का अहसास देती है, वहाँ उसका स्वर व्यंग्यमय हो उठता है—

डालर के इंजेक्शन
जच्चाघरों में लग रहे हैं
और ऊपर उड़ रहे हैं
उसी के सेबर जैट
पैटन टैंकों का धुआँ
गेंहूँ से बदला लेता है ।

'आवाजों का पहाड़', 'अनबजे साइरन' एक सी मनस्थिति के चित्र हैं । 'प्रतीक्षा में' वह 'टोन' दूसरी ओर मुड़ गई है । उसके चित्रों की अनेक रूपता के बीच 'माही का संगम', 'झील तट' और 'एक संध्या' जैसी कविताओं के प्रकृति बिम्ब नया तेवर लिये हुए हैं—

रँग रश्मि-जाल पर
पीछे लाल झील में
कूद गया सूरज ।

कथ्य की यह वैविध्यपूर्ण भंगिमा कवि के संप्रेष्य को और अधिक बल देती है । 'अहं मेरा गेय' की सफलता इसकी स्वस्थ मानसिकता, और लीक से हटने में है । उसके बिम्बों में टटकापन है, तो कल्पना को उरेहती हुई चित्रात्मकता भी है । कुल मिलाकर इसका 'इम्प्रेशन' अच्छा ही पड़ता है ।

नई पुस्तकें

आलोचना

रीतिकालीन काव्य सिद्धान्त (शोध-प्रबन्ध), डा० सूर्यनारायण द्विवेदी, डिमाई, पृष्ठ ४३८, मूल्य १६.००
हिन्दी पत्रकारिता (शोध-प्रबन्ध) डा० कृष्ण बिहारी मिश्र, डिमाई, पृष्ठ ५३०, मूल्य २५.००
पाश्चात्य समीक्षा की रूपरेखा, प्रतापनारायण टण्डन, डिमाई, पृष्ठ २५८, मूल्य १२.००
प्रेमचन्द, प्रतापनारायण टण्डन, डिमाई, पृष्ठ १६०, मूल्य ९.००
केशव सुधा, डॉ० विजयपालसिंह, डिमाई, पृष्ठ १८६, मूल्य १०.००
तुलसी और तुंचन, रामचन्द्र दैव, डिमाई, पृष्ठ १६३, मूल्य ९.००
निराला, पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश', डिमाई, पृष्ठ १७३, मूल्य ७.५०
हिन्दी कविता में हास्यरस, सरोज खन्ना, डिमाई, पृष्ठ १४२, मूल्य ८.००
पंत जी का गद्य, सूर्यप्रसाद दीक्षित, डिमाई, पृष्ठ १३४, मूल्य ६.५०
भारतीय काव्य शास्त्र, कृष्ण बल, डिमाई, पृष्ठ २५३, मूल्य ७.००

उपन्यास

ओ भैरवी, शिवानी, क्राउन, पृष्ठ १६३, मूल्य ५.५०
कृष्णकली, शिवानी, डिमाई, पृष्ठ २२७, मूल्य ७.००
टोपी शुक्ला, राहीमासूमरजा, क्राउन, पृष्ठ १७३, मूल्य ५.००
हिम्मत जौनपुरी, राहीमासूमरजा, क्राउन, पृष्ठ १२७, मूल्य ४.२५
गिरते महल, गुरुदत्त, क्राउन, पृष्ठ ३१६, मूल्य ८.००
भाग्य का सम्बल, गुरुदत्त, क्राउन, पृष्ठ १६०, मूल्य ४.००
दो लघु उपन्यास, राजेन्द्र यादव, क्राउन, पृष्ठ २६३, मूल्य ८.५०
शेष पाण्डुलिपि, बुद्धदेव वसु, क्राउन, पृष्ठ १७५, मूल्य ३.००
बैरंग और लावारिस, समरेस वशु, क्राउन, पृष्ठ १६१, मूल्य ६.००
पटरानी, विमल मित्र, डिमाई, पृष्ठ १३४, मूल्य ६.००
काया-कल्प, राजवंश, क्राउन, पृष्ठ १७४, मूल्य ४.५०
अभागे, विक्टर ह्यूगो, क्राउन, पृष्ठ १९४ मूल्य, ३.५०
बालू के द्वीप, प्रेमेन्दमित्र, डिमाई, पृष्ठ ६१, मूल्य ४.००

कहानी

मिले जुले चेहरे, मोहन राकेश, क्राउन, पृष्ठ १४६, मूल्य ५.००
एक एक दुनिया, मोहन राकेश, क्राउन, पृष्ठ १३४, मूल्य ५.००

नाटक

बाकी इतिहास, बादल सरकार, क्राउन, पृष्ठ ११२, मूल्य ३.५०

काव्य

तारापथ, सुमित्रानन्दन पंत, डिमाई, पृष्ठ २०५, मूल्य ८.००
प्राचीना, उमाशंकर जोशी, डिमाई, पृष्ठ २१७, मूल्य ६.००
निर्वाण, जगदीशकुमार, डिमाई, पृष्ठ ६४, मूल्य ४.००

विविध

भारत की १५ भाषाएँ, प्रभाकर माचवे, क्राउन, पृष्ठ २०४, मूल्य ४.५०
शिक्षा के दार्शनिक सिद्धान्त, प्रेमनाथ, डिमाई, पृष्ठ ३०७, मूल्य १०.००
राजनीतिशास्त्र के सिद्धान्त, रवीन्द्रनाथ मिश्रा, डिमाई, पृष्ठ १०४७, मूल्य १८.००
साहसी गाथाएँ (बाल कहानियाँ), विनोदवाला शर्मा, क्राउन, पृष्ठ ७६, मूल्य २.००
अनमोल गाथाएँ, श्यामलाल, क्राउन, पृष्ठ ६८, मूल्य २.००
अमर गाथाएँ, श्यामलाल, क्राउन, पृष्ठ ७६, मूल्य २.००
किशोर गाथाएँ, श्यामलाल, क्राउन, पृष्ठ ७१, मूल्य ३.००
तलवार का धनी, श्यामलाल, क्राउन, पृष्ठ ७२, मूल्य २.००
जंगल और आँगन, एम० कृष्णन, डिमाई, पृष्ठ १५०, मूल्य ५.२५
व्यक्तित्व का विघटन, मैक्सिम गोर्की, क्राउन, पृष्ठ २७५, मूल्य ६.००
सरकस की कहानी, सत्यदेवनारायण, डबल डिमाई, पृष्ठ ४०, मूल्य २.००
जीवन की कहानी, अनु० विजयकुमार, क्राउन, पृष्ठ १६३, मूल्य ४.००

प्राप्ति–स्थान

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

"………शिक्षा समस्या तथा इससे जुड़े हुए सभी विषयों का एक विहंगम चित्र 'साहित्य परिचय' के शिक्षा-समस्या विशेषांक के अध्ययन-मनन से प्रस्तुत हो जाता है।

मेगजीन आकार के २६० पृष्ठों में ७७ विचारोत्तेजक लेखों के माध्यम से यह उपयोगी सामग्री विधिवत संजोयी गई है। भारतीय संस्कृति में शिक्षा का स्वरूप (डा० लक्ष्मी नारायण दुबे), शिक्षा और देश का पुनर्निर्माण (श्री रविशंकर अस्थाना), भावात्मक और राष्ट्रीय एकता के लिए शिक्षा (श्री प्रभाकरसिंह), शिक्षा पर राज्य का नियन्त्रण (श्री शिवकुमार शर्मा), राष्ट्रीय शिक्षा नीति (श्री सुरेश भटनागर) लेखों में जहाँ समस्या का सैद्धान्तिक विवेचन किया गया है वहाँ निर्देशन की आवश्यकता (डा० सीताराम जायसवाल), शिक्षा में दृश्य-श्रव्य सामग्री (श्री रमाशंकर शुक्ल), शिक्षा में भाषा का प्रश्न (डा० देवकी तिवारी), तकनीकी विकास के लिये शिक्षा (डा० आत्माराम) आदि लेखों में शिक्षा की प्रविधि पर चिंतन प्रस्तुत किया है।

माध्यमिक शिक्षा की कुछ समस्याएँ (श्री राधावल्लभ उपाध्याय), सह-शिक्षा (सुश्री ऊषा उप्पल) शिक्षक-प्रशिक्षण की समस्याएँ (श्री गोपालजी मिश्र) शिक्षा में वित्तीय समस्याएँ (श्री रमापति शुक्ल), अनुशासन-हीनता, (डा० राजेन्द्रपालसिंह) लेखों में कुछ विशिष्ट समस्याओं को उजागर किया गया है।

कुछ लेखों में स्वामी दयानन्द, गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर, स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गांधी, श्री अरविन्द के शिक्षा के विचार क्षेत्र में किये गये कार्यों का विवेचन किया गया है। एक स्थान पर इतनी विचारपूर्ण सामग्री जुटा देने के लिए सम्पादक और प्रकाशक बधाई के पात्र हैं।"

—अमर उजाला दैनिक (३० मार्च, १९६९)

शिक्षा-समस्या विशेषांक प्राप्त हो गया। आपने मेरा नाम याद रखा, इसके लिए कृतज्ञ अनुभव करता हूँ। विनोद पुस्तक मन्दिर के संचालकगण शिक्षा के क्षेत्र से ले ही नहीं रहे हैं, दे भी रहे हैं—यह सन्तोष का विषय है और वे इसके लिए साधुवाद के पात्र हैं। सम्भवतः यह तीसरा विशेषांक है।

भाषा-समस्या के बाद 'शिक्षा-समस्या' पर इतना सुरुचिपूर्ण प्रकाशन सम्भव हो सका, इसका बहुत बड़ा श्रेय आपको है। लेखकों एवं विषय-सामग्री का चुनाव बड़ी सतर्क दृष्टि से हुआ है। कृपया मेरा अभिनन्दन स्वीकार करें।

—अवध बिहारी वाजपेयी
राज्य शिक्षा संस्थान, उदयपुर

'शिक्षा-समस्या' विशेषांक में आपका प्रयत्न श्लाघनीय है, इसके अन्तर्गत दिये हुये लेखों, जिनमें वर्तमान समय में व्याप्त ज्वलन्त समस्याओं के निराकरण एवं अनुकूल वातावरण हेतु एक मार्ग प्रशस्त करने की आधार-शिला, बड़े ही सुन्दर एवं परिमार्जित ढंग से दी हुई है; के संकलन में आपने अपनी योग्यता एवं बुद्धिमता का पूर्ण परिचय दिया है। अब तक मैंने काफी लेख पढ़े जिनमें कुछ की शैली और भाषा ने मुझे पुनः उन्हें पढ़ने को प्रेरित किया।

—डा० (श्रीमती) देवकी तिवारी
शिक्षा-विभाग—विश्वविद्यालय, लखनऊ

'साहित्य-परिचय' का 'शिक्षा-समस्या विशेषांक' देखा। आपकी सूझबूझ सराहनीय है। मानव के विकास की मूल-भूत प्रक्रिया शिक्षा द्वारा आरम्भ होती है, ऐसे विषय पर भिन्न-भिन्न दृष्टियों से अनुभवी शिक्षा-विदों के लेख संकलित कर साहित्य-परिचय ने अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न किया है। मेरी बधाई स्वीकार करें।

—पुरुषोत्तमदास मोदी
प्रधान मन्त्री, अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ, वाराणसी

'साहित्य-परिचय' का 'शिक्षा-समस्या' विशेषांक उपयुक्त समय पर एक अभिनव भेंट है। वर्ष में एक सुन्दर, सुरुचिपूर्ण विशेषांक देकर और साल के शेष भाग में अन्य पठनीय सामग्री बिना मूल्य ही देकर आपका पत्र हिन्दी-जगत में एक स्वस्थ-परम्परा स्थापित कर रहा है। 'भाषा-समस्या' विशेषांक की भाँति ही यह 'शिक्षा-विशेषांक' भी आद्योपान्त पठनीय है। प्रयास के लिये हार्दिक बधाई। **—हरिमोहनलाल श्रीवास्तव, दतिया**

बिना टिकट प्रेषण करने का प्रमाण-पत्र संख्या—५७

आगामी शैक्षिक सत्र में हमारी भेंट

प्रकाशक एवं मुद्रक : विनोदकुमार अग्रवाल । हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस के हेतु कैलास प्रिंटिंग प्रेस, आगरा–२ में मुद्रित

साहित्य-परिचय

राष्ट्रभाषा और साहित्य की गतिविधियों का परिचायक पत्र

जून १९६९

मैं काफी हद तक इससे सहमत हूँ कि आज की शिक्षा प्रणाली और परीक्षा प्रणाली कुछ ऐसी है जिसमें सारा बल परीक्षा और श्रेणी पर है। प्रचलित शिक्षा प्रणाली व्यक्ति को शिक्षार्थी नहीं परीक्षार्थी बना देती है। मैं मानता हूँ कि इस दिशा में हमें कुछ न कुछ करना होगा। मिसाल के तौर पर, मैं सोचता हूँ कि परीक्षाओं को कम-से-कम कर देना चाहिए। श्रेणी निर्धारित करते समय छात्र के अध्यापक के प्रमाण पत्र को यथेष्ठ महत्व दिया जाना चाहिए। दरअसल श्रेणी का महत्व बहुत कुछ इस कारण है कि शिक्षितों के अनुपात में रोजगार की सुविधाएँ बहुत कम हैं। यह स्थिति नहीं रहेगी तो श्रेणी का महत्व अपने आप कम हो जाएगा। मैं तीसरी श्रेणी समाप्त कर देने के पक्ष में हूँ। इससे कुछ तो रोजगार के साधनों पर दबाव कम होगा और कुछ छात्रों में व्याप्त कुंठा कम होगी।

पी० एन० कृपाल
भूतपूर्व सचिव, शिक्षा मंत्रालय
भारत सरकार

साहित्य-परिचय

[शिक्षा और साहित्य की प्रगति का परिचायक पत्र]

वर्ष ४ : अंक ६

जून, १९६९

सम्पादक
विनोदकुमार अग्रवाल
एम. ए., साहित्यरत्न

प्रबन्ध सम्पादक
सतीशकुमार अग्रवाल

स्वामित्व
विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–२

मूल्य
एक प्रति ०.२५ : वार्षिक ५.००

साहित्य-परिचय
डॉ० रांगेय राघव मार्ग
आगरा–२
फोन : ७६४८६

सम्पादकीय

शिक्षा में धर्म और नैतिकता का स्थान

भारतीय शिक्षाप्रणाली में, विशेषकर विश्वविद्यालयों में, धर्म और नैतिक शिक्षा की उपेक्षा की जाती है। कुछ क्रिश्चियन कालेजों में औपचारिक रूप से बाइविल की शिक्षा दी जाती है किन्तु क्रिश्चियन और गैर-क्रिश्चियन सभी उसकी उपेक्षा करते हैं। इंग्लैण्ड के स्कूलों में भी इस प्रकार का कोर्स कुछ स्थानों में है किन्तु वहाँ तो विद्यार्थी इन कक्षाओं को और उपेक्षणीय समझता है। सारे संसार में धर्म के प्रति एक ऐसा विद्रोह शुरू हो गया है कि अब धर्म और नैतिक शिक्षा का सामान्य पाठ्यक्रम बनाकर उसे चला सकना कठिन है। यह बात सच है कि आज के जीवन में धर्म और नैतिक मूल्यों की अधिक आवश्यकता है क्योंकि विज्ञान हमारी जिंदगी को बदलने में सक्षम हो रहा है। हम अधिक भौतिकवादी और स्वार्थी होते जा रहे हैं। जीवन में भोग की वृद्धि हो रही है। भौतिक सुखों की अभिलाषा आज के जीवन में अधिक बढ़ गई है। इसको कोई रोक भी नहीं सकता। आज धर्म के उपदेशक भी धार्मिक नहीं रहे। धार्मिक केन्द्रों पर अनाचार और अधर्म का अनुपात अधिक देखा जा रहा है। अतः धर्म को आज की शिक्षाप्रणाली में रूढ़िगत रूप में स्थान देने से कोई लाभ नहीं हो सकता। उसको आधुनिक परिप्रेक्ष्य में पढ़ाया जाय और उसकी गहराइयों को बौद्धिक रूप से समझा जाय तो धार्मिक शिक्षा का आज भी हमारे शैक्षिक जीवन में महत्त्व हो सकता है क्योंकि धर्म और साहित्य में संसार की समस्त जातियों ने अपने उच्चतम मूल्यों को सुरक्षित रखा है और उनके नैतिक जीवन के आधार भी उनमें ढूंढ़े जा सकते हैं। अतः धर्मों के अध्ययन से हमारी ज्ञानराशि अधिक उपयोगी हो सकती है।

प्रश्न यह है कि आज के युग में धार्मिक शिक्षा की वैज्ञानिक दृष्टि क्या हो ? उसको विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में किस प्रकार सम्मिलित किया जाय ?

संसार की कोई ऐसी जाति नहीं है जिसके पीछे धर्म का इतिहास न रहा हो। आदिम वनजीवियों में भी धर्म का प्रचार देखा गया है। पाल रेडीन नामक मानवशास्त्री ने कुछ आदिम संस्कृतियों को गहराई से देखा और परखा तथा एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखी—Primitive man–as a philosopher. उन्होंने उसमें बताया है कि आदिम जातियों में भी धर्म और दर्शन बड़ी गहराई में व्याप्त हैं। भारत में भी मुंडा, ओरांव, भील, कोल, संथाल आदि जातियों में धर्म का प्रचार है यद्यपि

उसकी अभिव्यक्ति भिन्न-भिन्न रूपों में हुई है। जहाँ-जहाँ व्यापक हिन्दू या ईसाई धर्म का प्रभाव हो गया है, वहाँ भी ये जातियाँ अपनी-अपनी परम्पराओं को एकदम नहीं भूल सकी हैं।

संसार के बड़े धर्मों में--हिन्दू, बौद्ध, जैन भारतीय धर्म हैं। विदेशी धर्मों में ईसाई धर्म, जिविश (Jewish) धर्म उल्लेखनीय हैं। इसके बाद इस्लाम है जो लगभग आधी दुनियां में किसी न किसी रूप में प्रचार पा सका है। दूसरे शब्दों में हम यह कहें कि संसार को तीन-चौथाई मानव जाति अपने साथ धर्म की समृद्ध परम्परा लेकर जी रही है। विज्ञान इसीलिए धर्म को समूल नष्ट करने में समर्थ न हो सकेगा, भले ही वह उसका स्वरूप बदल दे। मनुष्य हमेशा मनुष्य रहना चाहेगा। उसे रोटी चाहिए, भौतिक सुख चाहिए किन्तु इसकी प्राप्ति के बाद उसे प्रेम चाहिए, सहानुभूति चाहिए, सद्भावना चाहिए। मनुष्य जीवन के उच्च मूल्यों की खोज सदा करेगा। तब फिर उसे धर्म और साहित्य की शरण लेनी पड़ेगी। अमेरिका जैसे घोर वैज्ञानिक देश में भी धर्मों के अध्ययन की उपेक्षा नहीं हो रही है। प्रायः अच्छे विश्वविद्यालयों में 'धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन' कराया जाता है। वहाँ विश्वविद्यालयों में धर्मों के अध्ययन के स्वतन्त्र विभाग हैं जहाँ क्रिश्चियन धर्म के अतिरिक्त हिन्दू, मुस्लिम, बौद्ध तथा अन्य धर्मों का अध्ययन कराया जाता है। मसिया, इलायडे, ज़ेनर आदि अनेक विदेशी विद्वानों ने हिन्दू धर्म का अध्ययन गहराई से किया है और वे अन्य धर्मों के भी प्रकांड विद्वान् हैं।

भारत में ऐसे कितने विद्वान् हैं जो ईसाई धर्म पर या जिविश धर्म पर गहराई से बात कर सकते हैं? शायद एक भी नहीं। दूसरे धर्मों के बारे में हमारा ज्ञान अत्यन्त अपूर्ण है। हम अपने पड़ोसी धर्म इस्लाम के बारे में भी कुछ नहीं जानते। यही हालत हमारे मुसलमान विद्वानों की भी है वे भारतीय धर्मों के बारे में कुछ भी गहराई से जानने की कोशिश नहीं करते। आज के जीवन में जबकि विज्ञान ने एक देश को दूसरे देश के करीब ला दिया है हम दूसरे को समझे बगैर, उसके प्रति सहानुभूति रखे बगैर ठीक प्रकार से जी नहीं सकते। इस बदलते हुए युग में दूसरे के प्रति भी हमें अपनी जानकारी बढ़ानी होगी अतः आवश्यक है कि हमारे देश में तुलनात्मक धर्मों का अध्यापन गहराई से कराया जाय और पाठ्यक्रम में हिन्दू धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों का अध्यापन हो। उसमें ऐसे विद्यार्थी प्रवृत्त किये जायँ जो संस्कृत तथा भारतीय भाषाओं के साथ ग्रीक, लैटिन या चीनी, जापानी तथा दक्षिण-पूर्व एशिया की भाषाएँ भी पढ़ें और उनके धर्मों का अध्ययन उनके मूल ग्रन्थों से करें। यह दुर्भाग्य की बात है कि भारतीय विश्वविद्यालयों में कहीं भी धर्मों के विशद् अध्ययन का विभाग नहीं है। कोई हिन्दू यदि ईसाई धर्म की गहरी जानकारी प्राप्त करना चाहता हो या जापान के शिन्तो धर्म का अध्ययन करना चाहता हो तो उसके लिए कोई सुविधा नहीं है। यह एक लज्जाजनक स्थिति है।

भारत जैसे देश में, जहाँ सुविधाओं का अभाव है, यह किया जा सकता है कि तुलनात्मक धर्म और तुलनात्मक साहित्य का एक विभाग बना दिया जाय। जो विद्यार्थी मूल भाषाओं का अध्ययन कर उनका साहित्य पढ़ना चाहता है, वह साहित्य पढ़े और जो धर्म का अध्ययन करना चाहता है, वह तुलनात्मक धर्मों को पढ़े।

●

जो धर्म दूसरे धर्म को बाधा पहुँचाता है वह धर्म नहीं कुधर्म है। जो धर्म का अविरोधी है, सत्य पराक्रमशील धर्म वही है।

सच्चा धर्म हमें अपने आश्रितों का सम्मान करना सिखाता है और मानवता, दरिद्रता, विपत्ति, पीड़ा एवं मृत्यु को ईश्वरीय देन जानता है। —गेटे

शिक्षा और सामाजिक व्यवस्था

डा० तेजनारायण लाल
प्राध्यापक–केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा

किसी भी समाज को व्यवस्था को संतुलित रखने में प्रत्येक व्यक्ति का सक्रिय सहयोग अपेक्षित होता है। यह कहा जाता है कि व्यक्ति ही समाज का निर्माण करता है; क्योंकि 'अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता।' कारण यह है कि किसी व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति दूसरे व्यक्ति की आवश्यकताओं की टकराहट से ही होती है और इसी अनिवार्यता के कारण प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे के साथ हिल-मिलकर रहना पसंद करता है, अपना समुदाय बनाने की कोशिश करता है। व्यक्ति के निर्माण में परिवार का सक्रिय योगदान आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य रहा है। मनुष्य जन्म से ही अन्य प्राणियों की अपेक्षा असहाय और निरीह अवस्था में रहा है। लेकिन बुद्धि की शक्ति के कारण वह उनसे आगे बढ़ जाता है, बाजी मार लेता है। उसके मस्तिष्क को बनावट अन्य पशुओं के मस्तिष्क की बनावट से सर्वथा भिन्न है। वह अकेला मर सकता है, परन्तु अकेला जिन्दा नहीं रह सकता। अपने आपको जीवित और सुरक्षित रखने के लिए ही उसने समाज का निर्माण किया है। इसी से उसे एक सामाजिक प्राणी कहा जाता है। मनुष्य समाज का अभिन्न अंग है। उसके जीवन-विकास में भूख, भय और काम-वासना के संवेगों की करामात है। ज्ञान की भूख ने ही उसे नयी-नयी खोज एवं वैज्ञानिक आविष्कारों की ओर अग्रसर किया है। भय ने भयावहता, हिंसात्मकता से बचने के लिए, सुरक्षा के लिए उत्प्रेरित किया है और उसकी काम-वासना ने ही उसकी वंश-परम्परा को अक्षुण्ण बनाए रखा है।

यदि किसी भी समाज का प्रत्येक व्यक्ति शिक्षित नहीं है, किसी उत्तरदायित्व को वह महसूस नहीं करता है तो समाज की प्रगति कदापि भी नहीं हो सकती और धीरे-धीरे वह समाज ध्वंस हो जाता है। प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह दूसरों की कमजोरी को अपनी ही कमजोरी समझने का प्रयत्न करे, क्योंकि शिक्षित व्यक्ति के ऊपर अशिक्षितों की अपेक्षा अधिक उत्तरदायित्व है, उससे ही समाज की व्यवस्था को संतुलित रखने की अधिक आशा की जाती है। शिक्षा का उद्देश्य यही है कि प्रत्येक व्यक्ति को स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुता प्राप्त करने का सुअवसर दिया जाय—उसका सर्वोदय हो, एकोदय नहीं यानी 'सबजन सुखाय, सबजन हिताय'। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति की बुरी आदतें दूर की जाती हैं और अच्छी आदतें प्रदान कर दी जाती हैं। इसी से सभी दान से ज्ञानदान को अधिक महत्त्व दिया गया है, क्योंकि कोई भी व्यक्ति यदि अपने ज्ञान को विकसित और संतुलित कर लेता है तो उसका प्रत्येक कार्य सुन्दरतम ढंग से परिपूर्ण हो जाता है और उसका जीवन सही दिशा में विकसित होता रहता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अच्छी शिक्षा बुरों को भी रत्न बना देती है और समाज की सभी बुराइयों को दूर कर देती है। वह हमें अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाती है—"तमसो मा ज्योतिर्गमय"। माता-पिता तो शिशु को जन्म देते हैं, लेकिन गुरुजी ही उसे समाज में रहने लायक बना देते हैं। उसके जीवन को देदीप्यमान बना देते हैं। शिक्षा के द्वारा ही किसी समाज की संस्कृति, सभ्यता, रीति-रिवाज, रहन-सहन सुनियोजित होते हैं और प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे से प्रेम के सूत्र में बँधा रहता है। इसी से समाज भी सुदृढ़ बनता जाता है। आज के युग में जो विज्ञान का विकास होता जा रहा है, उसका कारण शिक्षा ही है। यदि शिक्षा नहीं दी जाती तो कदाचित् आज हम इस रूप में अपने को नहीं पाते और मानवता से वंचित ही रह जाते। मराठी और तेलुगु में शिक्षा का अर्थ दण्ड होता है और यह किसी हद तक ठीक भी है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति में बर्बर प्रवृत्तियाँ सहज रूप में छिपी रहती

हैं, उन्हें निकाल फेंकने का कार्य शिक्षा ही करती है। शिक्षा उसमें कलात्मकता, कमनीयता ला देती है और उसका जीवन सुन्दरतम बन जाता है।

आज जो समाज की व्यवस्था है, वह शाश्वत नहीं है, परिवर्तित हो सकती है। यदि हम वर्तमान समाज की व्यवस्था से असन्तुष्ट हैं, विक्षुब्ध हैं तो उसे बदलना ही पड़ेगा और शिक्षा के वास्तविक उद्देश्य की पूर्ति करनी ही पड़ेगी। प्रत्येक समाज का ढाँचा आर्थिक आधार पर अवलम्बित रहता है और उत्पादन का वितरण यदि अन्यायपूर्ण होता है तो समाज दो वर्गों में विभाजित हो जाता है--अमीर और गरीब वर्ग में। इस प्रकार समाज में विषमता अपना सिर उठाने लगती है और संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है, क्रान्ति सुगबुगाने लगती है, उथल-पुथल मच जाती है। इस असन्तुलन का प्रभाव प्रत्येक व्यक्ति पर पड़ता है और उसकी वैचारिकता भी स्वस्थ नहीं हो पाती, उसका दृष्टिकोण व्यापक नहीं हो पाता है। हमारे समाज में अमीर और गरीब के जीवन-दर्शन में जो भिन्नता है, उसे हम भली-भाँति जानते ही हैं। एक पढ़े-लिखे व्यक्ति और अनपढ़े के मनोभावों के व्यवधान तथा अन्तराल को हम परख सकते हैं। यह भेद-भाव अच्छी शिक्षा के द्वारा धीरे-धीरे दूर किया जा सकता है और समाज के अवांछनीय तत्त्वों का मूलोच्छेदन भी किया जा सकता है। आज हमारे देश में सच्ची और अच्छी शिक्षा की आवश्यकता है, हमारे देश में व्यक्तिवादी दृष्टिकोण समाजवादी और राष्ट्रीय दृष्टिकोण में परिणत नहीं हो रहा है, इसी से हम कुंठाग्रस्त हैं और अपने को अस्तित्वहीन समझने लग गए हैं। कारण यह है कि कुशिक्षा ने हममें समाज के प्रति अविश्वास की भावना भर दी है और अब हम वर्तमान समाज की असंतुलित व्यवस्था से कतरा कर 'ढाई चावल की खिचड़ी' पकाने में मग्न हैं। किसी भी समाज में प्रत्येक व्यक्ति जब अपने आपको अकेला महसूस करता है, वह अपने को असहाय समझने लगता है तो इसका तात्पर्य यही होता है कि वह समाज से बिछुड़ रहा है और समाज पर उसे कोई भरोसा नहीं है। इस प्रकार के असामाजिक वातावरण को दूर करने में शिक्षा ही अग्रसर होती है और व्यक्ति तथा समाज के अभिन्न सम्बन्ध को सुदृढ़ बनाए रखती है। ⊙

शिक्षा का माध्यम—केरल के प्रसङ्ग में

डा० चेन्नित्तला कृष्णन नायर

एन० एस० एस० कालेज, पन्डलम (केरल)

●

मलयालम के प्रसिद्ध दैनिक 'मातृभूमि' के ३० दिसम्बर के अंक में मदुरै-गांधी ग्राम—के दीक्षान्त समारोह की वार्ता छापी गयी है। दीक्षान्त भाषण बहुत ही चिन्तनीय और आधुनिक परिस्थिति के लिए आवश्यक है। दीक्षान्त भाषण देते हुए उक्त दैनिक के प्रधान संपादक श्री के० पी० केशव मेनोन ने जोर दिया कि "आज सार्वजनिक जीवन में जो पतन है, उसको रोकना नवजवानों का कर्तव्य है।" शिक्षा के माध्यम की ओर भी आपका ध्यान गया—"भारत के सभी विश्वविद्यालयों की शिक्षा का माध्यम एक ही होना चाहिए और हिन्दी को वह शक्ति जब तक आ जायगी तब तक अंग्रेजी उस स्थान पर विराजमान हो। इसे केवल भावावेग के प्रश्न के रूप में न लेकर, यथार्थता की दृष्टि से लेना है।"

इसके अलावा २३ तारीख को हाल में स्थापित कालिकट विश्वविद्यालय के सीनेट ने एक प्रस्ताव के द्वारा सिण्डिकेट के सामने यह माँग रखी कि विश्वविद्यालय के विविध विभागों और सम्बद्ध कालेजों तथा दूसरी शिक्षा-संस्थाओं में मलयालम को शिक्षा के माध्यम के रूप में लाये जाने की आवश्यक कार्यवाहियाँ, एक क्रमीकृत योजना के अनुसार करे। केरल विश्वविद्यालय ने कुछ दिन पहले ऐसा एक प्रस्ताव पास किया था।

उपर्युक्त दोनों वक्तव्यों को ध्यान में रखकर विचार करें तो भारत की शिक्षा-समस्या का एक चित्र हमारे सामने आ जायगा। माध्यम के सम्बन्ध में यहाँ बड़े-बड़े वादविवाद हैं। जितने शिक्षाशास्त्री और शिक्षा के क्षेत्र से सम्बन्ध रखने वाले हैं उतने ही मतभेद हैं। उन सबका परामर्श न तो आवश्यक है और न उसके लिए समय ही है। लेकिन इन विभिन्न मत-मतान्तरों को हम तीन भागों में बाँट सकते हैं। एक सिद्धान्त यह है कि शिक्षा का माध्यम मातृभाषा या प्रान्तीय भाषा हो। इसे पिछले बीस वर्षों में आगे के लिए स्थगित कर देना भूल थी। इसीलिए अभी से यह सहज काम शुरू कर दें। दूसरा सिद्धान्त यह है कि भारत में नई शिक्षा की व्यवस्था अंग्रेजों ने की है और अंग्रेजी शिक्षा से और अंग्रेजी संस्कृति के परिचय से कई महत्ताएँ हुई हैं। १९वीं सदी में दुनियां भर के नवजागरण का परिचय अंग्रेजी के सम्पर्क से हुआ। इसीलिए कोरे देश-स्नेह के नाम से अंग्रेजी को शिक्षा के क्षेत्र से अलग करना बड़ी भूल होगी। स्व० प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने भी यह बताया कि अंग्रेजी दुनियां की जानकारी का एक वातायन है (यद्यपि पंडितजी ने 'एक वातायन' बताया, तो भी अंग्रेजी के समर्थक उसे विज्ञान का वातायन कहा करते हैं) इसीलिए अंग्रेजी ही शिक्षा का माध्यम हो। ये दोनों कथन अपने-अपने क्षेत्र में सही हैं, युक्तिपूर्ण हैं और समझ में आने वाले हैं; किन्तु एक तीसरा सिद्धान्त भी है कि भारत में शिक्षा का माध्यम प्रान्तीय भाषा हो—इसमें भी सन्देह नहीं। लेकिन जब तक प्रान्तीय भाषाएँ उस योग्य बनेंगी तब तक अंग्रेजी ही शिक्षा का माध्यम हो। सुनने में यह आसान, सरल तथा निरापत्तिपूर्ण मालूम होगा; किन्तु हम अच्छी तरह विश्लेषण कर देखें तो इसमें छिपी खराबी प्रकट होगी। इसके अनुसार प्रान्तीय भाषा शिक्षा का माध्यम नहीं होगी। इस प्रकार के सिद्धान्तों से ही स्वतन्त्रता को पाये इन लम्बे सालों में हमारी शिक्षा अपनी भाषा में नहीं हुई। भला, कभी कोई वस्तु या जीव अथवा स्वयं मनुष्य भी जिसको हम अपने कर्तव्य को संभालने का मौका न देंगे तो वह योग्य या शक्तिशाली सेवा करने योग्य बनेगा? अगर हम प्रान्तीय भाषाओं को, उनके कर्तव्य को निभाने के लिए सुपुर्द करेंगे तो वे आसानी से अंग्रेजी की तरह अपनी योग्य सेवा में अग्रसर होंगी।

अंग्रेजी को आज की यह शक्ति क्या अचानक

मिली ? क्या वह भगवान् का वरदान है ? इतना बड़ा साम्राज्य, सैनिक शक्ति और उपनिवेश ब्रिटेन के नहीं होते तो अंग्रेजी इतना प्रसार कभी पाती ? क्या सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी में इसमें इतनी समृद्धि और शक्ति थी ? अभी भी उसकी समृद्धि और शक्ति के बारे में सोचिये। उसमें मौलिक प्रतिभाएँ कितनी हैं ? अंग्रेजी की मौलिक प्रतिभा की देन से हमारी मौलिक देन क्या किसी अंश में कम है ? इसीलिए मेरी राय है कि अपनी प्रान्तीय भाषाओं को उनके फर्ज अदा करने का मौका जितनी जल्दी दे दें उतनी ही वे सशक्त एवं समृद्ध होंगी।

दुनियां की भाषाओं में वैज्ञानिक दृष्टि से और भाषाशास्त्र की दृष्टि से बहुत अपरिमार्जित हैं–चीनी और हिब्रू भाषाएँ। क्या इन दोनों भाषाओं के राज्य आधुनिक भौतिक प्रगति और वैज्ञानिक उपादानों में पीछे हैं। इनमें हिब्रू भाषा दो हजार वर्ष पहले से मृतभाषा समझी जाती है। जब दूसरे महायुद्ध के बाद यहूदियों का अलग राष्ट्र इजरायल कायम हुआ तो वहाँ के नेताओं ने अपनी हिब्रू भाषा को अपनाया और एक हिब्रू यूनिवर्सिटी भी कायम की। अपने देशवासियों को अपनी संस्कृति की भाषा में शिक्षा देना आवश्यक समझा गया। परिणामतः इतने कम समय में वे दुनियां के शक्तिशाली राष्ट्रों में एक बन गया। मैं मानता हूँ कि यह उनकी अपनी भाषा से प्राप्त मौलिक प्रतिभा की चमक है।

इस प्रसंग में मुझे महाकवि श्री जी० शंकर कुरुप का एक वक्तव्य याद आता है—"मैं यही सूचित करता हूँ कि जब कर्तव्य आता है तब ही मनुष्य की शक्ति सजग होकर काम करती है। कर्तव्य आने पर ही मनुष्य अपनी कमियाँ समझ लेते हैं। भाषा और साहित्य आज यहाँ आह्लादकारी उपाधियों के रूप में न होकर देश के लिए कुछ कर्तव्य अदा करने वाले अन्तश्चैतन्य के रूप में हैं। उन चैतन्यों को अपने कर्तव्य अदा करने का मौका हम न देंगे तो कैसे हाथ-पैर बढ़ा देगा ? हम तो, चैतन्य बढ़ जाय; तब तो कर्तव्य सँभालने का मौका दिया जायगा—ऐसा बना देते हैं। एक बंदर को ले लें; कुछ दूरी पर फल रखा जायगा तो वह हाथ बढ़ा देगा। पहुँच के बाहर का कर्तव्य भाषा और साहित्य के सामने रख लेने पर ही; भाषा और साहित्य अपने हाथ बढ़ाने—अपनी अन्तःशक्ति को बढ़ाने—लगेंगे। इस प्रकार पहुँच के बाहर कई कर्तव्य हमारी भाषा तथा साहित्य के सामने खड़े होते हैं। वे कर्तव्य छूने में ये असमर्थ हैं, इसीलिए दूसरी भाषा को सौंपना है तो वह राष्ट्र की एक बड़ी आत्महत्या होगी—इस बात में मुझे कुछ भी सन्देह नहीं। × × × काल, देश और इतिहास के संघर्ष से हो जाने वाले स्वप्न स्वयं पंख फैलाकर ऊपर आना और हमारे शासन के क्षेत्र में कंपन पैदा करना और पुरानी प्रथाओं को छोड़कर नई प्रथाओं को विकास देने की परिस्थिति बनाना है तो अपने हृदय और मुख की भाषा को अपनाना होगा। तब तो यही मैं सूचित करता हूँ कि शासन के स्तर पर देशभाषा, माध्यम के रूप में आनी ही चाहिए।"

इसमें दूसरी राय नहीं है कि शिक्षा का माध्यम मातृभाषा ही हो। दुनियां में दूसरा कोई राष्ट्र नहीं है जो अपने बच्चों को किसी विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षा देता है। क्या वहाँ के शिक्षाशास्त्री और नेतागण हमारे नेताओं और शिक्षाशास्त्रियों से कम अक्ल रखते हैं ? क्या अंग्रेजी का इन्द्रजाल उनकी समझ में नहीं आता ? एक राष्ट्र के नागरिकों को शिक्षा देने में कुछ मौलिक तथ्य और युक्ति हैं और उन मौलिक एवं प्राथमिक बातों को मुट्ठी भर लोगों की सुविधा या सिद्धान्त के लिए नकारना जनतन्त्र के भी खिलाफ है।

केरल के शिक्षा-क्षेत्र में करीब तीस साल तक विभिन्न मंडलों पर विराजित और सार्वजनिक शिक्षा निदेशक (Director of Public Instruction) निजी-सहायक बन गये—श्री०कैनिकर। कुमार पिल्लै का कथन है—"शिक्षा की सुविधा मिलना एक व्यक्ति का जन्मजात अधिकार है, वह सुविधा उसको पूर्ण रूप से मजबूत बनाने में मातृभाषा ही सशक्त हो तो—यह एक अटल सत्य है—उसी मातृभाषा के जरिए सभी प्रकार की—सभी स्तर की—शिक्षा पाने की सुविधा भी उसका जन्मजात अधिकार है। इसी परिस्थिति में,

ज्ञानोपार्जन के लिए दूसरी भाषा पढ़ लेने का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जोर देना उस जन्मजात अधिकार का उल्लंघन करना है; व्यक्त अनीति है। हम आज वही करते हैं।"

मनोविज्ञान और शिक्षाशास्त्र ने व्यक्त एवं दृढ़ होकर इस बात पर जोर दिया है कि जन्म से ही सहज एवं अयत्न रूप से अपना लेने वाली भाषा—मातृभाषा—ही शिक्षा-आधान, शिक्षोपार्जन का सुकर एवं सीधा माध्यम है। एक बच्चे की ज्ञानशक्ति और मातृभाषा ज्यादातर अच्छेद्य होकर बढ़ती रहती हैं। शिक्षाशास्त्री इस पक्ष में हैं कि 'इस कारण से निष्कृष्ट सीधे ढंग से (Direct Method) दूसरी भाषा का अध्ययन करते समय भी मन में अनजान रूप से एक भाषान्तरीकरण चले बिना नहीं रहता।' कहने का सारांश यह है कि विद्यार्थियों की शिक्षा का मौलिक माध्यम मातृभाषा ही है।

सोचने की बात यह है कि विदेशी माध्यम से दी जाने वाली आज की शिक्षा ने हमें कहाँ खड़ा किया है? तेजी से प्रगति पाये हुए परिष्कृत राष्ट्र से कई साल पीछे हम आज चलते हैं। आधुनिक जीवन की आवश्यक जानकारियाँ, प्रेरणा देने वाले सभी भाव, प्रचोदित करने वाले सभी कला-रूप उधर से यहाँ पहुँचना है। इसके लिए, सालों की देरी और कई रूप-परिवर्तन की आवश्यकता है। हम जिसे नूतन कहकर गले लगाते हैं वे काफी पुराने बने हुए हैं। हमारी उच्च शिक्षा के लिए एक अन्य और क्लिष्टतापूर्ण विदेशी भाषा को अपनाने के कारण यह देशी क्षति, सार्वजनिक बुराई बनी रहती है।

हमारे यहाँ ज्यादातर लोग शिक्षा की माध्यमिक समस्या को सैद्धान्तिक दृष्टि की अपेक्षा ज्यादा वैयक्तिक दृष्टि से अपनाते हैं। प्रान्तीय भाषाओं को माध्यम बना लेने की बात उठाते समय ऐसे लोगों का कथन है कि अंग्रेजी को एकदम देश से निकाल देने का श्रम है। इनकी युक्तियाँ इस ओर जाती हैं कि 'विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न भाषाओं में शिक्षा दी जायगी तो प्रान्तों की एकता नष्ट हो जायगी। विज्ञान और टेक्नॉलॉजी की नई-नई बातें गरमा-गरम नहीं मिलेंगी, क्योंकि इस क्षेत्र में शोध आदि अंग्रेजी माध्यम से हुआ करती है। इस विषय की किताबें और पत्र-पत्रिकाएँ अंग्रेजी में हैं। हमारे नवजवान उच्च शिक्षा के लिए विदेशों में जाते हैं और वहाँ अंग्रेजी से ही कार्य चलते हैं। इस प्रकार की विशिष्ट जानकारी नवभारत के लिए आवश्यक हैं।'

ये बातें सब उपरितलस्पर्शी हैं। पहले सोचने की बात यह है कि भारत में एक प्रान्त से कितने लोग अन्तरप्रान्तीय क्षेत्र में काम करते हैं और कितने लोग विदेशों में उच्च शिक्षा पाने को जाते हैं। उन कम फीसदी के लोगों के लिए सबको अंग्रेजी पढ़ा लेना अन्याय है। इसके अलावा पिछले दिनों का इतिहास यही सबूत दे देता है कि अंग्रेज और अंग्रेजी के कारण यहाँ की एकता नष्ट हुई। मेरी राय में अंग्रेजी और अंग्रेजियत ने ही भारत में विघटन का बीज बोया और यह बीज पनपकर सन् १९४७ में दुनियां के मंच पर एक नया राज्य बना दिया गया। वैज्ञानिक साहित्य तर्जुमा से भारतीय विद्यार्थियों के सामने आ जायगा। रूस, चीन, इजरायल, फ्रांस आदि देशों में इंग्लैंड या अमरीका के वैज्ञानिक आविष्कारों की जानकारी नहीं जाती है?

केरल में आज दसवीं कक्षा तक की शिक्षा मलयालम के माध्यम से चलती है। अंग्रेजी और हिन्दी दूसरी और तीसरी भाषाएँ हैं; किन्तु कालेजों में माध्यम अंग्रेजी है। यह एक बेसिर की बात है कि जो छात्र १०वें दर्जे तक मातृभाषा में शिक्षा प्राप्त करते हैं और प्रीडिग्री में सभी विषय कठिन अंग्रेजी में पढ़ लेने को विवश होते हैं। कॉलेज के स्तर पर अचानक होने वाला यह माध्यमिक परिवर्तन विद्यार्थियों को खूब परेशान कर लेता है। इसीलिए सहज बात यह है कि कॉलेजों में भी शिक्षा मातृभाषा के माध्यम से कर दे। ऐसा किया जाय तो भाषा पढ़ने की कठिनाई दूर होगी और विद्यार्थियों का स्तर ऊपर उठेगा। अपने अनुभव से यह कहना बुरा न होगा कि कॉलेजों में माध्यम अंग्रेजी है किन्तु अंग्रेजी तक को मलयालम में पढ़ाते हैं, नहीं तो विद्यार्थी कुछ नहीं समझेंगे। मेरा विश्वास यह है कि चाहे माध्यम अंग्रेजी हो या न हो, इस तरह आगे बढ़ेंगे तो अगले दस-पन्द्रह सालों में स्वयं मलयालम माध्यम की पीठ पर विराजेगी। अंग्रेजी

का पतन और गिराव उतना शीघ्र है। भाषा के सम्बन्ध में एक उज्ज्वल सत्य यह है—"भाव को प्रकट करने की भाषा की शक्ति कृत्रिम यत्न से प्राप्त करने वाली नहीं, स्वभावतया, आवश्यकता के अनुसार हो जाने वाली है। हमारी प्रान्तीय भाषाएँ, प्राकृत भाषाएँ (कमजोर के अर्थ में) नहीं हैं। वे प्रगति पायी भाषाएँ हैं; वे विकसित और विस्तृत हैं। जरूरत के अनुसार विकास पाने और ज्यादा-ज्यादा विकास पाने में उनको शक्ति है। आवश्यकता के आघात के बिना ऐसा नहीं होता।"

आज हमारी शिक्षा-संस्थाओं में त्रि-भाषा-फार्मूला स्वीकार किया गया है। एक बात यह सोचनी है कि भारत में अंग्रेजी भाषा को एक अच्छा स्थान देना होगा। इसके लिए उसका अध्ययन सार्वजनिक कर देना अच्छा नहीं होगा। जो अंग्रेजी पढ़ना चाहते हैं उनको अच्छी सुविधा देनी है तब तो उसका भविष्य उज्ज्वल होगा। प्रान्तीय भाषा और राजभाषा का अध्ययन सबके लिए आवश्यक है। जहाँ राजभाषा और प्रान्तीय भाषा एक है उधर दूसरी एक भारतीय भाषा का अध्ययन निश्चित कर दें तो परिश्रम और पहचानने की क्रिया सन्तुलित होगी। एक लोकभाषा के रूप में अंग्रेजी का अध्ययन भी ठीक रहेगा। इस प्रकार अपनी शिक्षा में हम परिवर्तन जितनी जल्दी करेंगे उतने अच्छे हो जायेंगे। स्वतन्त्र भारत में मौलिक प्रतिभाओं से सम्पन्न भी बनेंगे।

⊙

लेखकों से

आवश्यक नहीं

कि 'साहित्य-परिचय' में शीर्षस्थ लेखकों के ही निबन्ध छपें। नई पीढ़ी के नये लेखकों को प्रोत्साहित करना भी हमारा एक ध्येय है।

अतः लेखकों से निवेदन है कि वे साहित्य-परिचय में प्रकाशनार्थ शिक्षा अथवा साहित्य सम्बन्धी संक्षिप्त किन्तु तथ्यपूर्ण निबन्ध भेजें। निबन्ध सुगठित, संक्षिप्त एवं मौलिक होने चाहिए।

सूचना समाचार

विश्वविद्यालयों की प्रबन्ध-समितियों में छात्रों के प्रतिनिधित्व की माँग

विश्वविद्यालय छात्र संघों के प्रतिनिधियों का तीन दिन का सम्मेलन जो नई दिल्ली में केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय एवं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा आयोजित किया गया था, २५ मई को समाप्त हुआ। सम्मेलन ने जो महत्त्वपूर्ण सिफारिशें की हैं वे निम्न हैं—

१. विश्वविद्यालय की प्रबन्ध समितियों—एकेडेमिक कौंसिल, सिनेट और विश्वविद्यालय कोर्ट में छात्रों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए।

२. विश्वविद्यालय के उपकुलपति शिक्षा क्षेत्र से सम्बन्धित व्यक्ति होने चाहिए। अनुशासन पालन के लिए प्रत्येक विश्वविद्यालय में छात्रों और अध्यापकों की संयुक्त समिति गठित की जानी चाहिए।

३. बेरोजगारी सम्बन्धी समिति की रिपोर्ट में छात्रों की दिन-प्रतिदिन बढ़ रही बेरोजगारी पर चिन्ता प्रगट करते हुए बेरोजगारी-भत्ता दिए जाने तथा शिक्षा को उद्योग आधारित बनाए जाने की सिफारिश की गई।

इसके अतिरिक्त सम्मेलन ने स्नातक छात्रों से अपील की है कि वे गाँवों में जाकर देश के आर्थिक विकास में कृषि को विकसित करने में योग दें। सहकारिता और लघु उद्योगों को प्रोत्साहन दिया जाय, तथा अन्तर्राज्य, अन्तर्जातीय एवं अन्तर्धार्मिक विवाहों को प्रोत्साहन देने के लिए, इस प्रकार के विवाह करने वालों को रोजगार में प्राथमिकता दी जाए।

इस सम्मेलन में ६० विश्वविद्यालयों और १५ शिक्षण संस्थाओं के ७५ छात्र नेताओं ने भाग लिया। शिक्षा मंत्री डा० राव एवं अनुदान आयोग के अध्यक्ष डा० कोठारी सम्मेलन की तीनों दिन की कार्यवाही में बराबर उपस्थित रहे।

शिक्षामंत्री की घोषणा

केन्द्रीय शिक्षा मंत्री ने इस बात पर चिन्ता प्रकट की है कि वर्तमान शिक्षा का ढाँचा अच्छा नहीं है। वर्तमान शिक्षा केवल परीक्षा तथा कक्षागत भाषणों तक ही सीमित रह गई है। शिक्षा का आदान-प्रदान एकांगी है।

डा० राव उदयपुर में राजस्थान विद्यापीठ में भाषण दे रहे थे। उन्होंने घोषणा की कि शिक्षा मंत्री होने के नाते मैं तीन कार्य करना चाहूँगा। (१) शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी से भारतीय भाषाओं में बदलने का कार्य सरल ढंग से करना, (२) शिक्षण व्यवस्था ऐसी हो जिससे बालक आत्म निर्भर बन सकें, (३) सामाजिक उत्तरदायित्व एवं नैतिक चरित्र का उत्तरोत्तर विकास हो। यदि यह व्यवस्था सफल हो गई तो भारतीय शिक्षा की कितनी ही समस्याएँ सुलझ जायेंगी।

शिक्षा का उद्देश्य स्पष्ट हो

राजस्थान के भूतपूर्व अवर शिक्षा निदेशक श्री अनिल बोर्दिया ने अजमेर में राजस्थान शिक्षक संघ द्वारा आयोजित अपने अभिनन्दन समारोह में भाषण देते हुए कहा कि यदि शिक्षकों में एकता रहेगी, उनका स्तर एकसा होगा और शिक्षा का उद्देश्य स्पष्ट होगा तो शिक्षा में क्रांतिकारी परिवर्तन सम्भव है और विद्यार्थियों में नैतिक मूल्यों में वृद्धि भी हो सकेगी। उन्होंने कहा कि शिक्षक समाज के निर्माता हैं इस दृष्टि से उनका उत्तरदायित्व अन्य वर्गों से अधिक है।

दिल्ली में विज्ञान व गणित की शिक्षा हिन्दी में

केन्द्रीय शिक्षा राज्यमंत्री श्री भक्त दर्शन ने १६ मई को राज्यसभा में बताया कि दिल्ली के उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में १९६९-७० से विज्ञान और गणित की शिक्षा हिन्दी माध्यम से देने के लिए दिल्ली प्रशासन के निर्देश से न तो छात्रों और न अध्यापकों को किसी तरह की कोई कठिनाई होगी।

जहाँ तक हिन्दी में अच्छी पाठ्य पुस्तकों का सवाल है श्री भक्त दर्शन ने कहा कि अगर वे पाठ्य-पुस्तकें दिल्ली में नहीं मिल रही हैं तो उत्तर प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान जैसी पड़ौसी हिन्दी भाषी राज्यों में वे पाठ्य पुस्तकें हिन्दी में उपलब्ध हैं। इसलिए पाठ्य पुस्तकों का अभाव नहीं होगा और इस सम्बन्ध में भी कोई कठिनाई नहीं होगी।

शैक्षिक प्रशासकों के प्रशिक्षण के लिए चौथी योजना में कॉलेज की स्थापना

केन्द्रीय शिक्षा मंत्री डा० वी० के० आर० वी० राव ने राज्यों और केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों के दो-दिवसीय सम्मेलन का उद्‌घाटन करते हुये घोषणा की कि शैक्षणिक प्रशासकों को प्रशिक्षण देने के लिये चौथी योजना में एक राष्ट्रीय स्टाफ कालिज की स्थापना की जावेगी। उन्होंने कहा कि यद्यपि यह प्रस्ताव काफी देर से विचाराधीन था किन्तु हाल ही में इसे योजना आयोग ने स्वीकार कर लिया है।

अन्य प्रशासनिक कार्यों की भाँति शिक्षा-प्रशासन में भी विशेष तकनीकी योजना तथा गतिशीलता की आवश्यकता है, धनाभाव के कारण फिलहाल इस कॉलेज को स्थापना में देर लगेगी अलबत्ता यह निश्चय किया गया है कि अगले वर्ष से ही शैक्षणिक प्रशासकों के लिये अल्पावधि प्रशिक्षण कार्यक्रम चालू कर दिये जायें।

भारतीय भाषाओं की पुस्तकों में आदान-प्रदान पर बल

केन्द्रीय शिक्षा मंत्री डा० राव ने १८ मई को नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित १०१वीं पुस्तक 'इण्डिया : ए जनरल सर्वे' का विमोचन करते हुये कहा कि भारत बहुभाषी देश है। ऐसी स्थिति में कोई भी जागरूक भारतीय केवल अंग्रेजी या हिन्दी या अपनी मातृभाषा की पुस्तकें पढ़कर सन्तुष्ट नहीं होगा, उसके लिये भारत की सभी भाषाओं की श्रेष्ठ पुस्तकें उसकी भाषा में जुटानी चाहिये।

उन्होंने कहा कि सद्भावना और भाईचारा बढ़ाने में भाषा और खानपान का बहुत महत्त्व होता है। राष्ट्रीय एकता मजबूत बनाने के लिये जरूरी है कि हर भाषा के लोगों के आत्म-सम्मान को रखा जाय और यह तभी सम्भव है जब विभिन्न भाषाओं के लेखकों और पाठकों में सम्पर्क हो। उन्होंने इस दिशा में ट्रस्ट के आदान-प्रदान की सराहना की।

डा० राव ने इसी अवसर पर कहा कि बच्चों के लिए पठनीय पुस्तकों का प्रकाशन होना चाहिये। इससे उनमें राष्ट्रीय एकता की भावना उत्पन्न होगी। बच्चों के लिये पुस्तकों का प्रकाशन वयस्कों से अधिक महत्त्वपूर्ण है।

मधुमालती का अंग्रेजी अनुवाद

लन्दन विश्वविद्यालय के प्राध्यापक तथा सूफी साहित्य के विशेषज्ञ डा० श्याममनोहर पाण्डेय तथा श्री वेटमैन, मंझन कृत 'मधुमालती' का अंग्रेजी अनुवाद यूनेस्को के लिये कर रहे हैं। यूनेस्को ने अपनी विशिष्ट पुस्तकों के प्रकाशन की योजना में इसे स्वीकृत किया है।

पं० बलदेव उपाध्याय पुरस्कृत

इस वर्ष राष्ट्रपति का संस्कृत पुरस्कार उत्तर प्रदेश में संस्कृत के महान् सेवी, लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान् आचार्य पं० बलदेव उपाध्याय, संचालक—संस्कृत अनुसन्धान वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय को प्राप्त हुआ है। भू० पू० राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन ने अपनी मृत्यु से १५ दिन पूर्व एक विशाल उत्सव का आयोजन किया जिसमें पं० बलदेव उपाध्याय जी का सम्मान करते हुए उन्हें रेशमी चादर भेंट की तथा रेशम पर लिखा हुआ प्रमाण-पत्र राष्ट्रपति ने स्वयं भेंट किया। पं० बलदेव उपाध्याय जी को यावज्जीवन तीन हजार रुपये की वार्षिक पेन्शन भी मिलेगी। सरस्वती के महान् आराधक के इस सम्मान पर हम हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त करते हैं।

पुस्तक समीक्षा

उबाल

लेखक—रांगेय राघव, प्रकाशक—राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृष्ठ—११५, मूल्य—३.०० ।

रांगेय राघव के प्रस्तुत उपन्यास में मानव-मात्र में पाई जाने वाली भलाई एवं बुराई का स्पष्ट विवेचन किया गया है। एक मनुष्य जो स्वभावतः भला है परिस्थितियों के वशीभूत हो कुछ समय के लिए उसे बुराई का भी सम्बल लेना पड़ सकता है परन्तु वह अपने स्वभाव को नहीं बदल सकता है।

'सत्यपाल' एक ऐसा ही पात्र है। वह धनी है परन्तु सुन्दर नहीं है। उसकी पत्नी चन्द्रा को उसकी अनुपस्थिति में उसका एक मित्र हरीश फुसलाकर ले जाता है और उसे गिरने के लिए बाध्य करता है। सत्यपाल निराश होकर 'औरत' से बदला लेने को प्रेरित होता है परन्तु तभी एक नर्तकी 'मनोरमा' उसे अपने चँगुल में फँसा लेती है। चन्द्रा की राख देखकर सत्य-पाल के अन्तर्निहित गुण उसे अवगुणों को त्याग देने पर जोर डालते हैं। तभी 'सरस्वती' नामक ग्रामीण परन्तु आदर्श लड़की को देखकर वह उसकी ओर आर्कषित हो जाता है। परन्तु मनोरमा अपने प्यार का अपमान सहन न करने के कारण सरस्वती के प्रेमी 'विलास' को फुसलाकर अपने साथ शहर ले आती है। सत्य-पाल सरस्वती के प्रेम की गहराई देखकर विलास को उसे देने का प्रण करता है और इसमें मनोरमा की हत्या भी कर देता है।

प्रस्तुत उपन्यास में सत्यपाल प्रमुख चरित्र है परन्तु उपन्यासकार उसे ठीक से प्रस्तुत नहीं कर पाया है। पात्रों का अकस्मात् हृदय-परिवर्तन निश्चय ही बीसवीं शती की वस्तु नहीं हो सकती है और न ही सरस्वती जैसी लड़की की झाँकी हमें आज के ग्रामों में आसानी से सुलभ हो सकती है। उपन्यासकार ने एक ग्राम की पृष्ठभूमि प्रस्तुत की है परन्तु इसमें उसे पूर्ण सफलता नहीं मिल सकी है। भारतीय ग्रामीण जीवन में इतनी स्वतन्त्रता दृष्टिगोचर नहीं होती जितनी उपन्यास के विलास, सरस्वती और सत्यपाल में देखने को मिलती है। कहीं-कहीं लेखक अस्वाभाविकता को भी नहीं बचा पाया है यथा—जिस ग्राम से जीवन (नौकर) हवाई जहाज से आता है वहीं से उसका मालिक सत्यपाल भयानक अंधड़ और वर्षा में पैदल दौड़ता चला आता है। यत्र-तत्र इसमें नाटकीयता का समावेश भी आवश्यकता से अधिक हो गया है। मनोरमा की हत्या के दृश्य पर तो 'हिन्दी सिनेमाओं' का प्रभाव परिलक्षित होता है।

भाषा परिष्कृत एवं सरल है परन्तु संवादों में यत्र-तत्र फारसी थियेटरों का सा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

संक्षेप में उपन्यास रोचक एवं पठनीय है परन्तु रांगेय राघव की ख्याति के अनुरूप इसमें गरिमा नहीं है।

●

हिन्दी साहित्य सम्मेलन

प्रयाग

द्वारा संचालित

- **प्रथमा**
- विशारद
- साहित्यरत्न
- वैद्यविशारद

आदि परीक्षाओं की

सं० २०२६ (१९६९)

के लिए

नयी संक्षिप्त विवरण पत्रिकाएँ

हमारे यहाँ से निःशुल्क उपलब्ध हैं

विद्यार्थी एवं केन्द्र-संचालक कृपया हमें लिखें—

[बड़ी विवरण-पत्रिका के लिए
२.५० का धनादेश भेजें]

क्या आपको ज्ञात है कि

※ हमारे यहाँ सम्मेलन के अतिरिक्त अन्य हिन्दी परीक्षाओं की भी पाठ्य-पुस्तकें तथा सहायक पुस्तकें उपलब्ध होती हैं।

※ एम० ए० हिन्दी तथा संस्कृत की सभी पाठ्य एवं सहायक पुस्तकें उचित मूल्य पर प्राप्त होती हैं तथा पुस्तक-सूची निःशुल्क भेजी जाती है।

※ हम सम्मेलन परीक्षाओं की पुस्तकों के प्रमुख विक्रेता हैं।

※ हमारे यहाँ पुस्तकें वी० पी० द्वारा तुरन्त भेजने की व्यवस्था है।

विनोद पुस्तक मन्दिर

की

प्रमुख विशेषता है

शीघ्र एवं सन्तोषजनक सेवा ◉

मधुर व्यवहार ◉

प्रत्येक पत्र का शीघ्र एवं समुचित उत्तर ◉

इसी कारण

प्रत्येक छात्र तथा अध्यापक को याद रहता है—

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

साहित्य, समालोचना

रीतिकालीन काव्य सिद्धांत : (शोध प्रबन्ध) सूर्य नारायण द्विवेदी, डिमाई, पृष्ठ ४३८, मूल्य १६.००
केशव सुधा : डा० विजयपाल सिंह, डिमाई, पृष्ठ १८६, मूल्य १०.००
हिन्दी साहित्य : एक परिवृत्त : डा० शिवनन्दन प्रसाद, डिमाई, पृष्ठ २७३, मूल्य ७.५०
हिन्दी साहित्य : एक ऐतिहासिक अध्ययन : डा० रतिभानुसिंह नाहर, डिमाई, पृष्ठ २००, मूल्य ३.००
साहित्य और इतिहास : सुखदा पाण्डेय, डिमाई, पृष्ठ २४६, मूल्य ६.००
भ्रमरगीत सार (सटीक) : (पुनर्मुद्रण) राजनाथ शर्मा, डिमाई, पृष्ठ ५०४, मूल्य १०.००
कामायनी की टीका : (पुनर्मुद्रण) डा० तारकनाथ बाली, क्राउन, पृष्ठ ४२९, मूल्य ४.००
भ्रमरगीत सार की टीका : (पुनर्मुद्रण) डा० शास्त्री एवं डा० शर्मा, क्राउन, पृष्ठ २९९, मूल्य ४.००
पालि साहित्य का इतिहास : (पुनर्मुद्रण) डा० राजकिशोर सिंह, क्राउन, पृष्ठ १७९, मूल्य २.५०
उद्धवशतक : (पुनर्मुद्रण) भारतभूषण सरोज, क्राउन, पृष्ठ १७४, मूल्य २.५०
कामायनी : (पुनर्मुद्रण) भारतभूषण सरोज, क्राउन, पृष्ठ ८२, मूल्य १.००
ग़बन : (पुनर्मुद्रण) राजनाथ शर्मा, क्राउन, पृष्ठ ९६, मूल्य १.००
हमारे कवि और लेखक : (पुनर्मुद्रण) फूलचन्द्र जैन 'सारंग', क्राउन, पृष्ठ २०१, मूल्य २.००

उपन्यास

अभियान : ताराशंकर बन्द्योपाध्याय, डिमाई, मूल्य ६.००
भूले-बिसरे चित्र : भगवतीचरण वर्मा, क्राउन, मूल्य १५.००
क्यों फँसे : यशपाल, डिमाई, पृष्ठ ११५, मूल्य ५.००
गिरते महल : गुरुदत्त, क्राउन, पृष्ठ ३१६, मूल्य ८.००
बालू के द्वीप : प्रेमेन्द्र मित्र, डिमाई, पृष्ठ ६१, मूल्य ४.००

विविध

भारतीय दर्शन भाग २ : डा० राधाकृष्णन, डिमाई, पृष्ठ ८०८, मूल्य ४०.००
सरल शिक्षा मनोविज्ञान : हंसराज भाटिया, क्राउन, मूल्य ४.५०
शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा : (पुनर्मुद्रण) भाई योगेन्द्रजीत, डिमाई, पृष्ठ ३९७, मूल्य ६.००
चित्रकूट : (पुनर्मुद्रण) त्रिवेदी रामानन्द शास्त्री, क्राउन, पृष्ठ १४३, मूल्य १.२५
जुही के फूल : (नाटक) डा० रामकुमार वर्मा, क्राउन, पृष्ठ १२८, मूल्य ३.५०

प्राप्ति-स्थान

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री डा० सरयू प्रसाद चौबे द्वारा लिखित
इण्टर कक्षाओं के लिए

माध्यमिक शिक्षाशास्त्र

माध्यमिक शिक्षा परिषद, उ० प्र० की इन्टरमीडिएट कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए शिक्षाशास्त्र विषय एकदम नया पड़ता है। क्योंकि इससे पहिले वे इस विषय से निरन्तर अपरिचित होते हैं। विद्यार्थियों की इस कठिनाई पर पूरा-पूरा ध्यान देते हुए इस पुस्तक की रचना निर्धारित पाठ्यक्रमानुसार की गई है और सभी विषयों को अति सरल भाषा में समझाया गया है ताकि विचारों की गूढ़ता में उनके समझने की प्रक्रिया कहीं उलझ न जाय।

पुस्तक दो खण्डों में विभाजित है। प्रथम खण्ड में 'माध्यमिक शिक्षा सिद्धान्त और शैक्षिक विकास' का विवेचन है। इस विवेचन में प्रथम विषय सम्बन्धी सभी आवश्यक तत्वों पर प्रथक-प्रथक अध्याय विस्तारपूर्वक लिखे गए हैं। सर्वत्र यह स्मरण रखा गया है कि विद्यार्थी को विषय का अच्छी तरह एवं सरलता से बोध हो जाय।

पुस्तक के द्वितीय खण्ड में इण्टर कक्षाओं के लिए निर्धारित 'शिक्षा मनोविज्ञान' सम्बन्धी तत्वों की सविस्तार व्याख्या की गई है। इस खण्ड में इस प्रश्नपत्र से सम्बन्धित सभी अंगों का पूर्ण, विस्तृत विवेचन सरल भाषा में किया है। प्रत्येक शीर्षक का स्वतन्त्र अध्याय दिया गया है।

पुस्तक में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा स्वीकृत शब्दावली से लिए गए हैं।

मूल्य : सात रुपये पचास पैसे

●

और, दोनों प्रश्नपत्रों के लिए प्रथक-प्रथक
पुस्तकें भी उपलब्ध

माध्यमिक शिक्षा सिद्धान्त और शैक्षिक विकास ◉
माध्यमिक शिक्षा मनोविज्ञान परिचय ◉

प्रत्येक का मूल्य ४.००

'शिक्षा-समस्या' विशेषांक

विद्वानों व पाठकों की दृष्टि में

आपने भारत की एक ज्वलंत समस्या को लेकर देश के विभिन्न क्षेत्रों के शिक्षा-मनीषियों एवं शिक्षाशास्त्रियों के विचारों की शृंखला को विशेषांक में पिरोने का जो सद्य प्रयास किया है—वह वस्तुतः बहुत ही सराहनीय है। वर्तमान युग में इस प्रकार के साहित्य की बहुत आवश्यकता है। मुझे विश्वास है कि विशेषांक में प्रस्तुत विचार, शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने वाले सभी महानुभावों एवं विद्यार्थियों के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध होंगे।

—डा० मण्डन मिश्र

सचिव एवं निदेशक—श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली

शिक्षा-समस्या विशेषांक आपके अन्य पूर्ववर्ती विशेषांकों की तरह ही एक बहुमूल्य व संग्रहणीय कृति है। आपने गहन निष्ठा व अटूट श्रम के साथ शिक्षा की समस्या को उसके प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण पक्षों के साथ विचार-जगत् के सामने प्रस्तुत किया है। सामग्री ठोस व प्रामाणिक है। सम्पादन सुरुचिपूर्ण ढंग से हुआ है। शिक्षा-क्षेत्र के इतने अधिकारी विद्वानों का सहयोग आप पा गए, यह सचमुच आपके उद्देश्य की उच्चता व मानवता का ही द्योतक है। हमारी शिक्षा-समस्या पर यह सामग्री हमें अवश्य चिन्तन-मनन के लिए बाध्य करेगी। मैं आपके भावी प्रयासों की सफलता की भी अग्रिम शुभ कामनाएँ भेजता हूँ।

—डा० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल

वल्लभविद्यानगर (गुजरात)

'साहित्य-परिचय' का **शिक्षा-समस्या विशेषांक** तथा उसके बाद का अंक दोनों मिले। मैंने प्रायः सब लेखों को पढ़ा है। पिछले अंक के दोनों लेखों को भी। इनसे मैं बड़ा प्रभावित हुआ। जिन दृष्टियों से शिक्षा की समस्याओं पर विचार किया गया है वे सर्वतोमुखी हैं। शिक्षाधिकारियों को, विद्यार्थियों को इनसे लाभ उठाना चाहिए। आपके इस सत्प्रयत्न के लिए साधुवाद।

—लक्ष्मीनारायण सुधांशु

पटना

शिक्षा-समस्या विशेषांक प्राप्त हुआ। सम्यक् अध्ययन के पश्चात् निष्कर्ष पर पहुँचा कि वस्तुतः यह आपका परिश्रम शिक्षा-जगत् के लिए एक अनुपम देन है। सुप्रसिद्ध लेखकों द्वारा लिखित निबन्ध भी स्तुत्य हैं।

—शिवराज छंगाणी

बीकानेर

शिक्षा-समस्या विशेषांक प्राप्त हुआ। अंक अत्यन्त रोचक है। आपका प्रयास निश्चय ही प्रशंसनीय है। शिक्षा के क्षेत्र में आज ऐसे विशेषांकों की आवश्यकता है। काश ! आप ऐसे अंक हर माह प्रकाशित कर सकते। प्रायः सभी लेख अच्छे स्तर के हैं। ईश्वर आपको शक्ति दे कि भविष्य में ऐसे अंक और प्रकाशित कर सकें।

—शमसुद्दीन

रायपुर

मेरा अपना ख्याल है कि जिस शिक्षा-संस्था, पुस्तकालय में इस विशेषांक की एक प्रति नहीं है, वह सूना है। आपका परिश्रम सराहनीय है। बधाई स्वीकारें।

—म० च० मिश्र 'विधु'

उत्तरकाशी

बिना टिकट प्रेषण करने का प्रमाण-पत्र संख्या [illegible]

एक विशिष्ट प्रकाशन

संस्कृत साहित्य की प्रवृत्तियाँ

—सात रुपये पचास पैसे—

"मुझे यह देखकर प्रसन्नता हुई कि आयुष्मान् डा० जयकिशनप्रसाद ने 'संस्कृत साहित्य की प्रवृत्तियाँ' नामक पुस्तक लिखी है। संस्कृत साहित्य संसार के साहित्यों में बहुत ही महत्त्वपूर्ण साहित्य है। हजारों वर्षों के निरंतर प्रवहमान मानव चिन्तन का विराट स्रोत संस्कृत साहित्य, संसार के सभी साहित्य प्रेमियों को बरबस आकृष्ट करता है। ऐसे साहित्य का अधिक से अधिक अनुशीलन वांछनीय है। आयुष्मान् जयकिशन जी ने गम्भीर अध्ययन और मनन के बाद अपनी पुस्तक लिखी है। मुझे आशा है कि साहित्य के प्रेमी इस पुस्तक का स्वागत करेंगे।" (भूमिका से)

—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी

"थोड़े में ही विशाल साहित्य का परिचय देने का प्रयास स्तुत्य ही नहीं, सफल भी है। पूरा विश्वास है कि इस ग्रन्थ के अध्ययन से संस्कृत साहित्य का आवश्यक परिचय छात्रों को निश्चयेन हो जायगा।"

—पं० बलदेव उपाध्याय
संचालक, अनुसन्धान संस्थान,
वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

भूमिका लेखक
पद्मभूषण डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी
रेक्टर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

लेखक
डॉ० जयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल
प्राध्यापक—संस्कृत विभाग,
राजा बलवन्तसिंह कॉलेज, आगरा

तथा
आचार्य वेणीमाधव सदाशिव शास्त्री मुसलगाँवकर

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा.

प्रकाशक एवं मुद्रक : विनोदकुमार [illegible] हिन्दी [illegible] के हेतु [illegible] प्रिंटिंग प्रेस, आगरा–२ में मुद्रित

साहित्य-परिचय

राष्ट्रभाषा और साहित्य की गतिविधियों का परिचायक पत्र

जुलाई १९६९

प्रायः देखा यह गया है कि समस्या बहुत छोटी होती है पर कभी अधिकारियों के अधिकार की मादकता से अथवा किसी राजनीतिक दल के अनुयायियों की कृपा से वह उग्र रूप धारण कर लेती है और ये लोग विद्यार्थी और अध्यापकों को तराजू के दो पलड़ों के स्थान पर दो विरोधी दलों में विभाजित कर देते हैं। यह सब नहीं होना चाहिए। विद्यार्थियों को अपने और अपने से सीधे सम्बन्ध रखने वालों के बीच किसी तीसरे की मध्यस्थता तो दूर, किसी प्रकार का हस्तक्षेप या ऊपर से नेक लगने वाली सलाह भी नहीं माननी चाहिए। आपने भी देख लिया होगा कि इनकी सहानुभूति मौखिक होती है, यह लड़ाना जानते हैं मिलाना नहीं। इनमें से कुछ तो आपको तोड़-फोड़ और अहिंसात्मक आन्दोलन की भी सलाह देने की योग्यता रखते हैं, पर क्या विद्यालय या महाविद्यालय ही इसके लिए सबसे उपयुक्त स्थान बच रहा है? इन राजनीतिक दलों को विद्यार्थियों के हित का यदि इतना ध्यान है तो क्यों नहीं यह सीधे-सीधे इसे अपने दल का प्रश्न बनाकर अहित करने वाले अधिकारियों से झगड़ा मोल ले लेते और उस प्रश्न का अपनी नीति के अनुसार कोई अच्छा हल निकाल लेते हैं? विद्यार्थियों को आगे करके पीछे से बढ़ावा देना उनकी जवानी के उत्साह का दुरुपयोग है और उनका अनुचित मार्गदर्शन है।

—डा० हरिहरनाथ टण्डन
सैण्ट जॉन्स कॉलेज, आगरा

साहित्य-परिचय

[शिक्षा और साहित्य की प्रगति का परिचायक पत्र]

वर्ष ४ : अंक ७

जुलाई, १९६९

सम्पादक

विनोदकुमार अग्रवाल

एम. ए., साहित्यरत्न

प्रबन्ध सम्पादक

सतीशकुमार अग्रवाल

स्वामित्व

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–२

मूल्य

एक प्रति ०.२५ : वार्षिक ५.००

साहित्य-परिचय

डॉ० रांगेय राघव मार्ग

आगरा–२

फोन : ७६४८६

विश्वविद्यालयों में मुकदमेबाजी

इधर भारतीय विश्वविद्यालयों में मुक़दमेबाजी एक आम बात हो गई है। इसके मूल में प्रायः अध्यापकों और प्रोफेसरों की नियुक्तियों की समस्याएँ रहती हैं। प्रयाग, लखनऊ, बनारस और जयपुर में हिन्दी विभागों में जो मुकदमेबाजी हुई है उसका विश्लेषण किया जाय तो यही परिणाम निकलता है कि किसी एक व्यक्ति की किसी पद पर प्रतिष्ठा हो जाती है तो दूसरा व्यक्ति जो पद का आकांक्षी रहता है शिकस्त खाकर अदालत की शरण लेता है। न्याय पाने के लिए अदालत की शरण में जाना हम बुरी बात नहीं समझते यद्यपि इसके पक्ष और विपक्ष में अनेक तर्क दिये जा सकते हैं और दिये जाते हैं। किन्तु मुकदमेबाजी तो विश्वविद्यालयों के भयानक रोग का एक लक्षण मात्र है। वह रोग है बेईमानी तथा अध्ययन-अध्यापन, पठन पाठन तथा बौद्धिक उन्नति की ओर से उदासीनता। इस रोग के लक्षण—अड्डेबाजी, नेतागीरी, गलित राजनीति और मुकदमेबाजी के रूप में प्रकट होते हैं।

विश्वविद्यालयों में बेईमानी कई रूपों में हैं। कुछ विद्वान ऐसे हैं जो पठन-पाठन और विद्वत्ता के क्षितिज को आगे बढ़ाना अपना धर्म समझते हैं। बाकी लोग तिकड़म, गन्दी राजनीति और खुशामद के बल पर तरक्की कर जाते हैं। ऐसे ही लोगों की संख्या अधिक है। हमारे कुछ प्रोफेसर भी ऐसे हैं जो व्यक्तिगत सम्बन्धों को अधिक महत्त्व देते हैं और नियुक्तियों में योग्यता से अधिक अन्य चीजों को प्राथमिकता दे देते हैं। एक व्यक्ति दो विश्वविद्यालयों से बहिष्कृत हो जाता है तब भी यह चेष्टा की जाती है कि उसको कहीं और चिपका दिया जाय। जो लोग इसके बारे में जानते हैं वह यह भी खूब जानते हैं कि जो व्यक्ति दो जगहों से बहिष्कृत हुआ हो उसकी योग्यता का क्या रूप है। पर कौन साहसपूर्वक कहे कि ऐसे लोगों के समर्थकों की सामाजिक और संगठित रूप से निन्दा की जाय। ऐसे लोग समर्थ हैं, प्रभावशाली हैं और अपने विरोधियों की जड़ उखाड़ने की कोशिश करते हैं। किन्तु हमारे बुद्धिजीवियों में यह ईमानदारी नहीं है कि ऐसी निरंकुशता का विरोध डट कर कर सकें। कुछ लोग बेईमानी करते हैं और कुछ लोग बेईमानी पीते हैं। मुकदमे बाजी का एक प्रमुख कारण यह भी है।

[शेष पृष्ठ २२ पर]

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
का
नवीन प्रकाशन

प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री डा० सरयू प्रसाद चौबे द्वारा लिखित
इण्टर कक्षाओं के लिए

माध्यमिक शिक्षाशास्त्र

माध्यमिक शिक्षा परिषद, उ० प्र० की इन्टरमीडिएट कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए शिक्षाशास्त्र विषय एकदम नया पड़ता है। क्योंकि इससे पहिले वे इस विषय से एकदम या सर्वथा अपरिचित होते हैं। विद्यार्थियों की इस कठिनाई पर पूरा-पूरा ध्यान देते हुए इस पुस्तक की रचना निर्धारित पाठ्यक्रमानुसार की गई है और सभी विषयों को अति सरल भाषा में समझाया गया है जिससे विचारों की गूढ़ता में उनके समझने की प्रक्रिया कहीं उलझ न जाय।

पुस्तक दो खण्डों में विभाजित है। प्रथम खण्ड में 'माध्यमिक शिक्षा सिद्धान्त और शैक्षिक विकास' का विवेचन है। इस विवेचन में विषय-सम्बन्धी सभी आवश्यक तत्वों पर पृथक-पृथक अध्याय विस्तारपूर्वक लिखे गए हैं। सर्वत्र यह ध्यान रक्खा गया है कि विद्यार्थी को विषय का अच्छी तरह एवं सरलता से बोध हो जाय।

पुस्तक के द्वितीय खण्ड में इण्टर कक्षाओं के लिए निर्धारित 'शिक्षा मनोविज्ञान' सम्बन्धी तत्त्वों की सविस्तार व्याख्या की गई है। इस खण्ड में इस प्रश्नपत्र से सम्बन्धित सभी अंगों का पूर्ण, एवं विस्तृत विवेचन सरल भाषा में किया गया है। प्रत्येक शीर्षक के लिए स्वतन्त्र अध्याय दिया गया है।

पुस्तक में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा स्वीकृत शब्दावली से लिए गए हैं।

मूल्य : सात रुपये पचास पैसे

●

और, दोनों प्रश्नपत्रों के लिए पृथक-पृथक
पुस्तकें भी उपलब्ध

माध्यमिक शिक्षा सिद्धान्त और शैक्षिक विकास

माध्यमिक शिक्षा मनोविज्ञान परिचय

प्रत्येक का मूल्य ४.००

छात्रों की समस्याएँ

कैप्टेन आई० बी० सिंह
डी० वी० कॉलेज, उरई

छात्र समाज का सबसे अधिक जागरूक किन्तु उपेक्षित प्राणी है। इसे हम सभी अनुभव करते हैं पर व्यक्त नहीं कर सकते। 'अनुशासन-हीनता' के कृत्रिम 'ब्रह्म-अस्त्र' के जाल से हम इस महान शक्ति को अधिक समय तक भ्रमात्मक स्थिति में नहीं रख सकते। यदि समय रहते सत्ताधारी या समाज—छात्रों की समस्याओं को नहीं समझता तो पवन की गति से भी तीव्र बढ़ने वाले छात्रों की सहनशीलता का बाँध टूट जायगा और राष्ट्र में उथल-पुथल मचाने वाली इस महान शक्ति को दबाने की कल्पना निरर्थक सिद्ध होगी। अधिक समय तक 'अनुशासन-हीनता' का आरोप लगाकर हम छात्रों की उपेक्षा नहीं कर सकते हैं। हमारे छात्रों को 'अनुशासन-हीन' कहने वाला समाज का वह वर्ग है—जिसने 'स्वतन्त्रता-संग्राम' के बाद समाज में भ्रष्टाचार फैलाया है और समाज से सबसे 'अधिक' भौतिक लाभ उठाया है। छात्रों के त्याग एवं बलिदान को हम विस्मृत कर चुके हैं। आज का छात्र जब अपनी 'कुर्बानियों' को वापस माँगता है तो—उसे हम 'अनुशासन-हीन' कहते हैं। उसकी क्या समस्याएँ हैं—इस पर विचार करने के लिए किसी के भी पास समय नहीं है।

छात्रों की समस्याओं को हर एक व्यक्ति जानता और भली प्रकार से समझता भी है। पर सत्य तो यह है कि उसका निराकरण कोई भी नहीं करना चाहता है। छात्र को तो इस प्रकार से फुसलाकर टालने का प्रयास किया जाता है जैसे मचलते हुये बालक को माता-पिता 'चाकलेट' या 'कम्पट' देने का लालच दिखाकर फुसलाते हैं।

'छात्र राष्ट्र के भावी कर्णधार हैं'— 'इन्हीं में गांधी, नेहरू, सुभाष एवं पटेल छिपे हैं'—इन रंगी छुही बातों को अब छात्र अच्छी प्रकार समझने लगा है। छात्रों के 'संवेगों से' स्वतन्त्रता मिलने के पहले से सब 'राजनीतिज्ञ' अनुचित लाभ उठाते चले आ रहे हैं। इधर दो दशाब्दियों में तो उपर्युक्त लिखित कथन मात्र से ही 'राजनीतिज्ञ'—छात्रों को प्रसन्न कर अपनी स्वार्थ लिप्सा की पूर्ति करते चले आ रहे हैं तथा छात्रों के उज्ज्वल भविष्य के प्रति सतत् उदासीन रहे हैं। उबलते हुए खून को सान्त्वना देने के लिए उपर्युक्त शब्द काफी दिनों तक पर्याप्त रहे हैं। पर अब छात्र इस 'मनोवैज्ञानिक-भाषा' को भी अच्छी तरह से समझने लगा है। जब तक हम उसकी समस्याओं का निराकरण नहीं करते, छात्र—फ्रांस एवं इण्डोनेशिया के उदाहरण प्रस्तुत करता रहेगा।

स्वाधीनता के युद्ध में छात्रों की 'पूर्णाहुति' अविस्मरणीय है। समाज के कतिपय लोग जो सम्भवतः स्वतन्त्रता-संग्राम की लपटों से बहुत ही दूर रहे हैं, आज बुद्धि-कौशल से ऐसे स्थानों पर आधिपत्य जमा बैठे हैं, जहाँ बैठकर मनमाना धन कमा रहे हैं। हमारे छात्रों की समस्याओं पर विचार करने की बात तो दूर रही—पुलिस अधिकारियों द्वारा छात्रों पर लाठी, अश्रुगैस और गोलियाँ चलते देख आनन्द का अनुभव करते हैं। सत्ताधारी भी यह नहीं सोच पा रहे हैं कि बेचारे छात्रों ने आतताई अंग्रेजों की गोलियाँ क्यों हँसते-हँसते अपने सीने में खाई थीं। क्या इसीलिए कि स्वतन्त्र देश की सरकार भी लाठियों, अश्रुगैसों और गोलियों का प्रयोग इन्हीं छात्रों के लिए करेगी। राष्ट्रीय एकता की भावना, सामाजिक दायित्व की भावना तथा सृजनात्मक कुशलता छात्रों में विकसित हो—इस पर स्वप्न में भी किसी ने गम्भीरता-पूर्वक विचार करने का कष्ट नहीं किया।

स्वतन्त्रता संग्राम के समय छात्रों की जो अनेकों समस्याएँ हम सबको—इन्हें उत्तेजित करने के लिए दिखाई पड़ती थीं वे तो हम सब भूल गए—और एक पक्षीय न्याय यही दृष्टिगोचर होता है कि अपनी

'प्रचार-एजेन्सियों' द्वारा 'अनुशासन-हीन' कहकर उनके 'मनोबल' को गिरा दिया जाय। इनके 'मनोबल' को गिराने से राष्ट्र का 'मनोबल' गिरेगा। अब अधिक दिनों तक हम छात्रों की समस्याओं की उपेक्षा नहीं कर सकते। उन पर हमें विचार करना ही होगा। राष्ट्र के इन भावी कर्णधारों की समस्याएँ एक दो नहीं अपितु अनेक हैं। यथा—

(१) उद्देश्यहीन शिक्षा छात्रों की समस्या है। (२) शिक्षा का व्यवहारिक जीवन से बहुत ही कम सम्बन्ध है। (३) शिक्षा पद्धति अमनोवैज्ञानिक है। (४) समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार का विद्यार्थियों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। (५) राजनैतिक नेता अपने स्वार्थों के लिए छात्रों को बरगलाते हैं। (६) छात्रों की दलगत राजनीति स्वयं उनकी एक समस्या है। (७) खर्चीली शिक्षा और छात्रों की निर्धनता छात्रों की समस्या है। (८) 'हरहिं शिष्य-धन शोक न हरहीं.....' छात्रों की एक एक समस्या है। (९) उचित शिक्षण व्यवस्था का अभाव भी छात्रों की एक समस्या है। (१०) शिक्षा का निम्न-स्तर, उचित निर्देशनों का अभाव। (११) घर, पड़ोस तथा विद्यालयों में उचित वातावरण का अभाव। (१२) योग्य अध्यापकों का अभाव। (१३) संकुचित पाठ्यक्रम, तकनीकी शिक्षा का अभाव, व्यावसायिक शिक्षण की कमी, व्यावहारिकता के ज्ञान की शिक्षा का अभाव एवं छात्र का अन्धकारमय भविष्य। (१४) बेरोजगारी की समस्या तथा अध्ययन के बाद जीविका की समस्या। (१५) दोषपूर्ण-परीक्षा प्रणाली। (१६) छात्रों के प्रति सरकार का उदासीनता पूर्ण व्यवहार। (१७) छात्रों पर अत्यधिक व्यर्थ सामाजिक दबाव। (१८) पारिवारिक समस्याएँ (१९) समान सुविधाओं का अभाव। (२०) शिक्षा के माध्यम की समस्या। (२१) छात्रों को विद्यालयों में स्वशासन के पूर्ण अधिकार न मिलना। (२२) अध्यापक-छात्र समस्याएँ। (२३) विद्यालयों में छात्रों के बैठने की समुचित व्यवस्था का न होना। (२४) शारीरिक, नैतिक तथा चारित्रिक शिक्षा-व्यवस्था का अभाव। (२५) छात्रों पर अनियमित प्रतिबन्ध। (२६) बाल-अपराधीपन की समस्याएँ तथा (२७) सत्ताधारियों एवं समाज द्वारा छात्रों को उचित-स्वीकृति न मिलना और युग का प्रभाव जहाँ मानव स्वयं विस्मित है आदि-आदि।

हम निःसंकोच कह सकते हैं कि छात्रों की उक्त समस्याओं पर किसी ने भी सहृदयता-पूर्वक विचार नहीं किया। सहानुभूति और स्नेह के स्थान पर सत्ताधिकारियों ने भी शक्ति से ही काम लिया। 'लालफीताशाही' के अन्तर्गत छात्रों में वे केवल असंतोष ही उत्पन्न कर सके, जब कि उनके कोमल एवं स्नेहपूर्ण हृदयों को सरलता एवं निस्वार्थ व्यवहार से कल्याण-मय बनाया जा सकता है।

छात्रों के सांवेगिक, सामाजिक तथा मानसिक विकास की बातें तो दूर रहीं—उनकी प्रेरणा, उनकी रुचि, उनके ध्यान, उनकी थकान, उनकी चिन्ताएँ, उनकी कल्पना शक्ति, उनकी स्मरण शक्ति, उनकी विचार शक्ति, उनकी तर्क शक्ति तथा उनकी भग्नाशाओं की समस्याओं के लिए किसने और कौन-कौन से क्रियात्मक कदम उठाये हैं? आँकड़ों से पुस्तकें भरी मिलेंगी, पर हमारे छात्रों के लिए सिवा टूटी-फूटी स्थिति में—अंग्रेजों के समय से भी बदतर विद्यालयों की संख्या बढ़ाने के अतिरिक्त न तो सरकार ने छात्रों के लिए कुछ किया है, और न हमारी सामाजिक संस्थाओं ने ही।

मान्यता प्राप्त-विद्यालयों में मैनेजर/सेक्रटरी/प्रेसीडेण्ट ने विद्यालयों को 'पसरठ' या 'परचूनी' की दूकान समझ रक्खा है। जहाँ उन्होंने प्रधानाचार्यों को उन दूकानों का वैतनिक प्रबन्धक नियुक्त कर, अच्छी कमाई का साधन निकाल लिया है। इन विद्यालयों में विद्यार्थियों से फीस तो हर चीज की ली जाती है—पंखे की फीस से लेकर, खेलकूद और मनोरंजन तक की फीस वसूल कर ली जाती है। खेलकूद के नाम पर एक आध गेंद और टूटे-फूटे बल्ले नजर आते हैं और पंखों के नाम पर 'हवा खाइए' का साइन बोर्ड नहीं लगाना पड़ता। विद्यालय की टूटी-फूटी दीवालें स्वयं प्रचार करती दृष्टिगत होती हैं। फिर उनको शिक्षा देने वाले उनके गुरु-गण—जिन्हें केवल साठ रुपये मिलते हैं पर एक सौ साठ पर हस्ताक्षर करने पड़ते हैं—वहाँ क्या वे 'वेद-वाक्य' बोलेंगे?

एक विद्यालय का एक छोटा-सा उदाहरण है। 'पेनल-इन्सपेक्शन' के समय जब प्रधानाचार्य के साथ 'पेनल' के सभी सदस्य भूगोल-अध्यापक के कक्ष के पास पहुँचे तो अध्यापक के पढ़ाने के ढंग में एक

परिवर्तन दृष्टिगत हुआ । अध्यापक 'सूर्य एवं पृथ्वी के भ्रमण' के विषय को पढ़ा रहा था । अध्यापक ने पेनल के सदस्यों को देखते ही 'सूर्य' को पृथ्वी के चारों ओर घुमाना' शुरू कर दिया । 'पेनल' के सभी सदस्यों को तो अचम्भा हुआ ही—छात्र भी विस्मय में पड़ गए । 'पेनल' के एक वरिष्ठ सदस्य ने विनम्रता पूर्वक उस अध्यापक को याद दिलाया कि "पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है ।" अध्यापक ने कहा—"माननीय सदस्यो ! साठ रुपए में तो सूर्य ही पृथ्वी के चारों ओर घूमेगा । पूरा ग्रेड दिलाइए—भूगोल अध्यापक पृथ्वी को सूर्य के चारों ओर घुमाना जानता है ।"

आज छात्रों की समस्याएँ केवल छात्रों की ही समस्याएँ नहीं है । उनके शिक्षक भी समस्याओं के जाल में आबद्ध हैं । छात्र समस्याएँ-गुरु समस्याओं से मिश्रित हैं । भूखा अध्यापक जब छात्रों के सामने 'आदर्श रूप में' आता है तो छात्र उसे देखकर 'कल्पना-सागर' में डूब जाता है । समाज के सर्वाधिक योग्यता-प्राप्त व्यक्ति की यह दुर्दशा कैसी ? जब यह 'अपना-पेट' नहीं भर सकता तो हमें शिक्षा क्या देगा । फिर वही शिक्षा तो यह हमें भी दे रहा है जिसे पाकर आज यह अस्थि-पंजर लिए हमारे सामने खड़ा है । विद्यार्थी का मानस आन्दोलित हो उठता है । अपने गुरु की दयनीय दशा की छाप उसके मन को कचोटती रहती है । वह बेचैन हो उठता है—वेदों ने जिस शिक्षक को 'गांतु-वीत' (मार्ग दर्शक) कहा है—उसी की यह दशा ? छात्र का मन विक्षुब्ध हो उठता है ।

छात्रों में निराशा की भावना ने घर कर लिया है । माता-पिता ही नहीं उसके पड़ोसी भी छात्र से यह आशा करते हैं कि वह एक दिन उच्चपद पर आसीन होगा । पर जिन उच्चपदों की कल्पना उनके अभिभावक कर रहे हैं वे हैं केवल 'कुछ चाटुकार एवं अवसरवादियों' के लिए । यह छात्र भली प्रकार समझ रहा है । छात्र जब नेहरू, सुभाष, पटेल और तिलक की कल्पना कर 'इन्क्लाब और जिन्दाबाद' के गगन-भेदी नारे लगाता है तो उसे 'अनुशासनहीन' कहा जाता है । बुजुर्ग उसे बच्चा समझकर उसकी समस्याओं को टाल देते हैं । 'माता-पिता स्कूल जाओ' बस—इतने तक ही सम्बन्ध रखते हैं । अधिकारी—'अनुशासित बनो' के उपदेश देकर छुट्टी लेना चाहते है और गुरुजन उन्हें वह शिक्षा देते हैं जो उनकी फाइलों में ही चिपटी रह जाती है । जो स्थिति विद्यालयों की स्वतन्त्रता पाने के पूर्व थी वही अब भी बनी है । आचार्य रवीन्द्रनाथ टैगोर ने बताया था कि विद्यालय फैक्ट्रियों से भी बदतर हैं । इस सम्बन्ध में उनके विचार दृष्टव्य हैं—"इस देश में जिसे हम स्कूल समझते हैं वह केवल शिक्षा देने का एक कारखाना है । साढ़े दस बजे घण्टी बजती है और कारखाना खुलता है—कल चलती है और साथ ही अध्यापक का मुँह भी चलता है । चार बजे कारखाना बन्द हो जाता है और साथ ही अध्यापक रूपी कल भी अपना मुँह बन्द कर देता है । छात्रगण कल से प्राप्त विद्या के दो-चार पन्ने रटकर घर लौट जाते हैं ।"

छात्र जब उन तपोवनों एवं सत्य के अन्वेषक के विवरण पढ़ता है और सत्य की प्राप्ति के लिये छात्र जिस पवित्र वातावरण में रहते थे—उसकी कल्पना करता है तो उसके सामने—आज की झूठी नैतिकता का वातावरण नृत्य करने लगता है । सरल एवं सहज जीवन की उन कोरी स्लेटों पर आत्म पीड़ित ढोंगियों का बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है । आज छात्रों के सामने शिक्षित समाज की पुरानी परम्पराएँ, माँ-बाप की प्रत्याशाएँ स्वयं अध्यापकों का प्रशिक्षण तथा विद्यालयों के विधान आदि सभी समस्याएँ हैं ।

आज की सामाजिक परिस्थितियों ने विद्यार्थियों में भग्नाशा को जन्म दिया है । छात्र बड़ी-बड़ी आशाएँ लेकर घर से विद्यामन्दिर की ओर जाता है पर उसके लक्ष्यों की पूर्ति कहीं दृष्टिगत नहीं होती तो वह उस भग्नाशा का शिकार बन जाता है जो विपरीत परिस्थितियों के कारण उसे मिलती है । अथक परिश्रम करने के पश्चात् भी उसके हाथ कुछ भी नहीं लगता । आज के छात्र का मस्तिष्क असुरक्षा (इन्सिक्योरिटी) की भावना का शिकार बन गया है । छात्र को किसी की भी 'झूठे-उपदेश' भरी बात अब अच्छी नहीं लगती । वह अपने हाथ-पैरों को नोच डालना चाहता है, पर खून में तेजी और गर्मी उसे अपने ही तक सीमित न रखकर—उसे हिंसात्मक कार्यों की ओर प्रेरित कर देती है और छात्र 'इन्क्लाब और जिन्दाबाद' के नारों की दुनियाँ में घूमने लगता है । आज राष्ट्र के उत्थान के लिए छात्रों की समस्याओं पर हमें गम्भीरता-पूर्वक विचार करने की आवश्यकता है ।

विश्वविद्यालय स्तर के हमारे महत्वपूर्ण प्रकाशन

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा के प्राप्य प्रकाशन

● प्रशिक्षण

भारतीय शिक्षा का इतिहास (चतुर्थ संस्करण, १९६८)	जौहरी एवं पाठक	१०.००
An Outline of Indian Education	,,	9.00
भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ (१९६९)	,,	९.००
भारतीय शिक्षा की सामयिक समस्याएँ (१९६९)	चौधरी एवं उपाध्याय	९.००
भारतीय शिक्षा के आयोग [कोठारी कमीशन सहित)	पाठक एवं त्यागी	६.००
शिक्षा आयोग [कोठारी कमीशन] (द्वितीय संस्करण, १९६८)	,,	५.००
शिक्षा समस्या विशेषांक (१९६९)	[साहित्य-परिचय]	५.००
शिक्षा मनोविज्ञान (सातवाँ संस्करण, १९६९)	डा. एस. एस. माथुर	१२.५०
Educational Psychology (Third Edition, 1968)	Dr. S. S. Mathur	16.00
शिक्षा के सामान्य सिद्धान्त (१९६८)	पाठक एवं त्यागी	९.००
शिक्षा सिद्धान्त (शिक्षा के दार्शनिक तथा सा० आधार, १९६९)	डा. एस. एस. माथुर	७.००
शिक्षण कला (१९६८)	,,	७.००
सफल शिक्षण कला (१९६९)	पाठक एवं त्यागी	७.००
कक्षाध्यापन, पाठ संकेत निर्माण एवं विशिष्ट विधियाँ (१९६९)	भाई योगेन्द्रजीत	५.००
Basic Principles of Education	Johri & Pathak	12.50
विद्यालय प्रशासन एवं संगठन (१९६९)	एस. पी. सुखिया	६.००
शैक्षिक एवं विद्यालय प्रशासन (१९६७)	भाई योगेन्द्रजीत	६.००
स्वास्थ्य शिक्षा (पाँचवाँ संस्करण, १९६९)	डा. जी. पी. शेरी	७.००
Health Education	Dr. S. P. Chaube	10.00
शिक्षा में क्रियात्मक अनुसन्धान (१९६९)	के. पी. पाण्डेय	४.००
शिक्षा और मनोविज्ञान में सरल सांख्यिकी (१९६९)	,,	४.००
शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन (१९६७)	रामपालसिंह एवं राधावल्लभ उपाध्याय	६.००
शैक्षिक पर्यवेक्षण के मूल तत्व (१९६९)	पारसनाथ राय	५.००
शिक्षा दर्शन (एम. एड्. तथा एम. ए. विद्यार्थियों के लिए).	डा. रामशकल पाण्डेय	८.००
शिक्षा के दार्शनिक सिद्धान्त (१९६९)	पाठक एवं त्यागी	७.००
सोवियत जनशिक्षा का स्वरूप	प्रो. नरेन्द्रसिंह चौहान एवं राजेन्द्रपालसिंह	४.००
इंग्लैंड की शिक्षा प्रणाली	एच. एन. सिंह	४.५०
महान पश्चिमी शिक्षा-शास्त्री	डा. रामशकल पाण्डेय	५.००
अन्य भाषा शिक्षण	डा. महावीरसरन जैन	४.००

नैतिक-शिक्षा शिक्षण (१९६९)	के. सी. मलैया	३.००
शिक्षक प्रशिक्षण	विद्यावती मलैया	४.००
कक्षा शिक्षण में सहायक सामग्री (१९६७)	एम. एल. चौरसिया	३.००
A Sociological Approach to Indian Education	Dr. S. S. Mathur	12.50
Nehru on Society, Education and Culture	Dr. Sitaram Jayaswal	5.00
हिन्दी भाषा शिक्षण (१९६८)	भाई योगेन्द्रजीत	६.००
मातृभाषा शिक्षण (१९६८)	के० क्षत्रिया	६.००
इतिहास शिक्षण (१९६८)	गुरुशरनदास त्यागी	४.५०
सामाजिक अध्ययन तथा नागरिक शास्त्र शिक्षण (१९६७)	,,	४.००
नागरिक शास्त्र शिक्षण (१९६८)	,,	३.५०
भूगोल शिक्षण (१९६८)	एच. एन. सिंह	५.००
विज्ञान शिक्षण (१९६८)	डी. एस. रावत	४.००
गणित शिक्षण (१९६८)	एम. एस. रावत एवं मुकुटबिहारीलाल अग्रवाल	४.००
संस्कृत शिक्षण (१९६९)	डा. रामशकल पाण्डेय	४.५०
वाणिज्य शिक्षण (१९६७)	उदयवीर सक्सेना	४.००
गृह विज्ञान शिक्षण (१९६८)	डा. जी. पी. शेरी	६.००
अर्थशास्त्र शिक्षण (१९६८)	गुरुशरनदास त्यागी	४.००
Essentials of English Teaching (1968)	R. K. Jain	9.00

नार्मल परीक्षाओं के लिए

सरल शिक्षा मनोविज्ञान (१९६७)	डा. एस. एस. माथुर	४.००
नवीन शिक्षा सिद्धान्त तथा शिक्षण कला (१९६९)	डी. सी. भारद्वाज	३.००
नवीन शिक्षा मनोविज्ञान (१९६९)	,,	३.००
पाठशाला प्रवन्ध, स्वास्थ्य शिक्षा तथा सामुदायिक संगठन (१९६६)	,,	३.००
सरल शिक्षण विधियाँ (१९६८)	,,	५.००
बी० टी० सी० पाठ संकेंत निर्माण (१९६८)	पी. एस. आर्य	३.००
प्रशिक्षण विद्यालयों में अंग्रेजी शिक्षण विधि (१९६९)	एम. एल. धर्मा	४.००
उद्यानशास्त्र तथा बागवानी (१९६८)	,,	४.००
कृषि शिक्षण (१९६८)	,,	३.००
कताई-बुनाई शिक्षण (१९६८)	कवलसिंह	३.००
बी० टी० सी० हिन्दी भाषा शिक्षण (१९६८)	उदयवीर सक्सेना	१.५०
बी० टी० सी० संस्कृत शिक्षण (१९६८)	,,	१.५०
बी० टी० सी० सामाजिक अध्ययन शिक्षण (१९६८)	,,	१.५०

पुस्तक	लेखक	मूल्य
बी० टी० सी० सामान्य विज्ञान शिक्षण (१९६८)	सुमतीशचन्द्र चौधरी	१.५०
बी० टी० सी० गणित शिक्षण (१९६८)	बी. पी. दुबे	२.००
बी० टी० सी० पुस्तककला शिक्षण (१९६९)	सत्यनारायण दूबे	१.५०
शिल्प-शिक्षण (१९६८)	,,	५.००
काष्ठकला शिक्षण (१९६९)	,,	१.५०
गृहविज्ञान शिक्षण (१९६९)	,,	२.००
चित्रकला शिक्षण (१९६९)	आर. पी. वैश्य	२.००
चर्मकला शिक्षण	मानकचन्द गुप्ता	१.२५
बी० टी० सी० शिक्षा दिग्दर्शन [गाइड] (१९६९)	दिनेशचन्द्र भारद्वाज	७.५०
बी० टी० सी० प्रश्नपत्र उत्तर सहित (१९६७-६९)	शरतेन्दु	३.००
बुनियादी शिक्षा शास्त्र	बी. डी. शर्मा एवं तिवारी	४.५०
बुनियादी शिक्षा सिद्धान्त	बी. डी. शर्मा	२.५०
बुनियादी पाठन पद्धतियाँ	,,	२.५०

इण्टरमीडिएट के लिए

पुस्तक	लेखक	मूल्य
माध्यमिक शिक्षा शास्त्र (१९६९)	डा० सरयूप्रसाद चौबे	७.५०
माध्यमिक शिक्षा सिद्धान्त और शैक्षिक विकास (१९६९)	,,	४.००
माध्यमिक शिक्षा मनोविज्ञान परिचय (१९६९)	,,	४.००

● मनोविज्ञान

पुस्तक	लेखक	मूल्य
मनोविज्ञान का इतिहास (१९६९)	डा. जे. डी. शर्मा एवं डा. जी. डी. सारस्वत	१०.००
मनोविज्ञान के सम्प्रदाय (१९६८)	रामपालसिंह वर्मा	४.००
सामान्य मनोविज्ञान (१९६८)	डा. एस. एस. माथुर	७.००
समाज मनोविज्ञान : प्रारम्भिक अध्ययन (१९६९)	डा. एस. एस. माथुर	७.००
समाज मनोविज्ञान (१९६८)	,,	१२.५०
Social Psychology	Dr. S. S. Mathur	14.00
शिक्षा मनोविज्ञान	डा. एस. एस. माथुर	१२.५०
Educational Psychology (1968)	Dr. S. S. Mathur	16.00
औद्योगिक मनोविज्ञान (१९६९)	डा. आर. के. ओझा	१२.००
विकासात्मक मनोविज्ञान (१९६७)	भाई योगेन्द्रजीत	६.००
वाल मनोविज्ञान (१९६९)	भाई योगेन्द्रजीत	८.००
वाल व्यवहार विकास (१९६९)	डा. सरयूप्रसाद चौबे	७.००
प्रयोगात्मक मनोविज्ञान (१९६९)	डा. डी. एस. रावत	६.००
Physiological Psychology	Dr. J. D. Sharma	8.00

मनोविज्ञान और शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन (१९६७)	आर. एन. अग्रवाल	११.००
Educational and Psychological Measurement	R. N. Agrawal	12.00
व्यक्तित्व : प्रकृति एवं मापन	,,	२.५०
बुद्धि : प्रकृति, सिद्धान्त एवं मापन	,,	३.००
व्यावहारिक मनोविज्ञान	सुरेशचन्द्र शर्मा एम. ए.	६.००

(प्रश्नोत्तर शैली में)

बी० एड्० दिग्दर्शन (गाइड) [१९६९]	सं. दिनेशचन्द्र भारद्वाज, आदि	१५.००
शिक्षा-सिद्धान्त (१९६९)	भाई योगेन्द्रजीत	३.००
शिक्षा मनोविज्ञान (१९६९)	,,	३.००
शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा (१९६९)	,,	६.००
शिक्षा सिद्धान्त की रूपरेखा (१९६८)	,,	६.००
शिक्षण कला (१९६९)	,,	५.००
आधुनिक भारतीय शिक्षा (१९६८)	पाठक एवं त्यागी	६.००
भारतीय शिक्षा का इतिहास (१९६९)	कपूरचन्द जैन	४.००
भारतीय शिक्षा की आधुनिक समस्याएँ (१९६९)	दिनेशचन्द्र भारद्वाज	४.००
विद्यालय प्रशासन एवं स्वास्थ्य शिक्षा (१९६८)	,,	६.००
विद्यालय प्रशासन (१९६८)	,,	४.००
पाठशाला प्रबन्ध (१९६९)	,,	३.५०
स्वास्थ्य-विज्ञान (१९६८)	,,	३.००
हिन्दी भाषा शिक्षण (१९६८)	,,	३.००
भूगोल शिक्षण (१९६८)	,,	२.००
विज्ञान शिक्षण (१९६७)	डी. सी. शर्मा	२.००
English Teaching (1969)	Prof. Pathak	3.00
इतिहास शिक्षण (१९६९)	जी. डी. सत्संगी	२.००
सामाजिक अध्ययन शिक्षण (१९६९)	,,	२.००
नागरिक शास्त्र शिक्षण (१९६८)	,,	२.००
अर्थशास्त्र शिक्षण (१९६८)	,,	२.००
आगरा विश्वविद्यालय बी० एड० प्रश्नपत्र (१९६३ से १९६९ तक)	प्रो० सक्सेना	७.५०
राजस्थान विश्वविद्यालय बी० एड्० प्रश्नपत्र (१९६६ से १९६९ तक)	प्रो. वर्मा	६.००

● गृहविज्ञान

वस्त्र विज्ञान के मूल सिद्धान्त (१९६९)	डा. जी. पी. शेरी	६.००
मातृकला एवं शिशुकल्याण (१९६८)	,,	६.००
गृह व्यवस्था (१९६९)	,,	६.००

संस्कृत

संस्कृत साहित्य की प्रवृत्तियाँ (१९६९)	डा. जयकिशनप्रसाद एवं वेणीमाधव शास्त्री	७.५०
संस्कृत नाट्यसाहित्य	डा. जयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल	६.००
प्राचीन भारतीय कला और संस्कृति (१९६८)	डा. राजकिशोरसिंह	७.५०
संस्कृत भाषा-विज्ञान (१९६७)	,,	६.००
महाकाव्यामृतम्	,,	१.५०
ऋक् सूक्त रत्नाकर (१९६९)	डा. रामकृष्ण आचार्य	६.००
दशकुमार चरितम्	,,	१.००
रघुवंश [पंचम सर्ग] हिन्दी टीका सहित	,,	१.५०
रघुवंश [द्वितीय सर्ग] हिन्दी टीका सहित	,,	१.५०
रघुवंश [१३ वाँ सर्ग] हिन्दी टीका सहित (१९६९)	,,	१.५०
लघु सिद्धान्त कौमुदी	,,	१.५०
काव्य दीपिका	,,	०.७५
अभिज्ञान शाकुन्तल : चतुर्थ अंक (१९६९)	,,	१.५०
मित्र संप्राप्ति : [पंचतंत्र से] (१९६९)	,,	३.५०
मित्रलाभ (१९६९)	,,	२.५०
पुरुषसूक्तम् [हिन्दी टीका सहित] (१९६९)	डा. जयकिशनप्रसाद	१.००
शिशुपाल वधम् [सर्ग १, २] (हिन्दी टीका सहित, १९६९)	सं. डा. पारसनाथ द्विवेदी	३.००
संस्कृत रचना सरणिः भाग १	डा. बाबूराम त्रिपाठी एम. ए.	२.००
संस्कृत रचना सरणिः भाग २	,,	२.५०
काव्यप्रकाश : प्रश्नोत्तर (१९६८)	सं. डा. पारसनाथ द्विवेदी	२.५०
वैदिक साहित्य का इतिहास (१९६९)	डा. राजकिशोरसिंह	४.००
संस्कृत साहित्य का इतिहास (१९६९)	डा. द्वारिकाप्रसाद	४.००

हिन्दी साहित्य (शोध-प्रबन्ध)

हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ (१९६९)	डा. शशिभूषण सिंहल	प्रेस में
प्रसाद दर्शन (डी. लिट.) १९६९	डा. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना	१२.००
हिन्दी और तेलुगु वैष्णव-भक्ति साहित्य : तुलनात्मक अध्ययन (१९६८)	डा. के. रामनाथन्	१५.००
भूषण और उनका साहित्य (१९६८)	डा. राजमल बोरा	१५.००
रीतिकाल और आधुनिक हिन्दी कविता (१९६८)	डा. रमेशकुमार शर्मा	८.००
गुजरात के कवियों की हिन्दी काव्य साहित्य को देन (१९६८)	डा. नटवरलाल अम्बालाल	१२.००
कृष्णभक्ति साहित्य में रीतिकाव्य परम्परा	डा. राजकुमारी मित्तल	१२.००
विद्यापति : युग और साहित्य	डा. अरविन्द नारायण सिन्हा	१२.५०

ब्रज और बुन्देली लोकगीतों में कृष्णकथा	डा. शालिग्राम गुप्त	१२.५०
नाथपंथ और निर्गुण सन्तकाव्य	डा. कोमलसिंह सोलंकी	१२.००
सन्त वैष्णव काव्य पर तांत्रिक प्रभाव	डा. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय	१५.००
आलवार भक्तों का तमिल प्रबन्धम् और हिन्दी कृष्णकाव्य	डा. मलिक मोहम्मद	२०.००
मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन	डा. सत्येन्द्र	१५.००
रीतिकाल के प्रमुख प्रबन्ध काव्य	डा. इन्द्रपालसिंह 'इन्द्र'	१५.००
आधुनिक हिन्दी साहित्य	डा. रामगोपालसिंह चौहान	१५.००
गद्यकार–बाबू बालमुकुन्द गुप्त	डा. नत्थनसिंह	१२.५०
हिन्दी गद्य के निर्माता–बालकृष्ण भट्ट	डा. राजेन्द्र शर्मा	१०.००
हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव	डा. श्रीपति शर्मा	१२.५०
कामायनी में काव्य, संस्कृति और दर्शन	डा. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना	१०.००
हिन्दी में प्रत्यय विचार	डा. मुरारीलाल उप्रैति	१५.००
हिन्दी समास रचना का अध्ययन	डा. रमेशचन्द्र जैन	१०.००
रस सिद्धान्त की दार्शनिक व नैतिक व्याख्या	डा. तारकनाथ बाली	८.००
मैथिली लोकगीतों का अध्ययन	डा. तेजनारायणलाल	१०.००
हिन्दी और कन्नड में भक्ति आन्दोलन का तुलनात्मक अध्ययन	डा. हिरण्मय	१०.००
ब्रह्मसूत्रों के वैष्णव भाष्यों का तुलनात्मक अध्ययन	डा. रामकृष्ण आचार्य	१०.००

आलोचनात्मक साहित्य

भारतीय साहित्य : तुलनात्मक अध्ययन	सं. डा. व्रजेश्वर वर्मा	८.००
भारतीय भाषाओं का भाषा-शास्त्रीय अध्ययन	,,	८.००
नवीन और उनका काव्य	प्रो. जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव	८.००
हिन्दी रेखाचित्र : उद्भव और विकास	प्रो. कृपाशंकर सिंह	५.००
साहित्यिक निबन्ध [७१ साहित्यिक निबन्ध] (१९६९)	राजनाथ शर्मा एम. ए.	१०.००
समीक्षात्मक निबन्ध	डा. सत्येन्द्र	८.००
साहित्य समीक्षांजलि	डा. सुधीन्द्र एम. ए.	५.००
विचार, दृष्टिकोण एवं संकेत	डा. जैन एवं डा. अग्रवाल	१०.००
हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास (१९६८)	राजनाथ शर्मा	११.००
हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ (१९६९)	डा. जयकिशनप्रसाद	९.००
हिन्दी साहित्य का आधुनिककाल	डा. जयकिशनप्रसाद	५.००
हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास (१९६९)	राजनाथ शर्मा	१.७५
आधुनिक साहित्य विशेषांक	राजनाथ शर्मा एवं विनोद कुमार	४.५०
आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका	डा. शम्भुनाथ पाण्डेय	१०.००
सूफी-काव्य-विमर्श (१९६८)	डा. श्याममनोहर पाण्डेय	६.००

समीक्षा और आदर्श	डा. रांगेय राघव	३.००
महाकाव्य विवेचन	,,	३.००
काव्य, कला और शास्त्र	,,	३.००
काव्य, यथार्थ और प्रगति	,,	३.००
समीक्षा के सिद्धान्त	डा. सत्येन्द्र	३.५०
रस, अलंकार, पिंगल (१९६८)	डा. शम्भुनाथ पाण्डेय	२.५०
काव्यशास्त्र (१९६८)	,,	३.००
अलंकार प्रबोध	डा. शम्भुनाथ पाण्डेय एवं विश्वम्भर अरुण	१.२५
सुबोध काव्यशास्त्र (१९६९)	विश्वम्भर अरुण	२.००
हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास	डा. गुणानन्द जुयाल	५.००
हिन्दी भाषा : अतीत और वर्तमान	डा. अम्बाप्रसाद 'सुमन'	६.००
हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि	डा. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना	१०.००
हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि	,,	१०.००
हिन्दी और उसके कलाकार	फूलचन्द्र जैन 'सारंग'	८.००
हमारे कवि और लेखक (१९६९)	,,	२.००
शैलियाँ	,,	१.५०
हिन्दी के कवि और लेखक (१९६८)	राजनाथ शर्मा	२.००
गीतकार विद्यापति	रामवाशिष्ठ एम. ए.	३.००
भारतेन्दु साहित्य	डा. रामगोपालसिंह चौहान	६.७५
भारतेन्दु युग	डा. रामविलास शर्मा	३.००
रत्नाकर की साहित्य साधना	दानबहादुर पाठक	६.००
मथिलीशरण गुप्त और उनका साहित्य (१९६९)	,,	१०.००
निराला का साहित्य और साधना	डा. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय	६.००
महादेवी का वेदना भाव	डा. जयकिशनप्रसाद	५.००
महाकवि हरिऔध और प्रियप्रवास	देवेन्द्र शर्मा	६.००
भ्रमरगीत सार (व्याख्या एवं विवेचन)	डा. नरेन्द्रदेव शास्त्री	४.००
सूर का भ्रमरगीत : एक अन्वेषण	डा. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय	३.५०
कामायनी भाष्य (१९६९)	डा. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना	१२.५०
जयशंकर प्रसाद और आँसू (१९६८)	देवेन्द्र शर्मा	२.५०
जयशंकर प्रसाद और स्कन्दगुप्त (१९६९)	डा. राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी	३.००
जयशंकर प्रसाद और तितली	राजनाथ शर्मा	३.५०
ध्रुवस्वामिनी : आलोचनात्मक अध्ययन (१९६८)	फूलचन्द्र जैन 'सारंग'	३.००
जयशंकर प्रसाद और अजातशत्रु (१९६७)	डा. तारकनाथ बाली	२.५०

साकेत : एक अध्ययन (१९६९)	दानबहादुर पाठक	६.००
साकेत में काव्य, संस्कृति और दर्शन	डा. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना	१०.००
प्रियप्रवास में काव्य, संस्कृति और दर्शन (१९६९)	,,	८.००
केशव और रामचन्द्रिका : पुनर्मूल्यांकन (१९६९)	डा. रामगोपालसिंह चौहान	६.००
महादेवी वर्मा और 'स्मृति की रेखाएँ' (१९६८)	राजनाथ शर्मा एम. ए.	३.००
महादेवी वर्मा और 'अतीत के चलचित्र'	,,	३.००
महादेवी और आधुनिक कवि	डा. तारकनाथ बाली	२.५०
रामधारीसिंह दिनकर और 'कुरुक्षेत्र' (१९६८)	,,	२.५०
सुमित्रानन्दन पंत और आधुनिक कवि	,,	४.००
सुमित्रानन्दन पन्त और उत्तरा	,,	३.००
रश्मिबन्ध और सुमित्रानन्दन पंत (१९६९)	देवेन्द्र शर्मा	४.००
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और उनकी चिन्तामणि (१९६९)	राजनाथ शर्मा एम. ए.	३.५०
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और त्रिवेणी (१९६९)	,,	२.५०
गुरुभक्तसिंह और नूरजहाँ	डा. तारकनाथ बाली	३.००
वृन्दावनलाल वर्मा और 'झाँसी की रानी'	राजनाथ शर्मा एम. ए.	३.५०
विश्वास का बल : आलोचनात्मक अध्ययन	,,	३.५०
चित्रलेखा : एक मूल्यांकन (१९६९)	,,	३.००
कथा कुसुमांजलि : आलोचनात्मक अध्ययन (१९६९)	,,	२.५०
राम की शक्तिपूजा तथा निराला (१९६९)	देवेन्द्र शर्मा एम. ए.	३.५०
वाणभट्ट की आत्मकथा : एक अध्ययन (१९६८)	राजेन्द्र मोहन भटनागर	३.५०

प्राचीन काव्य-ग्रन्थ (सटीक)

कबीर ग्रन्थावली (संजीवनी भाष्य सहित, १९६९)	डा. भगवत्स्वरूप मिश्र	१२.००
विद्यापति पदावली [सटीक] (१९६९)	डा. देशराजसिंह भाटी	१२.००
भ्रमरगीत-सार (१९६९)	सं. राजनाथ शर्मा	१०.००
विनय पत्रिका (१९६९)	,,	७.००
जायसी ग्रंथावली (१९६८)	,,	१०.००
बीसलदेव रासो	,,	२.५०
'घनानन्द कवित्त' का काव्य-वैभव (१९६९)	डा. प्रकाश दीक्षित	२.५०
विद्यापति वैभव (१९६९)	डा. गुणानन्द जुयाल एवं विश्वम्भर 'अरुण'	२.५०
संक्षिप्त रामचन्द्रिका (१९६९)	देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' एम. ए.	३.५०
कबीर साखी-सार (कबीरदास कृत) १९६८	डा. रामवाशिष्ठ एवं तारकनाथ बाली	३.५०
कबीर काव्य संग्रह (कबीर के चुने पद और साखियाँ)	डा. राजेश्वर प्रसाद	३.५०

सुदामा चरित (नरोत्तमदास कृत)	फूलचन्द्र जैन	०.७५
भँवरगीत (नन्ददास कृत)	डा. सुधीन्द्र	१.५०
पृथ्वीराज रासो (पदमावती समय)	डा. हरिहरनाथ टण्डन	२.५०
कयमास-वध (पृथ्वीराज रासो)	राकेश	२.५०
बिहारी-सतसई (१९६८)	देवेन्द्र शर्मा	५.००
रहीम सतसई (दोहावली)	विश्वम्भर 'अरुण'	१.५०

टीकाएँ

कामायनी की टीका (१९६९)	डा. तारकनाथ बाली	४.००
प्रियप्रवास की टीका (१९६९)	,,	४.००
साकेत की टीका (१९६९)	फूलचन्द्र जैन 'सारंग'	४.००
भ्रमरगीत-सार की टीका (१९६९)	डा. नरेन्द्रदेवसिंह एवं डा. राजेन्द्र शर्मा	४.००
रश्मिबंध की टीका (१९६९)	देवेन्द्र शर्मा	४.००

प्रश्नोत्तर शैली में

भारतीय काव्यशास्त्र (१९६९)	प्रो. कृष्णदेव शर्मा	३.५०
पाश्चात्य काव्यशास्त्र (१९६९)	,,	३.५०
प्रेमचन्द (१९६८)	राजनाथ शर्मा	२.५०
कबीर (१९६८)	,,	२.५०
निराला (१९६७)	,,	२.५०
सुमित्रानन्दन पन्त (१९६७)	,,	२.५०
ग़बन (१९६९)	,,	१.००
गोदान (१९६९)	,,	२.५०
हिन्दी कहानियाँ (१९६९)	,,	४.५०
हिन्दी साहित्य का इतिहास (१९६९)	,,	२.५०
हिन्दी भाषा का इतिहास (१९६८)	,,	२.५०
तुलसीदास (१९६९)	प्रो. भारतभूषण सरोज	२.५०
भाषा-विज्ञान (१९६९)	,,	२.५०
साहित्यालोचन (१९६९)	,,	२.५०
बिहारी (१९६९)	,,	२.५०
जायसी (१९६८)	,,	२.५०
उद्धव-शतक (१९६९)	,,	२.५०
कामायनी (१९६९)	,,	१.००
प्रियप्रवास (१९६७)	,,	१.००
साकेत (१९६९)	,,	१.५०
सूरदास (१९६९)	वासुदेव शर्मा शास्त्री	२.५०
कवि प्रसाद (१९६७)	डा. शम्भुनाथ पाण्डेय	२.५०

शिक्षा-वृक्ष

—डा० गोपीनाथ तिवारी
गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

एक चित्र—कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में छात्राओं ने हड़ताल की। क्यों? क्या अधिकारियों के विरुद्ध? नहीं। क्या सरकार के विरुद्ध? नहीं। हड़ताल की गई उसी विश्वविद्यालय के छात्रों के व्यवहार के विरुद्ध। दो छात्रों ने एक छात्रा को घेरकर अभद्रता प्रदर्शित की। दोनों में से एक नेता था। कुछ छात्रों ने जो छात्र संघ के विशिष्ट पदाधिकारी थे, धमकी दी कि यदि उन दोनों छात्रों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही की गई तो वे घिराव करेंगे। छात्राओं ने हड़ताल की और माँग की कि छात्रों के विरुद्ध कठोर कदम उठाया जाय। अभद्रता प्रदर्शित करने वाले छात्र भूल गये कि छात्रा उनकी बहिन थी। प्रयाग विश्वविद्यालय में—वाणिज्य विभाग में दिन के एक बजे सहपाठियों द्वारा एक छात्रा को अपहृत करने का प्रयास किया गया। उसे कार में बिठाकर दौड़ना चाहते थे। छात्रा को जैसे ही पकड़ा, छात्रा चिल्लाई, पर उसने देखा कुछ न होगा। तब उसने साहस पकड़ा। धक्के-मुक्के दिये, नोंचा-खसोटा और दाँतों से काटा और ढील पा छात्रों के घेरे से कूदी। तब तक कुछ छात्र एवं सहायक प्राक्टर पहुँच गये। अपहरण करने वाले उसी विश्वविद्यालय के छात्र थे और एक गुरु के अन्तेवासी तथा एक संस्था के सहपाठी भाई-बहिन होते हैं, वे छात्र इसे क्यों समझने लगे थे।

दूसरा चित्र—लखनऊ स्थित हज़रतगंज में का है। बस चढ़ती एक छात्रा को कुछ छात्रों ने छेड़ा। दूसरे दिन वह अपने वृद्ध पिता के साथ थी। पुनः उन छात्रों ने अभद्र शब्द कहे और अभद्रता की। लड़की ने अपने पिता से कहा। वृद्ध पिता को क्रोध आया और उसने डांटा, दुत्कारा एवं बुरे-भले शब्द कहे। चारों वीरों ने वृद्ध पिता पर हाकियाँ बरसाईं तथा भाग गये। वृद्ध पिता अस्पताल में मर गया। सियाल्दा ऐक्सप्रेस से एक बारात मुरादाबाद आ रही थी। उसी डिब्बे में काँठ से १५ छात्र प्रविष्ट हुए जो बिना टिकिट थे। उनमें से दो ने युगलगान प्रारम्भ किया जो अत्यन्त गन्दा और अश्लील था। बरातियों ने मना किया। दुल्हन भी वहाँ बैठी थी जिसके कारण इन मजनुओं ने अपनी संगीत दक्षता को रेंकना प्रारम्भ किया था। अब एक अन्य ने राग उठाया—बिस्तर बिछा दिया है तेरे घर के सामने। पुनः एक प्रौढ़ पुरुष ने रोका जिस पर ये पहलवान बोले—आपका क्या लेता है? गाड़ी पर लिखा है, सिगरेट न पियो। गाने पर तो रोक नहीं? अब और दो ने रेंकना प्रारम्भ किया—हाय, महबूबा री......। तब दो बरातियों ने कहा—तेरे आशिक की ऐसी-तैसी और सब बरातियों ने मिलकर पाँच-छै की पिटाई की। मतलबपुर स्टेशन पर ये छात्र उतरे और गाड़ी के ऊपर पथराव किया। गाड़ी चल रही थी और ये रुस्तम सुहराब पत्थर-ईंटें फेंक रहे थे। अन्य डिब्बों में पत्थर, ईंटें गईं। पीछे के डिब्बे वाले तीन यात्रियों को चोटें आईं।

तीसरा चित्र—बिजनौर के सौतियान मुहल्ले में पुलिस ने छापा मारकर सात छात्रों को बन्दी बनाया। उनके पास से एक अपहृत महिला और बड़ी संख्या में रेडियो, ट्रांजिस्टर, आभूषण, साइकिल, घड़ियाँ, कपड़े, पन्द्रह हजार के नोट तथा तीन देशी पिस्तौल प्राप्त हुये। अलीगढ़ जिले में एक डाका पड़ा। दो छात्र भी डाकुओं के साथ पकड़े गए।

चौथा चित्र—वर्तमान शिक्षा पद्धति के विषय में सर्वत्र आक्रोश प्रकट किया जाता है। एक उद्घोष हुआ—वर्ष में बस एक लिखित परीक्षा होती है। बस पास हो जाइये, नकल करके, चाहे पहुँच करके। जबलपुर के राजकीय कृषि कालिज में अमेरिका शिक्षा-प्रणाली प्रारम्भ की गई। वहाँ छात्रों ने हड़ताल की और माँग की—वही पुरानी परीक्षा चालू की जाय। कानून की शिक्षा प्रणाली को बदलकर तीन वर्षीय

प्रणाली चालू की गई। दिल्ली में इसके विरुद्ध हड़ताल हुई। एक महाविद्यालय ने मासिक परीक्षा प्रारम्भ की। छात्रों ने इसके विरोध में हड़ताल की। कलकत्ते में सेकेंडरी शिक्षा बोर्ड की स्कूल परीक्षा में प्राइवेट छात्रों ने अपनी सीटों को नापसन्द किया और अन्य छात्रों की कापियाँ फाड़ डालीं।

पाँचवाँ चित्र—मथुरा में एक छात्रा के साथ अभद्रता प्रदर्शित करते तीन छात्रों को दो प्राध्यापकों ने रोका। इस पर कुछ साथियों को साथ ले छात्रों ने दोनों प्राध्यापकों को पीटा। मुंगेर के एक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में एक छात्र ने अपने शिक्षक को गालियाँ दीं। प्रधानाचार्य ने छात्र को दण्डित किया। कार्यालय में वह शिक्षक एक अन्य सहकर्मी अध्यापक के साथ प्रधानाचार्य के पास बैठे थे। सहसा छै-सात छात्रों ने हाकी स्टिकों से आक्रमण कर दिया। तीनों थोड़े घायल हुए। आजमगढ़ जिले में बस पर जाते समय एक अध्यापक पर आक्रमण किया गया, क्योंकि उसने छात्र को परीक्षा कक्ष में पुस्तकें न ले जाने दी थीं।

छठा चित्र—वारंगल के केन्द्रीय इन्जीनियरिंग कालेज में छात्रों ने हड़ताल कर माँग की कि अर्थशास्त्र के प्राध्यापक को या तो हटाया जाय अथवा उसे परीक्षा पद्धति बदलने पर विवश किया जाय क्योंकि वह परीक्षा में अङ्क कम देता है। उड़ीसा मेडिकल कालेज के छात्रों ने कलक्टरी को घेरकर कलक्टर के सामने माँग की कि एक प्राध्यापक को हटाया जाय क्योंकि वह कठोर है, विलम्ब से प्रवेश करने पर डाटता है और बाद में आने वाले छात्रों को अनुपस्थित बना देता है। राजकीय मैडिकल कालेज पटियाला के प्रधानाचार्य को डराया-धमकाया गया एवं छात्रों ने हड़ताल की और माँग की कि औषधि-विज्ञान के प्राध्यापक को परीक्षक न बनाया जाग क्योंकि वह फेल अधिक करता है।

सातवाँ चित्र—मुंगेर में व्यवस्थापक एवं निरीक्षकों को पिस्तौलों से डराकर बाहर से आकर कुछ व्यक्तियों ने हिन्दी प्रथम-प्रश्नपत्र के उत्तर बताये। व्यवस्थापक को धमकाया कि यदि पुलिस को रिपोर्ट की तो यमलोक जाओगे। बिहार के एक अन्य विद्यालय में एक माइक द्वारा प्रश्नों के उत्तर बताये गये। गया में वार्षिक माध्यमिक स्कूल परीक्षा प्रारम्भ होने पर युवकों ने आक्रमण किया, प्रश्नों के उत्तर बताये।

आठवाँ चित्र—कटिहार के कुछ छात्र स्त्रियों से अभद्रता प्रदर्शित कर रहे थे। सिनेमाघर के स्वामी के पुत्र ने इन्हें दुत्कारा। दूसरे दिन लाठी, बल्लम ले अधिक संख्या में ये वीर आये और उस १९वर्षीय लड़के को इतना मारा कि वह बेहोश हो गया। बचाने वाले दो मनुष्यों को भी आहत किया गया। मुजफ्फरनगर में भी दो छात्रों ने सिनेमाघर में युवतियों से छेड़खानी की। मैनेजर ने आकर दोनों को पुलिस के हवाले कर दिया। दूसरे दिन उस संस्था के छात्र लाठी, हाकी और डण्डे लेकर सिनेमाघर पर पिल पड़े। मैनेजर घायल हुआ और ५० हजार की उसकी क्षति हुई। मुहम्मदाबाद गोहना (आजमगढ़) में कार्तिकी पूर्णिमा के मेले के अवसर पर छात्रों ने मिठाई एवं कपड़ों की दूकानें लूटीं, स्त्रियों से छेड़खानी की। एक स्त्री चाकू निकालकर दौड़ी तो ये भाग गये। विशाखापट्टम में एक बर्मी शरणार्थी स्त्री सागसब्जी बेच रही थी। इण्डस्ट्रियल ट्रेनिंग स्कूल के एक छात्र ने उसको कुछ कहा। उसके पति ने छात्र को पीट दिया। संस्था के सैकड़ों छात्रों ने उसके घर पर आक्रमण कर सारा सामान तोड़-फोड़ डाला, लूटा और उस पुरुष को घायल कर दिया। पुलिस आ गई। पुलिस ने गोली चलाई। एक छात्र मारा गया। मुंगेर के परीक्षा केन्द्र के निकट कुछ छात्रों ने एक गृहस्वामी से कहा—हम तुम्हारे घर की छत से उत्तर बतायेंगे। गृहस्वामी राजी न हुआ तो उस घर में रात्रि में आग लगा दी। मुरादाबाद स्टेशन पर हाईस्कूल परीक्षाफल देखने सैकड़ों छात्र गये और स्टेशन पर की फल, मिठाई की दूकानों को लूटा खसोटा।

गाड़ी रोकने के उदाहरण क्या दिये जायँ? बिना टिकट यात्रा करने वाले छात्रों की क्या संख्या बताई जाय? एक गाड़ी थोड़ी सी आगे बढ़ती थी कि छात्र जंजीर खींचकर रोक देते थे। एक बुढ़िया बार-बार हाथ जोड़ती थी—बेटा! मेरा बेटा बीमार है। वह अस्पताल में है, गाड़ी लेट न करो। जंजीर न खींचो। जब चार बार वह कह चुकी और पाँचवीं बार एक छात्र ने जंजीर खींची तो उस बुढ़िया ने अपनी लकड़ी उस हाथ पर दे मारी जो जंजीर खींच रहा था। फिर क्या था, उस छड़ से ही बुढ़िया को धुन दिया गया। मुरादाबाद गाड़ी पहुँची। वह अस्पताल पहुँची, पर मृत।

आज विश्वभर में जवानी ने काया पलटी है। इण्डोनेशिया में छात्रों ने राज्य परिवर्तित कर दिया। चीन में नवीन रक्त उठा है। फ्रांस में उसने सिर उठाया। भारत में भी उसका प्रभाव पड़ा है। इसको देखकर भारतीय जवानी ने इस उत्तेजना का परीक्षण बिना किये, बिना फल-कुफल सोचे, अपना कदम उठा लिया है। अपेक्षा तो थी भारतीय छात्र अपनी परम्परागत गुरु-शिष्य प्रणाली को दूसरों के सामने रखता। वहाँ, उसने हाथ में पलीता लेकर आग लगानी प्रारंभ करदी है।

दोष किसका है? क्या केवल छात्रों का। अवश्य है। जहाँ उससे आशा थी कि वह आगे बढ़ प्रकाश दिखायेगा, वह हाथ के दीपक से आग लगाने लगा है और इसका प्रयत्क्ष उदाहरण अपनी बहिनों से अभद्र व्यवहार है एवं गुरुजनों पर आक्रमण है। किन्तु सारा दोष उसी का नहीं है। हमारा समाज ही पतनोन्मुख हो, समझ रहा है कि मैं प्रगति कर रहा हूँ। ईश्वर ही रक्षक है। लक्षण अत्यन्त भयावह हैं। बच्चों एवं युवकों में अनुकरण की मात्रा अधिक होती है। आज उनके सामने न अच्छे महापुरुषों का उदाहरण है और न समाज में ऊपर उठते नेताओं का। उनमें नेता बनने की अदम्य उत्कंठा जाग उठी है और वे गुरुओं की ओर न देखकर, नेताओं को आदर्श समझने लगे हैं। जब वे विधान भवन में गाली-गलौज और जूता पज़ार होते देखते हैं तो वे समझते हैं, यही मार्ग है महान बनने का। राजनीतिक दल यही सिखा रहे हैं—माँ-बाप, गुरु-दादा से अधिक है भारत, और भारत की सेवा केवल हमारे दल द्वारा ही की जा सकती है। फल है वह माँ-बाप और गुरु की उपेक्षा कर दल के दायरे में सरपट दौड़ पड़ता है। वह समझता है—मैं देश की सेवा कर रहा हूँ—जब हिन्दी समर्थन या विरोध में घर दूकान फूंक रहा हूँ, उत्तर भारत के अत्याचारों के विरोध में अंग्रेजी और स्वतन्त्र प्रान्त की मांग कर रहा हूँ, अपने साथी को बचाने के लिये संस्था, व्यक्ति या जाति के ख़िलाफ़ खड़ा हो रहा हूँ। एक बड़ा गुर बड़े बताकर गये हैं, छोटों की प्रशंसा, उनके मुख पर मत करो। उधर हम प्रतिदिन कहते हैं—ओ, नौ जवान! तू देश की रीढ़ है, देश का हृदय है, देश का मस्तिष्क है। निश्चय ही प्रत्येक युवक बूढ़े का स्थान ले देश की गाड़ी को आगे बढ़ाता है और वह अनिवार्य शृंखला की एक कड़ी है। किन्तु उसको बार-बार यह कहकर कि तू ही सब कुछ है, तू सबसे ऊपर है उसे अंकुश से हटाना है। यही अवस्था है जब संयम और अंकुश की सबसे अधिक आवश्यकता है। युवा हाथी ही मतवाला होकर रौंदता चलता है। मां-बाप और गुरु का अंकुश इसके लिये आवश्यक है; बाल, कुमार एवं युवावस्था में। साथ ही अच्छे उदाहरण भी उस पर अंकुश रखते हैं जिनका अभाव होता जा रहा है। एक ओर अस्वाभाविक उत्तेजनात्मक उच्छृंखल सिनेमा जगत और दूसरी ओर अमर्यादित राजनीतिक जगत, दोनों गहरे जलभंवरों में वह अवश घूमने लगता है।

शिक्षा एक वृक्ष है। छात्र बीज रूप में अंकुरित हो ऊपर उठकर वृक्ष बनता है और पत्र, फूल, फल उगाकर 'सफल' कहला सकता है किन्तु वही केवल काँटेदार होकर दूसरों के कपड़े फाड़ सकता है। इस वृक्ष की भूमि माता-पिता और माली है उसके गुरुगण। पानी है वातावरण। वृक्ष रूप में ही स्वीकृत होकर इसको विकसित देख सकते हैं। यह वृक्ष काँटेदार एवं विषैला न बने तथा छाया, फल और फूल दे इसके लिये क्या साधन हैं?

सबसे बड़ा साधन है कि शिक्षा का लक्ष्य निर्धारित हो। कितने दुःख का विषय है कि आज तक हम शिक्षा का लक्ष्य निर्धारित नहीं कर सके हैं। क्या पुस्तक पढ़ना ही शिक्षा है? कदापि नहीं। पं० जवाहरलाल नेहरू ने कहा था—जो शिक्षा केवल पुस्तकीय अध्ययन ही से सम्बद्ध है वह अपूर्ण है। शिक्षा के तीन लक्ष्य होंगे—(१) वह सभ्याचार (२) ज्ञान एवं (३) जीविका दे। शिक्षा का सबसे प्रधान लक्ष्य सभ्याचार देना है। साफ कपड़े पहिनकर सिर झुकाना और हाथ मिलाकर मुस्कराना ही सभ्याचार नहीं है क्योंकि श्वेत वस्त्र एवं मुस्कान के पीछे एक राक्षस भी छिपा रह सकता है। डा० राधाकृष्णन ने कहा है--"पूर्ण बनने के लिये। शिक्षा को मानवीय बनना चाहिये फलतः इसमें बुद्धि का प्रशिक्षण ही सम्मिलित न हो वरन् हृदय का परिष्कार तथा भावों का संयम भी सम्मिलित हो।" महात्मा गांधी का कथन है "बिना आचरण के शिक्षा केवल बुराई उत्पन्न करने वाली शक्ति है जैसा कि प्रतिभाशाली चोरों तथा सज्जन राक्षसों

के उदाहरणों से प्रमाणित है।" रस्किन का अभिमत है—"शिक्षा मनुष्य की आत्मा को पूर्णता की ओर ले जाती है और मनुष्य को पूर्ण बनाती है।" छात्रों को आचार दे, शिक्षा का यह सबसे प्रथम कर्त्तव्य है। आचार आता है—वातावरण से, साथियों से और अध्यापकों से। यह सर्वमान्य है कि वातावरण एवं साथियों का प्रभाव, बहुत पड़ता है। महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर का कथन है—"शिक्षा का सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व है—प्रेरणाप्रद सृजनात्मक वातावरण।" अतः हमारे विश्वविद्यालयों का प्राथमिक कार्य है कि वहाँ ज्ञान की निर्माणात्मक प्रयोगशाला खुले। आज विद्यालय, अपने क्षुब्ध वातावरण में रुग्ण से लेटकर स्वांस लेने लगे हैं। यदि शैक्षिक वातावरण न बना तो देश रोयेगा। इस वातावरण को दूषित किया है राजनीति की विषैली वायु ने। विद्यालय के अध्यापक छात्रों को सभ्याचार देते हैं। यह तथ्य है कि बालक के सबसे बड़े गुरु उसके माता-पिता हैं जो उसे आचार प्रदान करते हैं। अध्यापक का पद भी कम महत्त्व का नहीं है, वह माता-पिता के समकक्ष ही है। अरस्तू का कथन है—"जो बालकों को भली प्रकार से शिक्षा देते हैं उन शिक्षकों का मान जन्मदाता माता-पिताओं से अधिक ही होना चाहिये।" हिन्दू धर्मशास्त्र ने माता-पिता एवं आचार्य को त्रिदेव की संज्ञा दी है।

शिक्षा, ज्ञान प्रदान करे। ज्ञान दो प्रकार का होता है—गम्भीर एवं विस्तृत। गंभीर ज्ञान में मनुष्य चिन्तन प्रधान बनकर तह में प्रवेश करता है। यह विशेषता है। दूसरे प्रकार में ज्ञान का विस्तार होता है। छात्र खूब पढ़ता है और अनेक प्रकार की जानकारी पाता है। सादी का कथन है—जितना ही अधिक हम अध्ययन करते हैं उतना ही अधिक ज्ञान आता है। इसीलिये पुस्तकालयों को आज बहुत महत्त्व प्राप्त हुआ है। विचारक विपिल का मत है कि समय के विशाल महासागर में पुस्तकें प्रकाश स्तम्भ हैं। पुस्तकों के रूप में हम महान् आत्मा का जीवन सार पाते हैं—मिल्टन का यह मत यही प्रतिपादित करता है कि जीवन में पुस्तकों की उपयोगिता बहुत है। जैसे गंदा स्थान बदबू देता है और गंधी की दूकान देता है सुगंध। वैसे ही पुस्तकें विचार प्रदान करने में सक्षम हैं। फलतः पुस्तकों का चयन भी आवश्यक है। ज्ञान गम्भीर पुस्तकें पाठक को विचार देती हैं तो भावनात्मक उसके हृदय को तरंगित कर उसके हृदय का परिष्कार करती हैं।

शिक्षा का जीवन जीविका से भी जुड़ना चाहिये। एक समय था जब विद्या को केवल ज्ञान का साधन ही माना जाता था। तब भी कवि राज्याश्रय ढूँढते फिरते थे और नाटककार राजदरबार में नाटक प्रस्तुत कर रहे थे। आज तो शिक्षा का सम्बन्ध जीविका से जुड़ गया है। अतः शिक्षा को ऐसी सक्षमता भी देनी है कि वह जीवन यापन में सहायक हो। इसीलिये अमेरिका में कारखानों का सम्बन्ध विद्यालयों से जोड़ दिया जाता है जहाँ कारखानों के लिये वैज्ञानिक एवं दक्ष कर्मचारी बनते हैं। ये कारखाने अपनी आवश्यकतानुसार स्थानीय विद्यालयों को सुझाव देते हैं, सहायता पहुँचाते हैं और आवश्यकता के व्यक्ति पाते हैं। गोरखपुर विश्वविद्यालय के चारों ओर पचीसों चीनी मिलें हैं किन्तु दोनों में कोई सम्बन्ध नहीं है। एक छात्र प्राइमरी स्कूल में पांचवर्ष बिताता है और उच्चतर माध्यमिक विद्यालय या इन्टर कालिज में ६ या ७ वर्ष। यदि छात्र को कोई जीविकोपार्जन का कुटीर उद्योग, वा उपयोगी पेशे का भी प्रशिक्षण साथ-साथ दिया जाय तो शिक्षा का सम्बन्ध जीविका से अधिक जुड़ जायेगा। ●

[पृष्ठ १ का शेषांश]

इसका दूसरा पक्ष और भयावह है। विश्वविद्यालयों में कुछ ऐसा वातावरण बन गया है कि अकर्मण्य और गुटबाज लोग भी सफलता पा जाते हैं। ये लोग स्वयं काम नहीं करते तो दूसरों को भी काम नहीं करने देना चाहते। अपनी आँख फूटी है तो दूसरों को भी अंधा बनाना चाहते हैं। ऐसे लोग जब बौद्धिकरूप से पराजित हो जाते हैं तो अदालत की शरण जाते हैं और जब अपनी विद्वत्ता से प्रभाव नहीं स्थापित कर पाते तो अदालत के मुंशी और जजों का सहारा लेकर ऊपर उठना चाहते हैं। बेईमानी का यह दूसरा रूप है। मुकदमेबाजी के मूल में निस्सन्देह हमारे चरित्र की निर्बलता है। चाहे वह हमारे भाग्य विधाता प्रोफेसर की चरित्र निर्बलता हो या उस उम्मीदवार की जो अध्ययन, अध्यापन और ठोस ग्रन्थों का प्रकाशन करना अपना धर्म नहीं समझता और शिकस्त होने पर अदालत में दौड़ता है। ●

पुस्तक समीक्षा

भाषा शिक्षण तथा भाषा विज्ञान

सम्पादक–ब्रजेश्वर वर्मा तथा अन्य लोग, प्रकाशक–केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, १९६९, मूल्य १०.०० ।

प्रस्तुत पुस्तक भाषा-शिक्षण तथा भाषा-विज्ञान से सम्बद्ध २९ निबन्धों का संग्रह है। मुख्य निबन्ध मोटे रूप से सात प्रकार के हैं : सामान्य, ध्वनि-विषयक, व्याकरण-विषयक, शब्द-विषयक, अर्थ-विषयक, लिपि-विषयक, तथा श्रव्य-दृश्य उपादान-विषयक। व्याकरण ध्वनि तथा सामान्य परिचय की सामग्री अपेक्षाकृत अधिक है, शेष पर प्रायः एक-एक निबन्ध हैं। चूँकि ये निबंध स्वतन्त्र रूप से लिखे गए हैं, अतः जैसा कि स्वाभाविक है एक ही बात अनेक स्थानों पर दुहराई गई है, तथा कई बातें विषय से सीधा सम्बद्ध होने पर भी किसी भी लेख में नहीं आ सकी हैं।

विषय की सामान्य भूमिका से सम्बद्ध लेखों में डा० राजगोपालन का लेख अच्छा बन पड़ा है। यों इस भाग में किसी लेख में भूमिका स्वरूप, या स्वतन्त्र लेख में भाषा-शिक्षण सम्बन्धी विभिन्न सिद्धान्तों का परिचय और उनका मूल्याङ्कन उपयोगी हो सकता था।

ध्वनि-विषयक लेखों में स्तर का बड़ा अन्तर है। एक ओर डा० श्रीवास्तव का अत्यन्त गम्भीर लेख है जो इस विषय पर—जहाँ तक मुझे ज्ञात है—रूसी को छोड़कर विश्व की किसी भी भाषा में पहला व्यवस्थित लेख है। दूसरी तरफ 'भाषा-शिक्षण में यान्त्रिक ध्वनि विज्ञान का योग' है जिसमें बड़े ही सामान्य स्तर की कुछ सूचनाएँ संकलित हैं। डा० चतुर्वेदी, डा० मित्तल तथा डा० उप्रेति के लेख पुस्तक के शीर्षक से सम्बद्ध तो नहीं किए गए हैं किन्तु भाषा-शिक्षण के लिए उपयोगी हैं।

इस पुस्तक का व्याकरण से सम्बद्ध भाग अपेक्षाकृत अधिक सम्पन्न है। विशेषतः डा० सहाय तथा डा० वर्मा के लेखों का मैं विशेष रूप से उल्लेख करना चाहूँगा। इन दोनों में भाषा-शिक्षण के प्रसंग में भाषा-विज्ञान के दो मूर्द्धन्य सिद्धान्तों-टेग्मीमिक्स तथा ट्रांसफार्मेशनल ग्रामर—की उपयोगिता पर प्रकाश डाला गया है। श्री जयशंकर विद्यालंकार का लेख 'हिन्दी में अनुवर्तन की समस्या' भी काफी अच्छा बन पड़ा है। यों इसमें यदि यह भी ले लिया गया होता कि हिंदी में अनुवर्तक अधिक से अधिक कितने हो सकते हैं, तथा एक से अधिक अनुवर्तकों के होने पर अनुवर्ती किस का अनुवर्तन करता है तो और अच्छा होता। 'हिन्दी में नकारात्मक निपात' शीर्षक लेख में 'ना' को छोड़ दिया गया है। पश्चिमी हिन्दी प्रदेश में इसका भी प्रयोग काफी हो रहा है, न केवल बोलने के स्तर पर अपितु लेखन में भी। हिन्दी में नकारात्मकता के लिए कभी-कभी थोड़े का भी प्रयोग होता है—मोहन मूर्ख थोड़े है। यहाँ 'थोड़ा' प्रयोगतः 'नहीं' है। लेख में इसे भी लेकर विषय को और पूर्ण बनाया जा सकता था। अन्य खंडों में दो ही लेख पाठक का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित करते हैं। एक है डा० बाहरी का 'अर्थ विज्ञान तथा भाषा-शिक्षण' और दूसरा है डा० भाटिया का 'शब्द : शब्द का अध्ययन तथा भाषा-शिक्षण'। ये दोनों लेख भी काफी अच्छे हैं।

समवेततः यह संग्रह हिन्दी में अपने ढंग का पहला है और संस्थान के निदेशक डा० ब्रजेश्वर वर्मा इसके लिए बधाई के पात्र हैं। यों पद-विज्ञान तथा वर्तनी आदि कुछ अन्य विषयों को सम्मिलित करके इस संग्रह को विषय की दृष्टि से और भी उपयोगी तथा पूर्ण बनाया जा सकता था।

प्रूफ की भूलें काफी हैं। 'सम्मान' के स्थान पर 'संमान' का प्रयोग गलती है, या जान बूझकर किया गया है, मैं नहीं कह सकता। पुस्तक का आवरण सुन्दर है किन्तु वर्तनी की दो अव्यवस्थाएँ खटकती हैं। आवरण पर 'भाषा शिक्षण' तथा 'भाषा विज्ञान' को न तो मिलाकर लिखा गया है और न योजक चिह्न के साथ। इस विषय की पुस्तक के ऊपर ही ऐसी गलती नहीं होनी चाहिए थी।

—**डॉ० भोलानाथ तिवारी**

'शिक्षा-समस्या' विशेषांक

विद्वानों व पाठकों की दृष्टि में

शिक्षा एक जीवित और सक्रिय प्रक्रिया है। इसे सदा के लिए निश्चित और अनन्य परम्पराओं में बाँध देना किसी भी समाज अथवा राष्ट्र के विकास के लिए वांछनीय न होगा। आवश्यकता इस बात की है कि समय-समय पर शिक्षा की विविध समस्याओं पर शिक्षाविद, शिक्षाधिकारी और शिक्षा में रुचि रखने वाले व्यक्ति विचारों का आदान-प्रदान करते रहें और इन सामान्य अथवा विशिष्ट परिचर्चाओं के निष्कर्षों को वर्तमान शिक्षा व्यवस्था के संदर्भ में परखें और उनके कार्यान्वित के लिए हर सम्भव प्रयास करें। 'शिक्षा-समस्या विशेषांक' ने कदाचित् इसी दिशा में यह पहला महत्त्वपूर्ण कदम उठाया है।

सम्पादक की इस स्थापना से कदाचित् सभी सहमत होंगे कि "भारतीय शिक्षा प्रणाली विशुद्ध रूप से इग्लैण्ड के अनुकरण पर थोपी गई प्रणाली है, किन्तु आज इसको समूल नष्ट करके पुनः एक दूसरी प्रणाली का विकास करना न तो सम्भव है और न ही अभीष्ट है। आवश्यकता इस बात की है कि इसमें अभीप्सित सुधार करके इसे भारतीय समाज के अनुकूल बनाया जाय।" साहित्य-परिचय का यह विशेषांक सम्पादकीय के उक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिए मार्ग प्रशस्त करता है और शिक्षाशास्त्रियों एवं शिक्षाधिकारियों को स्वतन्त्रतापूर्वक विचार व्यक्त करने का अवसर प्रदान करता है। इसमें सुविज्ञ लेखकों ने अपनी-अपनी दृष्टि से शैक्षिक समस्याओं पर तर्क संगत ढंग से विचार व्यक्त किये हैं एवं सुझाव भी प्रस्तुत किये हैं। यह विशेषांक भारतीय शिक्षा के विभिन्न पक्षों पर शिक्षाशास्त्रियों, शिक्षाधिकारियों, प्राध्यापकों, लेखकों एवं साहित्यकारों के विचारों को एक स्थान पर एकत्र करके शैक्षिक समस्याओं का विभिन्न दृष्टिकोणों से विश्लेषण एवं समाधान प्रस्तुत करने के अपने लक्ष्य में पर्याप्त सफल रहा है। कुछ लेख भारत में शैक्षिक प्रशासन, शिक्षा और भाषा, पब्लिक स्कूल, महिला शिक्षा की आवश्यकता और उसका स्वरूप आदि विशेष रूप से रुचिकर सामग्री प्रस्तुत करते हैं।

—जमुना प्रसाद

उपशिक्षा निदेशक, उ० प्र०, इलाहाबाद

अंग्रेजी में शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं पर परिचर्चा होती रहती है और समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं में भी लेख छपते हैं। भारत सरकार शिक्षा सम्बन्धी जितनी विचार गोष्ठियाँ (सेमिनार) आयोजित करती है वे सब अँग्रेजी में होते हैं। उनमें जो निबन्ध पढ़े जाते हैं वे भी प्रायः सभी सामान्यतः अंग्रेजी में होते हैं और वे अंग्रेजी में प्रकाशित किये जाते हैं। भारत सरकार का शिक्षा-विभाग प्रायः ३३ नियमित पत्र-पत्रिकायें अंग्रेजी में निकालता है। हिन्दी में वह केवल तीन पत्रिकाएँ प्रकाशित करता है। शिक्षा की समस्याओं या शिक्षा के प्रयोगों और सिद्धान्तों से सम्बन्धित जो भी पत्रिकाएँ वह विभाग निकालता है वे सब अंग्रेजी में हैं। इन सब कारणों से हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में शिक्षा की समस्याओं पर बहुत कम लिखा जाता है। इसीलिए हम साहित्य परिचय के इस विशेषांक का स्वागत करते हैं।

इस अंक में ७७ उन विद्वानों के लेख हैं जो हिन्दी में शिक्षा-सम्बन्धी समस्याओं पर लिखते या लिख सकते हैं। अधिकांश लेख शिक्षा की नीति, उद्देश्य, उसकी प्रशासन सम्बन्धी समस्याओं से सम्बन्धित हैं। बहुत से लेख मुख्यरूप से परिचयात्मक हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती, गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर, स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गान्धी और श्री अरविन्द के शिक्षा सम्बन्धी विचारों पर भी लेख सम्मिलित किये गये हैं। कोठारी के आयोग की रिपोर्ट, अनुशासनहीनता, शिक्षा में राजनीति का प्रवेश आदि ज्वलन्त समस्याओं पर भी विचारपूर्ण निबन्ध हैं। इस प्रकार इस विशेषांक का महत्त्व यह है कि इसमें पहली बार हिन्दी पाठकों के लिए शिक्षा समस्याओं और स्थिति पर उपयोगी सामग्री प्रस्तुत की गई है जिससे वे अपने देश की शिक्षा के सम्बन्ध में स्वतन्त्र रूप से विचार कर सकें। इतने उपयोगी और ज्ञानवर्द्धक लेखों को एक साथ हिन्दी में सुन्दर और सुसम्पादित ढंग से प्रस्तुत करने के लिए सम्पादक और प्रकाशक हिन्दी संसार की कृतज्ञता के अधिकारी हैं। —सरस्वती (जून १९६९)

- मैथिलीशरण गुप्त के काव्य की आधार-भूमि
- मैथिलीशरण गुप्त : जीवनी और व्यक्तित्व
- मैथिलीशरण गुप्त की काव्य-कृतियाँ
- साकेत : एक पर्यालोचन
- मैथिलीशरण गुप्त की काव्य-कला
- मैथिलीशरण गुप्त की विचारधारा
- मैथिलीशरण गुप्त का भावलोक
- मैथिलीशरण गुप्त और भारतीय संस्कृति
- हिन्दी साहित्य में गुप्तजी का स्थान

मूल्य दस रुपये

मुझे प्रसन्नता है कि श्री दानबहादुर पाठक ने अपने इस ग्रन्थ में महाकवि मैथिलीशरण गुप्त के व्यक्तित्व और साहित्य का अनुशीलन किया है। उन्होंने न केवल उनके कवित्व पक्ष का उद्घाटन किया है वरन् गुप्त जी के काव्य के आधार भूमि व परम्परा को भी स्पष्ट किया है। गुप्त जी की अन्य कृतियों का परिचयात्मक विवरण देते हुए उन्होंने साकेत का अत्यन्त विस्तार से विवेचन किया है। इसके अन्तर्गत साकेत के कथानक, उसकी विचारधारा, भाषा शैली, भाव सृष्टि और उसके महाकाव्यत्व पर विशेष विचार किया गया है। यह अध्ययन उच्च कक्षा के विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त उपादेय है। इस ग्रन्थ के अन्तर्गत गुप्त जी की समस्त कृतियों के आधार पर उनके काव्य-शिल्प के विविध पक्षों का अनुशीलन और गुप्त जी के विभिन्न विषयों पर प्राप्त विचारों का आकलन है। इसके अन्तर्गत यह मूल तत्व उद्घाटित गया गया है कि गुप्त जी तत्वत: एक सांस्कृतिक कवि हैं।

इस प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ में पाठक जी ने गुप्त जी के व्यक्ति और कवि का सुन्दर विश्लेषण किया है। उनका यह विश्लेषण तर्क संगत एवं प्रमाण पुष्ट विवेचन से संयुक्त है और इस सांगोपांग अनुशीलन के लिए पाठक जी बधाई के पात्र हैं।

—भगीरथ मिश्र
सागर विश्वविद्यालय, सागर

प्रकाशक एवं मुद्रक : विनोदकुमार अग्रवाल। हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस के हेतु कैलाश प्रिंटिंग प्रेस, आगरा—२ में मुद्रित।

साहित्य-परिचय

राष्ट्रभाषा और साहित्य की गतिविधियों का परिचायक पत्र

अगस्त १९६९

आधुनिक युग जहाँ एक ओर वैज्ञानिक उपलब्धियों तथा भौतिक प्रसाधनों से समृद्ध होता जा रहा है, वहाँ दूसरी ओर मानव के सामने नई-नई समस्याएँ, आकांक्षाएँ, उलझनें और असीमित बाधाएँ उत्पन्न हो रही हैं। दौड़ ही दौड़ नज़र आती है। पूँजी प्रत्येक आदान-प्रदान का माध्यम बन चुकी है। इसकी प्राप्ति के लिये समाज का प्रत्येक व्यक्ति संघर्ष में रत है। मानव अपने जीवन के मूल्यों को बेचकर धन एकत्र करने में लगा हुआ है। इकट्ठा करने की भावना ने मानव के मानसिक संतुलन को डगमगा दिया है। वह स्वयं सुखी रहना चाहता है। फलस्वरूप मानसिक स्तर पर वह दिन प्रतिदिन अस्वस्थ होता जा रहा है। मानसिक स्वास्थ्य राष्ट्र की सम्पत्ति है। इसलिये हमें स्वयं सुखी रहने की कामना के साथ-साथ, पड़ौसियों के साथ मिल-जुल कर रहना चाहिये, अपनी संतान को स्वस्थ नागरिक बनाने का प्रयत्न करना चाहिये तथा समाज के अनुरूप व्यवहार करते हुए प्रत्येक व्यक्ति को अपनी अर्जित शक्ति के द्वारा लाभान्वित करना चाहिये।

—**डॉ० राज कुमार ओझा**
के० जी० के० कालिज, मुरादाबाद

इस मास

शिक्षा-मनोविज्ञान
(परिमार्जित आठवाँ संस्करण)
डा० एस० एस० माथुर : मूल्य १२.५०

औद्योगिक मनोविज्ञान
(नवीन प्रकाशन)
डा० आर० के० ओझा : मूल्य १२.५०

बाल व्यवहार विकास
(नवीन प्रकाशन)
डा० सरयूप्रसाद चौबे : मूल्य ७.००

शिक्षा में क्रियात्मक अनुसन्धान
(संशोधित द्वितीय संस्करण)
डा० के० पी० पाण्डेय : मूल्य ३.५०

हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ
(पूर्णतः परिवर्द्धित सातवाँ संस्करण)
डा० जयकिशनप्रसाद : मूल्य १०.००

हिन्दी साहित्य का आधुनिककाल
(तृतीय संस्करण)
डा० जयकिशनप्रसाद : मूल्य ६.००

पाश्चात्य काव्य शास्त्र : प्रश्नोत्तर में
(नवीन प्रकाशन)
कृष्णदेव शर्मा : मूल्य ४.००

महादेवी और संधिनी
(नवीन प्रकाशन)
डा० देशराज भाटी : मूल्य ३.५०

प्रकाशक
विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

आपके आदेश की प्रतीक्षा में
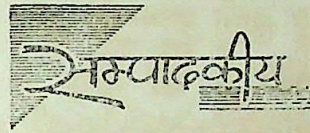
साहित्य-परिचय

[शिक्षा और साहित्य की प्रगति का परिचायक पत्र]

वर्ष ४ : अंक ८
अगस्त, १९६९

सम्पादक
विनोदकुमार अग्रवाल
एम. ए., साहित्यरत्न

प्रबन्ध सम्पादक
सतीशकुमार अग्रवाल

स्वामित्व
विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–२

मूल्य
एक प्रति ०.२५ : वार्षिक ५.००

साहित्य-परिचय
डॉ० रांगेय राघव मार्ग
आगरा–२
फोन : ७६४८६

शिक्षालयों में प्रवेश की समस्या

नया शैक्षिक सत्र प्रारम्भ हो गया है। विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों ने इस वर्ष का कार्य प्रारम्भ कर दिया है। अनेक छात्रों ने प्रवेश प्राप्त करके अपने अग्रिम अध्ययन की योजना बनाना प्रारम्भ कर दिया है, किन्तु बहुत बड़ी संख्या में छात्र प्रवेश से वंचित भी रहे हैं। शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर प्रवेशार्थियों की भीड़ थी जिनमें से कुछ ही प्रविष्ट हो सके, अनेक निराश हुए। ये निराश प्रवेशार्थी भग्नाशाओं एवं कुण्ठाओं से युक्त होकर समाज को, विशेषतः युवा समाज को, दूषित करेंगे। इनमें से कुछ बेकारों की सेना में प्रविष्ट होकर देश की आर्थिक दशा को जर्जर करेंगे तो कुछ नक्सलवाद का पाठ पढ़ना प्रारम्भ करेंगे। बहुत कम युवक कृषि अथवा उद्योग की ओर उन्मुख होकर स्वस्थ जीवन बिताना चाहेंगे।

प्रवेश की समस्या अत्यन्त गम्भीर है। क्या प्राथमिक विद्यालय, क्या माध्यमिक विद्यालय, क्या महाविद्यालय और क्या विश्वविद्यालय, सभी में सभी प्रवेशार्थियों को प्रवेश नहीं मिल पाता। मिल भी नहीं सकता क्योंकि प्रत्येक शिक्षालय की अपनी सीमाएँ हैं। स्वतन्त्रता के बाद देश में विद्यालयों एवं महाविद्यालयों की संख्या में आशातीत वृद्धि हुई है किन्तु पढ़ने वालों की संख्या में भी अत्यधिक वृद्धि हुई है। शिक्षा की ओर देश की नई पीढ़ी का उन्मुख होना शुभ लक्षण है किन्तु जिन उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को लेकर नई पीढ़ी शिक्षालयों में प्रवेश प्राप्त करना चाहती है, उन्हें देश की प्रगति का सूचक नहीं कहा जा सकता। अनेक छात्र शिक्षालयों में विद्योपार्जन के लिए न जाकर केवल समय काटने के लिए जाते हैं। माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् उन्हें कुछ सूझता नहीं, वे तुरन्त महाविद्यालय या विश्वविद्यालय में बिना किसी उद्देश्य के प्रविष्ट हो जाना चाहते हैं। आखिर वे करें भी तो क्या करें? जिस प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था हमारे देश के बहुसंख्यक शिक्षालयों में है, उसका भी तो कोई स्पष्ट उद्देश्य नहीं है।

प्रवेश की समस्या से निपटने के लिए अनेक उपाय हो सकते हैं। विद्यालयों एवं महाविद्यालयों की संख्या में वृद्धि एक उपाय है तो वर्तमान विद्यालयों की छात्र संख्या में वृद्धि दूसरा उपाय है। किन्तु ये उपाय रोग के ऊपरी एवं तात्कालिक उपचार ही कहे जा सकते हैं, स्थायी उपचार नहीं। सही उपाय तो यही समझ पड़ता है कि शिक्षा के प्रत्येक स्तर

[शेष पृष्ठ १५ पर]

शीघ्र ही आपके सामने...

'अक्षर' का एक और अद्भुत सैट

		अनुमानित
भिक्खु का नया उपन्यास "मौत की सराय"	हिन्दी के विलक्षण, लोकप्रिय कथाकार का फ्रान्सिसी राज्यक्रान्ति पर भारती का पहला और अकेला उपन्यास, एक इतिहास-कथा, रोमांचक, संवेदनशील और रोचक।	पृष्ठसंख्या ३००, मूल्य १५.०० डिमाई साइज में
जगदम्बाप्रसाद दीक्षित का पहला उपन्यास "कटा हुआ आसमान"	नये लेखक का चेतना-प्रवाही शैली में एक विलक्षण प्रयोग, बम्बई नगर की भागती-जिन्दगी से गुज़रता एक आदमी।	पृष्ठसंख्या २५०, मूल्य १२.०० डिमाई साइज में
राजेन्द्र यादव का शक्तिशाली उपन्यास "शह और मात"	सुजाता की डायरी, दूसरा प्यार हिन्दी के समर्थतम आलोचकों द्वारा प्रशंसित, पाठकों का बेहद प्रिय, उपन्यास-शैली में एक नया प्रयोग।	पृष्ठसंख्या २५०, मूल्य १२.०० डिमाई साइज में
बार्टोल्ट ब्रेख्त का कमलेश्वर द्वारा अनूदित विश्वप्रसिद्ध नाटक "खड़िया का घेरा"	आधुनिक नाटक के भरतमुनि, नाट्य-साहित्य का नया मोड़ देने वाले नाटककार की सजीव, परिपाटी से अलग, आधुनिक नाटक की नयी परम्परा का प्रवर्तक।	पृष्ठसंख्या १२५, मूल्य ७.०० डिमाई साइज में
रमेश कुन्तल मेघ द्वारा विचारोत्तेजक विवेचन "आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण"	आधुनिकता बोध की जटिल प्रक्रिया का व्यापक और विविध संदर्भों में खोजने का अद्वितीय प्रयास। समसामयिकता और आधुनिकता की पहचान का मौलिक यत्न।	पृष्ठसंख्या ४०५, मूल्य २५.००
कमलेश्वर की प्रसिद्ध समीक्षा पुस्तक "नई कहानी की भूमिका"	नई कहानी के अत्यन्त समर्थ लेखक कमलेश्वर, स्वतन्त्रता के बाद आने वाली कहानी और सारे साहित्य को समझने के लिए नये रचनात्मक ढंग से लिखी गयी पुस्तक, जिसकी बराबर माँग बनी है।	पृष्ठसंख्या २१५, मूल्य १०.०० डिमाई साइज में

अक्षर प्रकाशन प्रा० लि०

२।३६, अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली–६

शिक्षा और योग

शम्सुद्दीन
७/१५०, बैजनाथ पाड़ा, रायपुर, मध्यप्रदेश

शिक्षा जीवन से घनिष्ट रूप से संबंधित है तथा मानव जीवन के प्रारम्भ से ही यह किसी न किसी रूप में जीवन में विद्यमान रही है। इस प्रकार यद्यपि शिक्षा का प्रारम्भ मानव जीवन के उद्भव के साथ ही हो गया किन्तु औपचारिक रूप से इसकी व्यवस्था मानव के सामाजिक संगठन एवं सांस्कृतिक विकास के पश्चात ही सम्भव हो सकी। संसार में विभिन्न संस्कृतियों एवं सभ्यताओं के उद्भव तथा विकास के साथ-साथ यद्यपि शिक्षा के दर्शन एवं विचारधाराओं में परिवर्तन होता रहा किन्तु मानव जीवन में उसका स्थान व महत्त्व प्रत्येक युग और काल में सदा सर्वोपरि एवं अक्षुण्ण रहा है।

शिक्षा की इस महत्ता के बावजूद भी इसके सर्वमान्य अर्थ एवं स्वरूप के सम्बन्ध में कभी किसी एकमत का प्रतिपादन नहीं हो सका। आज भी अन्य सामाजिक विज्ञानों की तरह शिक्षा अपनी विविधवादी प्रकृति एवं व्यापक रुचि तथा विचार-विमर्श का विषय होने के कारण मत-विभिन्नता से युक्त है। यही कारण है कि आज न केवल शिक्षाशास्त्री वरन राजनैतिक नेता, समाज-सुधारक, धार्मिक गुरु एवं सामान्य जनता को इस पर विचार-विमर्श करने की आवश्यकता है ताकि शिक्षा के किसी एक सर्वमान्य स्वरूप का निर्धारण किया जा सके।

विभिन्न युगों में शिक्षा के विभिन्न उद्देश्यों का निर्धारण किया गया। ईसा से पूर्व ३८४ में प्रसिद्ध दार्शनिक एवं शिक्षाशास्त्री अरिस्टाटल ने शिक्षा का उद्देश्य 'सद्गुण के विकास द्वारा आनन्द की प्राप्ति' बताया। प्लेटो ने 'शरीर और आत्मा की चरम उन्नति' शिक्षा का उद्देश्य निरूपित किया। एक दूसरे दार्शनिक साक्रेटीज ने ईसा पूर्व ४६६ में कहा कि शिक्षा का लक्ष्य 'असत्य को दूर कर सत्य की खोज' है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि समाज और सभ्यता के आदिकाल में शिक्षा के नैतिक व आध्यात्मिक पक्ष पर जोर दिया गया।

१६वीं शताब्दी के अन्त में भी प्रसिद्ध धर्म गुरु कामेनियस ने कहा—'सम्पूर्ण मानव का विकास' ही शिक्षा है तथा मानव का अन्तिम लक्ष्य ईश्वर के साथ आनन्द की प्राप्ति है। आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा के आदि गुरु पेस्टालाजी ने १८वीं सदी में शिक्षा का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा—'शिक्षा से तात्पर्य मनुष्य की प्राकृतिक शक्तियों के स्वाभाविक, सामंजस्यपूर्ण एवं उन्नतिशील विकास' से है। आधुनिक युग के पाश्चात्य प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री जॉन डिवी ने जीवन के प्रतिदिन के अनुभवों को सर्वाधिक महत्त्व दिया तथा इनके द्वारा जीवन के स्वाभाविक विकास में सुधार व परिवर्तन लाना ही शिक्षा का उद्देश्य निरूपित किया।

राष्ट्रपिता महात्मागांधी का शिक्षा दर्शन सम्पूर्ण मानव जाति के मन और हृदय में परिवर्तन व सुधार पर केन्द्रित था। वे ईश्वर के एकत्व में और इसीलिए मानव मात्र के एकत्व में विश्वास करते थे। उनके अनुसार 'सत्य' ही ईश्वर है और यह 'सत्य' और कुछ नहीं केवल हमारी अन्तर आत्मा की आवाज है। इस 'सत्य' अथवा ईश्वर को प्राप्त करने का एकमात्र साधन अहिंसा और प्रेम है। ईश्वर से साक्षात्कार के लिए हृदय की पवित्रता आवश्यक है जो अहिंसा और प्रेम से ही सम्भव है। किसी का बुरा सोचना अथवा झूठ बोलना हिंसा है जो मन व हृदय को अपवित्र बनाती है।

शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण करते हुए महात्मा गांधी ने कहा कि ये दो प्रकार के हैं—(१) तात्कालिक (Immediate); (२) अन्तिम (Ultimate)। शिक्षा का तात्कालिक उद्देश्य पूर्ण जीवन के लिए तैयारी, आस-

पास के वातावरण के साथ समायोजन, स्वभाव की पूर्णता, चरित्र-निर्माण एवं व्यक्तित्व का सामंजस्यपूर्ण विकास है किन्तु दूसरे प्रकार का उद्देश्य इससे ज्यादा महत्त्व का है। शिक्षा का अन्तिम लक्ष्य ईश्वर के ज्ञान से सम्बन्ध रखता है जो मनुष्य को आत्मज्ञान (Self realization) की ओर ले जाता है तथा जिसके द्वारा वह ससीम (Finite) को असीम (Infinite) में मिला देता है। शिक्षा का यह अन्तिम लक्ष्य सभी तात्कालिक लक्ष्यों को अपने आप में समाये रखता है।

इस प्रकार शिक्षा के विभिन्न उद्देश्यों एवं लक्ष्यों पर विशद विवेचन के पश्चात प्रश्न यह उठता है कि इनकी प्राप्ति कैसे की जाय? आज शिक्षा का जो स्वरूप हमारी शालाओं में देखने में आता है उससे तो गहरी निराशा का ही अनुभव होता है। आज हमारी शालायें विभिन्न प्रकार के असामाजिक तत्त्वों को जन्म दे रही हैं। ये सुधार और परिवर्तन के नाम पर नित नई समस्यायें पैदा करते हैं। आये दिन शालाओं में छोटी-छोटी बातों को लेकर छात्रों द्वारा विरोध प्रदर्शन, घेराव, हड़ताल एवं नारेबाजी की जाती है तथा विद्या के ये मंदिर अब झगड़े, मारपीट एवं पुलिस हस्तक्षेप के शिकार हो रहे हैं।

इस सबका एकमात्र कारण यह प्रतीत होता है कि छात्रों में जो असीम शक्ति का प्रवाह बह रहा है उसका सही नियन्त्रण एवं सदुपयोग नहीं हो रहा है। छात्रों के पास खाली समय बहुत है तथा सृजनात्मक एवं रुचि-कारक कार्यक्रमों के अभाव में ये छात्र इधर-उधर भटक कर इस छलकती हुई शक्ति का अपव्यय कर रहे हैं। दूसरी बात इस शक्ति के सात्विक नियन्त्रण का कोई साधन शालाओं के पास नहीं है। भारत में ही नहीं वरन् सम्पूर्ण विश्व के छात्र जगत की आज यही ज्वलंत समस्या है जिसका हल ढूँढ़ने में बड़े-बड़े विचारक एवं विद्वान लगे हुए हैं।

छात्रों की इस अनियन्त्रित शक्ति के दुरुपयोग का हल शिक्षा में योग के समावेश से किया जा सकता है। वैसे योग एक महान विद्या है और इसका शास्त्रीय ज्ञान एवं अभ्यास सम्भवतः औसत छात्र तथा व्यक्ति के सामर्थ्य के भीतर न हो; किन्तु जहाँ तक योग का सरल, सामान्य एवं व्यावहारिक रूप है यह शिक्षा में अनुशासनहीनता का निराकरण करने तथा ज्ञान प्राप्ति में एकाग्रता, चिन्तन एवं मनन को प्रोत्साहित करने में अवश्य ही सहायक सिद्ध हो सकता है।

आज छात्रों का औसत स्वास्थ्य गिरा हुआ दिखाई देता है। इसका प्रमुख कारण उनके जीवन में संयम और नियम का अभाव है। छात्र में कर्तृत्व शक्ति के स्थान पर आलस की प्रमुखता दिखाई देती है। यदि शालाओं में योगाभ्यास की कुछ क्रियाओं का आयोजन किया जाय तो बालकों में नियम और संयम के साथ-साथ चुस्ती का प्रादुर्भाव होगा और उनका आलस दूर हो जायगा। फिर बालक कक्षाओं में बैठकर ऊँघेंगे नहीं वरन् ध्यानपूर्वक पाठ को सुनेंगे व समझेंगे। शारीरिक स्वास्थ्य पर मन की स्वस्थता निर्भर होती है। अतः योगाभ्यास से यदि शरीर और मन को स्फूर्ति प्राप्त हो गई तो कक्षा में ध्यानभंग एवं ज्ञान के प्रति अरुचि अपने आप समाप्त हो जावेगी।

आज बालकों में अत्यधिक वाचालता देखने में आती है। औसत बालक व्यर्थ बातें करते तथा गप्पें मारते हुए दिखाई देते हैं। इस प्रकार ये न केवल अपनी शक्ति का अपव्यय करते हैं वरन् झगड़े फसाद तथा कई सामाजिक समस्याओं को जन्म देते हैं। बालकों को कक्षा में किसी विषय पर बोलने को कहा जाय तो वे संभवतः ५ मिनिट में थक जायेंगे किन्तु शिक्षक के अभाव में या खाली समय में जोर-जोर से घण्टों बातें करते रहने पर भी वे थकते नहीं। कभी-कभी तो जब गम्भीर कार्यक्रम होते रहते हैं, छात्रों को कुछ मिनिटों के लिए भी शांत रखना कठिन हो जाता है। इसके लिये छात्रों में मौन रखने का अभ्यास कराना आवश्यक है। योग में मौन को बड़ा महत्त्व दिया गया है। इससे न केवल मन की चंचलता नष्ट होती है वरन व्यक्ति को असीम शक्ति भी प्राप्त होती है। मौन के द्वारा छात्रों में एकाग्रता ध्यान, चिन्तन, व मनन करने की शक्ति का प्रादुर्भाव किया जा सकता है। प्रतिदिन अध्ययन के समय में से कुछ समय इस मौन के लिये रखा जाय। इसकी अवधि एक-दो मिनिट से प्रारम्भ कर क्रमशः बढ़ाई जा सकती है। धीरे-धीरे बालक इससे इतने प्रभावित होंगे कि वे घर में भी प्रतिदिन कुछ समय अथवा सप्ताह में किसी एक दिन इसका अभ्यास करेंगे। यह मौन छात्रों के लिये बड़ा लाभकारी सिद्ध हो सकता है।

[शेष पृष्ठ १५ पर]

किशोर बच्चों में नैतिक विकास

जमनालाल बायती
राजकीय शै० एवं व्या० नि० केन्द्र, बीकानेर (राज०)

नैतिक विकास का सम्बन्ध अच्छे बुरे या श्रेय प्रेय के ज्ञान से जुड़ा हुआ है। उम्र की वृद्धि के साथ-साथ ज्ञान वृद्धि से नैतिक विकास का स्तर बढ़ता है। कक्षा के कमरे में बच्चों को पढ़ाया जाता है कि सड़क पर केले के छिलके नहीं डालने चाहिए पर बच्चे सड़क पर केले के छिलके डालते हैं तथा व्यक्ति को गिरते हुए देखकर हँसते भी हैं। बच्चे नल खुला छोड़कर पानी बहाते रहते हैं। वे बस में बैठते समय या डाकघर से पोस्टकार्ड, लिफाफे, टिकट आदि खरीदते समय पंक्ति नहीं बनाते हैं। स्थिति यहीं तक हो, ऐसी बात नहीं है। स्वयं शिक्षक जो नागरिकशास्त्र पढ़ाते हैं, बच्चों को सुनागरिक के गुणों के बारे में जानकारी देते हैं, वे स्वयं भी अपने मकान की ऊपर की मंजिल से गंदा पानी ऊपर से ही नीचे डालते हैं। चाहे इससे भले ही राह से निकलने वालों के कपड़े खराब ही क्यों न हों ? कभी यदि बिजली कारणवश जलती-जलती बंद हो जाय तो वे स्विच आफ करना पसन्द नहीं करते, इससे जब भी बिजली आय और वे वहाँ नहीं हुए तो बिजली निरर्थक जलती रहेगी। यही स्थिति कभी-कभी पानी के नल के साथ भी हो सकती है। यह केवल वैयक्तिक हानि ही नहीं राष्ट्रीय हानि एवं वस्तुओं का दुरुपयोग है। जब स्वयं शिक्षकों की यह स्थिति है तो बच्चों की भी यही स्थिति होना कोई आश्चर्य की बात नहीं।

बच्चों के नैतिक स्तर को आंकने के लिये ६ स्थितियों वाली एक प्रश्नावली, जिसे लेखक के एम० एड० के साथी श्री राधेशरणजी माथुर ने तैयार की है और जिसमें नैतिक व्यवहार सम्बन्धी दैनिक जीवन में होने वाली ६ घटनायें दी गई हैं के माध्यम से राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, कमोल (उदयपुर) को माध्यमिक कक्षाओं के छात्रों से उत्तर प्राप्त किये गये। छात्र अधिक से अधिक ६ सर्वोत्कृष्ट को चिन्हित कर सकते थे यदि संख्यात्मक रूप से बताया जाय तो वे (६ × ५) तीस अंक प्राप्त कर सकते थे तथा कम से कम शून्य। जिन छात्रों को सेम्पल में संयुक्त किया गया उनके आयु सम्बन्धी आँकड़े इस प्रकार हैं—

	संख्या	प्रतिशत
१३ वर्ष तक	७	१०·४
१४-१५ वर्ष तक	३४	५०·७
१६ से ऊपर	२६	३८·९

इस तालिका से यह स्पष्ट है कि लगभग आधे विद्यार्थी १४-१५ वर्ष की आयु के हैं तथा १६ वर्ष से ऊपर की आयु के बालक ३८·९ प्रतिशत हैं जबकि १०·४ प्रतिशत बालक १३ वर्ष या इससे भी कम आयु के हैं।

यह आवश्यक है कि उपर्युक्त अध्ययन के लिए माता-पिताओं से सम्बन्धित कुछ तथ्यों पर भी ध्यान दिया जाय। इस सम्बन्ध में तीन प्रकार के तथ्य, शैक्षणिक स्तर, आय तथा व्यावसायिक जानकारी प्राप्त की गई—

	संख्या	प्रतिशत
निरक्षर	१९	२८·३
साक्षर एवं कक्षा २ तक पढ़े लिखे	२६	३८·९
कक्षा ३ से कक्षा ५ तक पढ़े लिखे	२१	३१·३
कक्षा ६ से कक्षा १०वीं तक पढ़े लिखे	१	१·५

माता-पिताओं के शिक्षा सम्बन्धी आँकड़े संतोषजनक हों, ऐसी बात नहीं। सेम्पल में २८·३ प्रतिशत माता-पिता निरक्षर हैं तथा ३१·३ प्रतिशत कक्षा ३ से कक्षा ५ तक पढ़े लिखे हैं। पर इनसे भी अधिक साक्षर एवं कक्षा २ तक पढ़े लिखे माता-पिता ३८·९ प्रतिशत हैं। सेम्पल में केवल एक पिता मैट्रिक स्तर तक शिक्षित है जिसका प्रतिशत १·५ है। अभिभावकों की आय सम्बन्धी आँकड़े इस प्रकार हैं—

हमारे प्रमुख प्रकाशन

साहित्यिक

हिन्दी साहित्य : प्रकीर्ण विचार :
डॉ. शान्तिस्वरूप गुप्त ८.००
हिन्दी काव्य के आलोक स्तम्भ : डॉ. गुप्त १०.००
प्रसाद के नाटक एवं नाट्यशिल्प : डॉ. गुप्त ६.००
उपन्यासकार प्रेमचन्द : सं. डॉ. सुरेशचन्द गुप्त १२.५०
बिहारी मीमांसा : डॉ. रामसागर त्रिपाठी १०.००
हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ (चतुर्थ संस्करण) :
डॉ. शिवकुमार शर्मा, एम. ए. (हिन्दी व संस्कृत) ८.००

सटीक काव्य

बिहारी भाष्य : डॉ. देशराजसिंह भाटी १५.००
कबीर ग्रन्थावली : प्रो० पुष्पपालसिंह १०.००
जायसी ग्रन्थावली : डॉ. श्रीनिवास शर्मा १०.००
मीराबाई पदावली : प्रो. देशराजसिंह भाटी ५.००
विद्यापति पदावली : प्रो० कृष्णदेव शर्मा ५.००
सूरदास और उनका भ्रमरगीत: डॉ. श्रीनिवास शर्मा ७.००
केशव और उनकी रामचंद्रिका: देशराजसिंह भाटी ७.००
रसखान ग्रन्थावली : प्रो. देशराजसिंह भाटी ५.००
बिहारी सतसई : प्रो. विराज एम. ए. ३.५०
घनानन्द कवित्त : प्रो० लक्ष्मणदत्त गौतम ३.५०
कबीर साखी : प्रो. पुष्पपालसिंह एम. ए. ३.५०
रासपंचाध्यायी और भँवरगीत : विश्वम्भर अरुण ३.००

निबन्ध

बृहत् साहित्यिक निबन्ध (लायब्रेरी सं०) २५.००
साहित्यिक निबन्ध : डॉ. शान्तिस्वरूप गुप्त ८.००
अशोक निबन्ध सागर : प्रो. विजयकुमार ५.००
अशोक निबन्ध माला : प्रो. शिवप्रसाद ३.५०

टीकाएँ

साकेत की टीका : प्रो. ब्रजभूषण शर्मा ५.००
कामायनी की टीका : प्रो. देशराजसिंह भाटी ५.००
प्रियप्रवास की टीका : प्रो. लक्ष्मणदत्त गौतम ५.००
भ्रमरगीत सार की टीका : प्रो. पुष्पपालसिंह ५.००
यशोधरा की टीका : प्रो. श्याम मिश्र ५.००
दिनकर और उनकी उर्वशी : प्रो. देशराजसिंह ७.५०
निराला और उनकी अपरा : देशराजसिंह ५.००
महादेवी वर्मा और दीपशिखा : शान्तिस्वरूप गुप्त ४.५०
दिनकर और उनका कुरुक्षेत्र (द्वि० सं०) : भाटी ३.५०
रत्नाकर और उनका उद्धव शतक (द्वि० सं०) : ,, २.५०
पंत और उनका रश्मिबन्ध (द्वि० सं०) : ,, ४.००
महादेवी वर्मा और उनकी संधिनी : प्रो. श्याममिश्र ३.५०
आधुनिक कवि पंत की टीका : प्रो. कृष्णदेव शर्मा ३.५०

प्रमुख कवि

कबीर : प्रो. कृष्णदेव शर्मा २.५०
तुलसीदास : प्रो. सतीशकुमार २.५०
सूरदास : प्रो. शिवशंकर सारस्वत २.५०
कवि प्रसाद (द्वि० सं०) : भारतभूषण 'सरोज' २.५०
महादेवी वर्मा (तृ० सं०) : देशराजसिंह भाटी २.५०
बिहारी : प्रो. देशराजसिंह भाटी २.५०

प्रमुख कृतियों की समीक्षाएँ

कामायनी : देशराजसिंह भाटी २.५०
साकेत : प्रो. ब्रजभूषण शर्मा २.५०
प्रियप्रवास : प्रो. कृष्णकुमार २.५०
मृगनयनी समीक्षा : देशराजसिंह भाटी २.५०
प्रेमचन्द : सतीशकुमार एम. ए. २.५०
गोदान : डॉ. रामगोपाल शर्मा २.५०
गबन : प्रो. रमेशचन्द्र गुप्त २.५०
चन्द्रगुप्त : प्रो. कृष्णदेव शर्मा २.५०
स्कन्दगुप्त : प्रो. कृष्णदेव शर्मा २.५०
ध्रुवस्वामिनी : रमेशचन्द गुप्त २.५०
चिन्तामणि (प्रथम भाग) : प्रो. कृष्णलाल २.५०
चिन्तामणि (द्वितीय भाग) : देशराजसिंह भाटी ४.५०
बाणभट्ट की आत्मकथा : प्रो. देशराजसिंह भाटी ३.५०
अशोक के फूल : एक विवेचन : कृष्णदेव शर्मा २.५०
मुद्राराक्षस : प्रो. देशराजसिंह भाटी ३.५०
बूँद और समुद्र : प्रो. श्याम मिश्र ५.००
अमृत और विष : प्रो. श्याम मिश्र ५.००

काव्यशास्त्रीय

पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त :
(द्वितीय संस्करण) डा. शान्तिस्वरूप गुप्त १०.००
भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धान्त :
डॉ. कृष्णदेव झारी ८.००
पाश्चात्य काव्य समीक्षा : प्रो. ब्रजभूषण शर्मा ३.५०
भारतीय काव्य समीक्षा : श्रीनिवास शर्मा ३.००
भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र :
डॉ. देशराजसिंह भाटी ६.००
रस छन्द अलंकार (द्वि० सं०) : कृष्णदेव शर्मा १.५०
साहित्यालोचन : प्रो. विजय कुमार ३.००
भाषा विज्ञान (तृ० सं०) : प्रो. हेमदेव शर्मा २.५०

अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली-६

	संख्या	प्रतिशत
४०० रु० से नीचे	१४	२०.६
४०० से ७०० रु० तक	२०	२९.०
७०१ से १००० रु० तक	६	८.२
१००१ से १५०० रु० तक	१२	१८.४
१५०० रु० से ऊपर	१५	२२.५

इन आँकड़ों के अवलोकन से स्पष्ट है कि सेम्पल में सभी प्रकार के अभिभावक हैं। आय सम्बन्धी आँकड़े जान लेने के बाद व्यवसाय सम्बन्धी आँकड़े देखिये—

	संख्या	प्रतिशत
नौकरी	६	९.०
व्यापार	२१	३१.३
खेती	३४	५०.७
मजदूरी	६	९.०

इन आँकड़ों से विदित होता है कि व्यापार व खेती करने वाले अभिभावक ज्यादा हैं—जो क्रमशः ३१.३ तथा ५०.७ प्रतिशत है। नौकरी या मजदूरी करने वाले अभिभावक बराबर हैं ९ प्रतिशत, स्पष्ट है कि आधा सेम्पल खेतिहर वर्ग का है।

नैतिक स्तर सम्बन्धी प्राप्त आँकड़ों का सारिणीकरण करके निम्न रूप में दर्शाया गया है—

		संख्या	प्रतिशत
सर्वोत्कृष्ट	३० से २८ गुणाङ्क	२८	४१.८०
औसत	२७ से २३ ,,	२०	२९.८५
निकृष्ट	२३ से कम पर १४ से कम नहीं	१९	२८.३५

सेम्पल में २८ बच्चे अर्थात् ४१.८० प्रतिशत विद्यार्थी सर्वोत्कृष्ट नैतिक स्तर के हैं, इन में भी तीन छात्रों ने सर्वाधिक अंक ३०-३० प्राप्त किये हैं जिनका प्रतिशत ४.६ आता है। तथा शेष २५ छात्रों ने २८-२८ अंक प्राप्त किये हैं। ऐसी स्थिति में यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इन बच्चों के मस्तिष्क में भले-बुरे या अच्छे-खोटे का विचार स्पष्ट है तथा समझते हैं। औसत नैतिक व निकृष्ट विद्यार्थियों की संख्या लगभग समान है, अन्तर कोई वजनदार नहीं है। औसत नैतिक स्तर वालों को सर्वोत्कृष्ट नैतिक बनाना तथा निकृष्ट को नैतिकतापूर्ण जीवन बिताने को तैयार करना शिक्षक समाज के सामने बहुत बड़ी चुनौती है। शिक्षक इस क्षेत्र में बहुत कुछ प्रयास कर सकते हैं। शिक्षक ही बच्चों के मस्तिष्क में परिवर्तन ला सकते हैं। नाई व धोबी से इसके लिए आशा नहीं की जा सकती।

नैतिक शिक्षा की आवश्यकता

कुछ शिक्षाविदों, सामाजिक कार्यकर्ताओं एवं नेताओं का तो यहाँ तक कहना है कि आज के विद्यार्थियों में फैलती हुई अनुशासनहीनता, अशिष्टता, हुल्लड़बाजी, निराशा एवं उच्छृङ्खलता का मुख्य कारण नैतिक शिक्षा का अभाव है। विद्यार्थियों में स्वतन्त्रता को परम स्वच्छन्दता समझ लिया है। नैतिक शिक्षा इन सबके लिये उपयोगी सिद्ध हो सकती है। इससे गुरु-शिष्यों के सम्बन्धों में भी सुधार होगा।

सामाजिक मान्यतायें शिथिल होती जा रही हैं, लोग अपने संकुचित स्वार्थों के लिये ही सोचते हैं, सामाजिक भावना का लोप होता जा रहा है। विद्वानों की राय के अनुसार नैतिक शिक्षा बच्चों में मानव धर्म का विकास कर सकती है। समूह गान भी इसका एक सुन्दर माध्यम है।

सेण्ट्रल एडवाइजरी बोर्ड आफ एजूकेशन ने १९४४ में नैतिक शिक्षा का महत्त्व इस प्रकार स्पष्ट किया है—"यदि नैतिक शिक्षा का आधार पाठ्यक्रम में नहीं होगा तो वह अन्त में निष्फल प्रयास होगा।"........ "यदि कोई राष्ट्र इन गुणों (नैतिक मूल्यों) से अपने आप को वंचित कर दे और अपना ध्यान केवल भौतिक सुख साधनों के संग्रह करने में ही केन्द्रित करले तो ये सुख साधन चाहे कितने ही बहुमूल्य हों, पर वह राष्ट्र निरा प्राणहीन देह के समान होगा।" (वही : २७वीं मिटिंग की प्रोसिडिंग्स, १९६०)

इङ्गलैंड के स्कूल पब्लिक स्कूलों के ढंग पर चलते हैं जो गिरजाघरों से जुड़े रहते हैं, जहाँ समय-समय पर छात्रों को नैतिक शिक्षा दी जाती है।

कुल मिलाकर नैतिक शिक्षा की व्यवस्था इस प्रकार होनी चाहिए कि इससे छात्र का व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन सामाजिक सन्दर्भ में संचालित हो।

नैतिक शिक्षा देने का तरीका

शिक्षाशास्त्रियों की राय है कि नैतिक शिक्षा कक्षा

शिक्षण के समान ३५ या ४० मिनट के पीरियड में नहीं दी जा सकती और न ही दी जानी चाहिए। ऐसा करने पर लाभ के स्थान पर हानि भी हो सकती है। यदि कक्षा शिक्षण के समान ही यह शिक्षा भी दी गई तो ऐसा करने से विद्यार्थियों को केवल सूचना भर मिल सकेगी तथा इससे नैतिक शिक्षा का उद्देश्य ही समाप्त हो जायगा। वे इसके व्यावहारिक रूप पर अधिक जोर देते हैं। उनकी राय के अनुसार बच्चों को ऐसी स्थितियों में रखा जाना चाहिए कि वे वास्तविक रूप में नैतिक गुणों का विकास कर सकें, उन्हें जीवन में उतार सकें, शाला के दैनिक जीवन में ऐसी अनेक स्थितियाँ हो सकती हैं। खेल के मैदान में होड़ भावना इसका एक उदाहरण हो सकता है। शिक्षक का कार्य है कि वह बच्चों में स्वस्थ होड़ या प्रतियोगिता का विकास हो। कहीं ऐसा न हो कि होड़ को लेकर बच्चों में मन-मुटाव हो जाय या वे एक-दूसरे से ईर्ष्या करने लगें। डाकघर से पोस्टेज खरीदते समय तथा बस में प्रवेश करते समय पंक्ति बनाकर अपनी बारी आने पर प्रवेश की आदत डाली जा सकती है। इससे बच्चों में दूसरों के प्रति सहानुभूति पैदा होगी। खाना खाकर या नाश्ता करके हर कहीं गन्दगी नहीं फैलानी चाहिए। कागज के टुकड़े या पत्ते इधर-उधर न फैलाने चाहिए इससे दूसरों को उनके काम में बाधा हो सकती है। इससे बच्चों को इस बात का भान होगा कि दूसरों का मन नहीं दुखाना चाहिए। उनके मन को ठेस नहीं पहुँचाना चाहिए। बच्चों में इस बात का विकास किया जाय कि वे शाला के सहकारी भंडार से वस्तुयें खरीदें। इससे वे जानेंगे कि विद्यार्थी समाज को ही लाभ होगा, उचित मूल्य पर अच्छी वस्तुयें मिलेंगी। ऐसा करने से मिलावट करने वाले व्यापारी स्वयं कम हो जायेंगे। शाला से जुड़ा हुआ यदि कोई बगीचा या खेत है तो बच्चों को अवसर दिया जाय कि वे वहाँ कार्य कर सकें। इससे उनमें श्रम के प्रति निष्ठा पैदा होगी जो आज के विद्यार्थी समाज के लिए बहुत आवश्यक है। श्रम के प्रति गौरव के साथ-साथ बच्चों के हृदय में मानवता, राष्ट्रप्रेम, स्वावलम्बन तथा सेवा कार्य के बीज बोये जा सकेंगे।

सावधानियाँ

इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाना चाहिए कि बच्चों के सामने झूठ न बोला जाय, बच्चों के सामने गलत अवांछनीय उदाहरण प्रस्तुत न किया जाय। कई बार अभिभावक तथा शिक्षक इस बात का ध्यान नहीं रखते, बच्चों का मस्तिष्क बड़ा कोमल होता है, स्लेट के समान स्वच्छ होता है। वे बड़ों की नकल करते हैं। नकल से वे बहुत सी बातें सीखते हैं। ऐसा ही एक मनोरंजक उदाहरण देखिये—एक सज्जन मिलने के लिये किसी महाशय जी के घर पर पधारे। पर महाशय जी उस समय उनसे मिलना नहीं चाहते थे। (लेखक का उद्देश्य इस समय न मिलने के कारणों से नहीं है) अतः बच्चे से कहला दिया कि दरवाजे पर जाकर कह दो कि पिताजी घर पर नहीं है। अबोध भोले-भाले बच्चे ने दरवाजे पर जाकर कह दिया कि 'पिताजी कहला रहे हैं कि पिताजी घर पर नहीं हैं।' ऐसे उदाहरणों की संख्या भले ही कम हो पर वास्तविक जीवन में ऐसे उदाहरण देखने को अवश्य मिल जाते हैं। ऐसे उदाहरणों से हर स्थिति में बचना चाहिए।

धार्मिक शिक्षा के माध्यम से नैतिक विकास को बल मिल सकता है। स्वयं धार्मिक शिक्षा लक्ष्य नहीं है, लक्ष्य तो पूर्ण नैतिक जीवन है और धार्मिक शिक्षा उसकी प्राप्ति के लिये साधन के रूप में कार्य कर सकती है। सभी धर्मों के मूलभूत सिद्धान्त एक ही हैं कि धर्म समस्त समुदाय के निर्माण का एकमात्र साधन है। अतः विद्यालयों में इस प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए।

◉

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा के कुछ प्रकाशन

● प्रशिक्षण

भारतीय शिक्षा का इतिहास (चतुर्थ संस्करण, १९६८)	जौहरी एवं पाठक	१०.००
An Outline of Indian Education	,,	9.00
भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ (१९६९)	,,	९.००
भारतीय शिक्षा की सामयिक समस्याएँ (१९६९)	चौधरी एवं उपाध्याय	९.००
भारतीय शिक्षा के आयोग [कोठारी कमीशन सहित)	पाठक एवं त्यागी	६.००
शिक्षा आयोग [कोठारी कमीशन] (द्वितीय संस्करण, १९६८)	,,	५.००
शिक्षा समस्या विशेषांक (१९६९)	[साहित्य-परिचय]	५.००
शिक्षा मनोविज्ञान (आठवाँ संस्करण, १९६९)	डा: एस. एस. माथुर	१२.५०
Educational Psychology (Third Edition, 1968)	Dr. S. S. Mathur	16.00
शिक्षा के सामान्य सिद्धान्त (१९६८)	पाठक एवं त्यागी	९.००
शिक्षा सिद्धान्त (शिक्षा के दार्शनिक तथा सा० आधार, १९६९)	डा. एस. एस. माथुर	७.००
शिक्षण कला (१९६८)	,,	७.००
सफल शिक्षण कला (१९६९)	पाठक एवं त्यागी	७.००
कक्षाध्यापन, पाठ संकेत निर्माण एवं विशिष्ट विधियाँ (१९६९)	भाई योगेन्द्रजीत	५.००
Basic Principles of Education	Johri & Pathak	12.50
विद्यालय प्रशासन एवं संगठन (१९६९)	एस. पी. सुखिया	६.००
शैक्षिक एवं विद्यालय प्रशासन (१९६७)	भाई योगेन्द्रजीत	६.००
स्वास्थ्य शिक्षा (पाँचवाँ संस्करण, १९६९)	डा. जी. पी. शेरी	७.००
Health Education	Dr. S. P. Chaube	10.00
शिक्षा में क्रियात्मक अनुसन्धान (१९६९)	के. पी. पाण्डेय	३.५०
शिक्षा और मनोविज्ञान में सरल सांख्यिकी (१९६९)	,,	४.००
शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन (१९६७)	रामपालसिंह एवं राधावल्लभ उपाध्याय	६.००
शैक्षिक पर्यवेक्षण के मूल तत्व (१९६९)	पारसनाथ राय	५.००
शिक्षा दर्शन (एम. एड्. तथा एम. ए: विद्यार्थियों के लिए)	डा. रामशकल पाण्डेय	८.००
शिक्षा के दार्शनिक सिद्धान्त (१९६९)	पाठक एवं त्यागी	७.००
सोवियत जनशिक्षा का स्वरूप	प्रो. नरेन्द्रसिंह चौहान एवं राजेन्द्रपालसिंह	४.००
इंग्लैंड की शिक्षा प्रणाली	एच. एन. सिंह	४:५०
महान पश्चिमी शिक्षा-शास्त्री	डा. रामशकल पाण्डेय	५.००
अन्य भाषा शिक्षण	डा. महावीरसरन जैन	४.००

नैतिक-शिक्षा शिक्षण (१९६९)	के. सी. मलैया	३.००
शिक्षक प्रशिक्षण	विद्यावती मलैया	४.००
कक्षा शिक्षण में सहायक सामग्री (१९६७)	एम. एल. चौरसिया	३.००
A Sociological Approach to Indian Education	Dr. S. S. Mathur	12.50
Nehru on Society, Education and Culture	Dr. Sitaram Jayaswal	5.00
हिन्दी भाषा शिक्षण (१९६८)	भाई योगेन्द्रजीत	६.००
मातृभाषा शिक्षण (१९६८)	के० क्षत्रिया	६.००
इतिहास शिक्षण (१९६८)	गुरुसरनदास त्यागी	४.५०
सामाजिक अध्ययन तथा नागरिक शास्त्र शिक्षण (१९६७)	,,	४.००
नागरिक शास्त्र शिक्षण (१९६८)	,,	३.५०
भूगोल शिक्षण (१९६८)	एच. एन. सिंह	५.००
विज्ञान शिक्षण (१९६८)	डी. एस. रावत	४.००
गणित शिक्षण (१९६८)	एम. एस. रावत एवं मुकुटबिहारीलाल अग्रवाल	४.००
संस्कृत शिक्षण (१९६९)	डा. रामशकल पाण्डेय	४.५०
वाणिज्य शिक्षण (१९६७)	उदयवीर सक्सेना	४.००
गृह विज्ञान शिक्षण (१९६८)	डा. जी. पी. शेरी	६.००
अर्थशास्त्र शिक्षण (१९६८)	गुरुसरनदास त्यागी	४.००
Essentials of English Teaching (1968)	R. K. Jain	9.00

नार्मल परीक्षाओं के लिए

सरल शिक्षा मनोविज्ञान (१९६७)	डा. एस. एस. माथुर	४.००
नवीन शिक्षा सिद्धान्त तथा शिक्षण कला (१९६९)	डी. सी. भारद्वाज	३.००
नवीन शिक्षा मनोविज्ञान (१९६९)	,,	३.००
पाठशाला प्रबन्ध, स्वास्थ्य शिक्षा तथा सामुदायिक संगठन (१९६९)	,,	३.००
सरल शिक्षण विधियाँ (१९६८)	,,	५.००
बी० टी० सी० पाठ संकेत निर्माण(१९६८)	पी. एस. आर्य	३.००
प्रशिक्षण विद्यालयों में अंग्रेजी शिक्षण विधि (१९६९)	एम. एल. वर्मा	४.००
उद्यानशास्त्र तथा बागवानी (१९६८)	,,	४.००
कृषि शिक्षण (१९६८)	,,	३.००
कताई-बुनाई शिक्षण (१९६८)	कवलसिंह	३.००
बी० टी० सी० हिन्दी भाषा शिक्षण (१९६८)	उदयवीर सक्सेना	१.५०
बी० टी० सी० संस्कृत शिक्षण (१९६८)	,,	१.५०
बी० टी० सी० सामाजिक अध्ययन शिक्षण (१९६८)	,,	१.५०

बी० टी० सी० सामान्य विज्ञान शिक्षण (१९६८)	सुमतीशचन्द्र चौधरी	१.५०
बी० टी० सी० गणित शिक्षण (१९६८)	बी. पी. दुबे	२.००
बी० टी० सी० पुस्तककला शिक्षण (१९६९)	सत्यनारायण दूबे	१.५०
शिल्प-शिक्षण (१९६८)	,,	५.००
काष्ठकला शिक्षण (१९६९)	,,	१.५०
चित्रकला शिक्षण (१९६९)	आर. पी. वैश्य	२.००
चर्मकला शिक्षण	मानकचन्द गुप्ता	१.२५
बी० टी० सी० शिक्षा दिग्दर्शन [गाइड] (१९६९)	दिनेशचन्द्र भारद्वाज	७.५०
बी० टी० सी० प्रश्नपत्र उत्तर सहित (१९६७-६९)	शरतेन्दु	३.००
बुनियादी शिक्षा शास्त्र	बी. डी. शर्मा एवं तिवारी	४.५०
बुनियादी शिक्षा सिद्धान्त	बी. डी. शर्मा	२.५०
बुनियादी पाठन पद्धतियाँ	,,	२.५०

इण्टरमीडिएट के लिए

माध्यमिक शिक्षा शास्त्र (१९६९)	डा० सरयूप्रसाद चौबे	८.००
माध्यमिक शिक्षा सिद्धान्त और शैक्षिक विकास (१९६९)	,,	५.००
माध्यमिक शिक्षा मनोविज्ञान परिचय (१९६९)	,,	४.००

● मनोविज्ञान

मनोविज्ञान का इतिहास (१९६९)	डा. जे. डी. शर्मा एवं डा. जी. डी. सारस्वत	१०.००
मनोविज्ञान के सम्प्रदाय (१९६८)	रामपालसिंह वर्मा	४.००
सामान्य मनोविज्ञान (१९६८)	डा. एस. एस. माथुर	७.००
समाज मनोविज्ञान : प्रारम्भिक अध्ययन (१९६९)	डा. एस. एस. माथुर	७.००
समाज मनोविज्ञान (१९६८)	,,	१२.५०
Social Psychology	Dr. S. S. Mathur	14.00
शिक्षा मनोविज्ञान	डा. एस. एस. माथुर	१२.५०
Educational Psychology (1968)	Dr. S. S. Mathur	16.00
औद्योगिक मनोविज्ञान (१९६९)	डा. आर. के. ओझा	१२.५०
विकासात्मक मनोविज्ञान (१९६७)	भाई योगेन्द्रजीत	६.००
बाल मनोविज्ञान (१९६९)	भाई योगेन्द्रजीत	८.००
Physiological Psychology	Dr. J. D. Sharma	8.00
मनोविज्ञान और शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन (१९६७)	आर. एन. अग्रवाल	११.००
Educational and Psychological Measurement	R. N. Agrawal	12.00
व्यक्तित्व : प्रकृति एवं मापन	,,	२.५०

बुद्धि : प्रकृति, सिद्धान्त एवं मापन	आर. एन. अग्रवाल	३.००
व्यावहारिक मनोविज्ञान	सुरेशचन्द्र शर्मा एम. ए.	६.००

(प्रश्नोत्तर शैली में)

बी० एड्० दिग्दर्शन (गाइड) [१९६९]	सं. दिनेशचन्द्र भारद्वाज, आदि	१५.००
शिक्षा-सिद्धान्त (१९६९)	भाई योगेन्द्रजीत	३.००
शिक्षा मनोविज्ञान (१९६९)	,,	३.००
शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा (१९६९)	,,	६.००
शिक्षा सिद्धान्त की रूपरेखा (१९६८)	,,	६.००
शिक्षण कला (१९६९)	,,	५.००
आधुनिक भारतीय शिक्षा (१९६८)	पाठक एवं त्यागी	६.००
भारतीय शिक्षा का इतिहास (१९६९)	कपूरचन्द जैन	४.००
भारतीय शिक्षा की आधुनिक समस्याएँ (१९६९)	दिनेशचन्द्र भारद्वाज	४.००
विद्यालय प्रशासन एवं स्वास्थ्य शिक्षा (१९६८)	,,	६.००
विद्यालय प्रशासन (१९६८)	,,	४.००
पाठशाला प्रबन्ध (१९६९)	,,	३.५०
स्वास्थ्य-विज्ञान (१९६८)	,,	३.००
हिन्दी भाषा शिक्षण (१९६८)	,,	३.००
भूगोल शिक्षण (१९६८)	,,	२.००
विज्ञान शिक्षण (१९६७)	डी. सी. शर्मा	२.००
English Teaching (1969)	Prof. Pathak	3.00
इतिहास शिक्षण (१९६९)	जो. डी. सत्संगी	२.००
सामाजिक अध्ययन शिक्षण (१९६९)	,,	२.००
नागरिक शास्त्र शिक्षण (१९६८)	,,	२.००
अर्थशास्त्र शिक्षण (१९६८)	,,	२.००
आगरा विश्वविद्यालय बी० एड० प्रश्नपत्र (१९६३ से १९६८ तक)	प्रो० सक्सेना	७.५०
राजस्थान विश्वविद्यालय बी० एड्० प्रश्नपत्र (१९६६ से १९६८ तक)	प्रो. वर्मा	६.००

● गृहविज्ञान

वस्त्र विज्ञान के मूल सिद्धान्त (१९६९)	डा. जी. पी. शेरी	६.००
मातृकला एवं शिशुकल्याण (१९६८)	,,	६.००
गृह व्यवस्था (१९६९)	,,	६.००

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

पुस्तक समीक्षा

संस्कृत नाट्य साहित्य

लेखक—डॉ० जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल; प्रकाशक—विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा; पृष्ठसंख्या—२२८; मूल्य—६.०० ।

संस्कृत का नाटक साहित्य विविधता तथा विस्तृति की दृष्टि से विश्व के नाटक साहित्य में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। दृश्य काव्य का वास्तविक अभिधान तो 'रूपक' ही है। यह रूपक वर्ण्य वस्तु, चरित्र-चित्रण तथा रसोन्मेष को ध्यान में रखकर दश प्रकारों में तथा अभिनेयता, नृत्य सम्पत्ति तथा भाव-प्रवणता की दृष्टि से अठारह प्रकार के उपरूपकों में विभक्त किया जाता है। नाटक साहित्य संस्कृत के ललित साहित्य का बड़ा ही रमणीय अंग है। काव्यों में नाटक की रमणीयता बहुशः चर्चित है। 'काव्येषु नाटकं रम्यम्'—यह आभाणक अनेक दृष्टियों से औचित्यपूर्ण तथा सुसंगत माना जाता है। दर्शकों के हृदय में रस को उन्मेष करना ही नाटककार का लक्ष्य होता है। 'नाटककारका अभिधान पाश्चात्य समीक्षा पद्धति का शब्द है, अन्यथा भारतीय समीक्षा पद्धति में नाटक के रचयिता के लिए 'कवि' शब्द का ही प्रयोग उपयुक्त होता है। 'रसोन्मेष' के प्रति संस्कृत आलोचकों का आग्रह होना स्वाभाविक है। × × रस के उन्मेष के ऊपर आग्रह होने के कारण नाटक के रचयिता के लिए 'कवि' अभिधान प्रयुक्त किया जाता है भारतीय काव्यशास्त्र में। और यह उन्मेष भी श्रव्यकाव्य की अपेक्षा दृश्य-काव्य में बड़ी स्वाभाविकता के साथ मिलता है तथा खुलता है। भाषा की स्वाभाविकता, रंगमंच की उपकरण सामग्री, काव्य का मनोरम विन्यास आदि अनेक वैशिष्ट्य रूपक की रमणीयता के पोषक तत्त्व हैं।

संस्कृत में रूपकीय रचनाओं का विपुल साहित्य विद्यमान है। अनेक नवीन ग्रन्थों की उपलब्धि इस विषय में दिन-प्रतिदिन होती जाती है। इन सबका लेखा-जोखा रखना एक व्यक्ति के बूते से बाहर की चीज है चाहे वह कितना भी विद्वान क्यों न हो। इस ग्रन्थ के विद्वान लेखक डॉ० खण्डेलवाल का लक्ष्य इस विशाल साहित्य का संक्षिप्त परिचय देना है—विशेषतः एम० ए० के छात्रों के लिए। ग्रन्थ का प्रथम भाग नाटक साहित्य के उदय तथा अभ्युदय का इतिहास प्रस्तुत करता है। दूसरे भाग में संस्कृत के नाटक पंचक का विस्तृत तथा विशद अनुशीलन दिया गया है—उन नाटकों का, जो साहित्यिक महत्त्व के अतिरिक्त परीक्षा दृष्टि से भी महत्त्व रखते हैं। मुझे यह कहने में संकोच नहीं हो रहा है कि लेखक अपने उद्देश्य की सिद्धि में पूर्णतया सफल हुआ है। विषय तथा भाषा पर वह अधिकार रखता है, विषय के भीतर प्रवेश कर वह अनुपम वस्तुओं का संग्रह करना जानता है। किसी नाटक की विशिष्ट वस्तुओं की जानकारी के लिए वह प्रवीण आलोचकों के मान्य मतों से अपने पाठकों को परिचित करने से कभी नहीं चूकता। तत्तत् ग्रन्थों से लम्बे-लम्बे उद्धरण उसकी जागरूकता के प्रमुख साक्षी हैं। इतना होने पर भी वह विषयों के सजाने में लब्धवर्ण है।

मैं लेखक को इस कमनीय कृति की रचना पर बधाई तथा आशीर्वाद देता हूँ। ग्रन्थ अपने उद्देश्य की पूर्ति में सद्यः सहायक होगा—इसका मुझे पूरा विश्वास है। (प्रस्तावना से)

—बलदेव उपाध्याय

मानसमणि

संकलनकर्त्ता—राधेमोहन अग्रवाल; प्रकाशक—शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा; पृष्ठ—१५६; मूल्य ३.०० ।

आज का युग संक्षिप्तीकरण का युग है। प्रत्येक व्यक्ति इतना व्यस्त रहता है कि उसके पास घण्टों या दिनों बैठकर किसी पुस्तक का पारायण करने का अवसर ही नहीं प्राप्त होता है। नाटकों का संक्षिप्त रूप एकांकी तथा कहानियों का संक्षिप्त रूप छोटी कहानी या गल्प इसी परम्परा की वस्तुएँ हैं। मानसमणि के संकलनकर्त्ता ने भी इसी परम्परा में गोस्वामी

तुलसीदास कृत वृहद्काय रामचरितमानस के प्रत्येक काण्ड से जीवनोपयोगी सूक्तियों का चयन कर मानस-मणि के रूप में प्रस्तुत किया है। संकलनकर्त्ता को प्रेरणा देने वाले राष्ट्र-पिता महात्मा गाँधी रहे हैं जिन्होंने अपनी धर्म पत्नी 'बा' को रामायण की शिक्षा देने हेतु रामायण का एक संक्षिप्त संस्करण तैयार करने की अभिलाषा व्यक्त की थी। यह कार्य प्रारम्भ भी किया गया था परन्तु तत्कालीन परिस्थितियों की गुरुता ने इस कार्य की पूर्णाहुति नहीं होने दी। उसी लक्ष्य को लेकर संकलनकर्त्ता श्री राधेमोहन अग्रवाल ने यह सद्-प्रयास गाँधी शताब्दी के वर्ष में किया है। निश्चय ही उनका यह कार्य स्तुत्य है।

संकलनकार ने प्रत्येक काण्ड से भक्ति, ज्ञान, कर्तव्य, निष्ठा एवं वैराग्य विषयक सूक्तियों का चयन किया है। एवं उनके भावों को भी अपनी भाषा में स्पष्ट करने का प्रयास किया है। बालकाण्ड से सूक्तियों के चुनते समय संकलनकर्त्ता ने चौपाइयों के क्रम का ध्यान न रखकर अपनी इच्छा से उनको रखा है। पृष्ठ ६ पर २८वाँ दोहा रख दिया है तो उसके पश्चात् पृष्ठ ८ पर १८वाँ दोहा। इसी प्रकार पृष्ठ ११ पर "रामचरितमानस यहि नामा""""त्रिविध दोष दुख दारिद दानव" यह ३५वीं चौपाई है और पुनः इसी पृष्ठ पर "जेहि यह कथा सुनी नहिं होई""""करिअ न संसय अस उर आनी" ३३वीं चौपाई रख दी है। इसी प्रकार और भी बहुत से उदाहरण दिये जा सकते हैं। इस क्रम भिन्नता का संकलनकार ने कोई कारण नहीं दिया है फिर पता नहीं उसने ऐसा किस उद्देश्य से किया है?

पुस्तक की छपाई, साज-सज्जा व आवरण कलात्मक है इसके लिए मुद्रक व प्रकाशक बधाई के पात्र हैं।

—श्रीभगवान शर्मा

न आने वाला कल

लेखक—मोहन राकेश; प्रकाशक—राजपाल एण्ड संज, दिल्ली; पृष्ठ संख्या—२०७; मूल्य—६.०० ।

मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी माना जाता है। पर समाज और परिचितों के बीच रहता हुआ हर आदमी असल में अपने में ही सीमित रहता है। वह अपने चारों ओर एक चौहद्दी का निर्माण कर अपने आने वाले कल की चिन्ता में निमग्न रहता है। पर जिस विशिष्ट वातावरण में उसे रहना पड़ता है, उससे सम्बन्ध-विच्छेद करना न उसके लिए सम्भव होता है और न ही उसके अन्य साथियों और सहयोगियों के लिए ही। इस प्रकार एक विरोधाभास—टूटकर भी न टूटने वाले मानव सम्बन्धों का समाज और व्यक्ति के जीवन में पाया जाता है। यही कारण है कि अपने निश्चित सामाजिक वातावरण में तनिक सा भी व्यवधान किसी समाज के हर सदस्य को अपने भविष्य के प्रति सचित कर देता है। इस प्रकार एक निर्णय अनेक प्रतिक्रियाओं को जन्म देता है और फिर प्रकट होती है व्यक्ति की अकुलाहट, क्योंकि वह अपने को टूटकर भी न टूटते हुए सम्बन्धों के अजीब गोरखधन्धे में पाता है और अपनी स्वतन्त्रता को मर्यादित व सीमित अनुभव करता है। यह समस्या है मोहन राकेश के प्रस्तुत उपन्यास को। एक पहाड़ी रेजीडेंसियल स्कूल में हेडमास्टर से लेकर वहाँ के चपरासी की बीबी तक सभी आपस में सामान्य रूप से—एक संस्था के सदस्य होने के नाते—बँधे होने पर भी अपनी-अपनी विशिष्ट चौहद्दी में अनागत भविष्य की प्रतीक्षा में थे कि वहाँ के हिन्दी अध्यापक ने सहसा अपने पद से इस्तीफा दे दिया। इस अप्रत्याशित घटना ने सभी को अपने-अपने विषय में सोचने पर मजबूर कर दिया। अनेक दुश्चिन्ताएँ और आशंकाएँ सभी को परेशान करने लगीं, जबकि वास्तव में हिन्दी अध्यापक के इस्तीफे का स्कूल अथवा उसके कार्यकर्त्ताओं से कोई सम्बन्ध नहीं था। वह तो केवल उसकी व्यक्तिगत समस्या—छुटकारा पाना, पर किससे, यह वह भी नहीं जानता था, का परिणाम था। इस प्रकार के नितान्त व्यक्तिगत निर्णय की ये विभिन्न प्रतिक्रियाएँ क्या यह स्पष्ट नहीं करतीं कि वर्तमान मानव-सम्बन्ध किसी दृढ़ आधार पर स्थापित नहीं, अपितु पारस्परिक अविश्वास और उससे जनित भय बुरी तरह से मानव पर छाया हुआ है?

यह उपन्यास एक 'कथा प्रयोग' है, जिसका उद्देश्य 'एक निर्णय की अनेक प्रतिक्रियाओं' को चित्रित करना है। मानव-सम्बन्धों के संदर्भ में व्यक्ति की अकुलाहट का यथार्थ व अन्तरंग चित्रण इसकी विशिष्ट उपलब्धि है। शिल्प की दृष्टि से यह एक नवीन प्रयोग है और अनुभवी लेखक की एक विशिष्ट सफलता।

—अम्बिकाचरण शर्मा

[पृष्ठ १ का शेषांश]

को स्वयं में एक पूर्ण इकाई बनाया जाए और वह स्पष्ट उद्देश्यों की ओर छात्रों को उन्मुख करे। उदाहरणार्थ, माध्यमिक शिक्षा के पश्चात् छात्रों के समक्ष अनेक मार्ग खुले होने चाहिए जिससे कि एक ही मार्ग पर अनावश्यक भीड़ न हो। यदि ऐसा हो जाएगा तो जिन छात्रों में तदनुरूप रुचि एवं योग्यता होगी वे विश्वविद्यालयी शिक्षा में पदार्पण करेंगे, कुछ कृषि को अपनायेंगे, कुछ उद्योगों में चले जायेंगे, कुछ व्यवसाय की ओर उन्मुख होंगे, कुछ कार्यालयों में नौकरी की तलाश करेंगे, कुछ औद्योगिक एवं तकनीकी विद्यालयों में प्रविष्ट होंगे तो कुछ अन्य शिक्षक बनने के लिए प्रशिक्षण प्राप्त करेंगे।

कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रवेश की समस्या को कुछ विद्यालयों ने पक्षपातपूर्ण रवैये से और अधिक जटिल बना दिया है। जाति, धर्म, सम्प्रदाय या सिफारिश के आधार पर प्रवेश करना देश की युवा-पीढ़ी के साथ विश्वासघात है और उसे विद्रोह के मार्ग पर बलात् घसीट लाना है। इस स्थिति से प्रत्येक विद्यालय एवं महाविद्यालय को दूर रखना वहाँ के आचार्य एवं शिक्षकवृन्द का पावन कर्त्तव्य है। योग्यता, रुचि एवं अभिक्षमता के समक्ष जाति एवं सम्प्रदाय का विचार सर्वथा त्याज्य है। ●

[पृष्ठ ४ का शेषांश]

आज छात्रों में मन की चंचलता अधिक दिखाई देती है इसका कारण उनके मन की अस्थिरता है। आधुनिक प्रगतिशील एवं सभ्य कहलाये जाने वाले समाज में छात्र के ध्यानाकर्षण के लिये असंख्य चीजें उपलब्ध हैं। इनमें से कई छात्र जीवन के लिये अनुचित एवं हानिकारक हैं; फिर भी अपनी चंचलतावश छात्र उनकी ओर दौड़ते हैं। इस तरह हमेशा ध्यान इधर-उधर भटकते रहने के कारण छात्र किसी भी एक कार्य में, चाहे वह शाला-कार्य हो अथवा घर का कार्य, ध्यान एकाग्र नहीं कर सकते। योग के अभ्यास द्वारा बालकों की यह मन की चंचलता एवं अस्थिरता दूर की जा सकती है।

योगाभ्यास के द्वारा छात्रों में आत्म नियंत्रण का विकास किया जा सकता है। जिससे छात्रों की शक्ति का समुचित नियंत्रण होगा तथा उनमें विनम्रता, शालीनता त्याग एवं सेवा सरीखे आवश्यक तत्वों का विकास होगा। आधुनिक शालाओं में इसकी बड़ी आवश्यकता है। वास्तव में छात्र का बौद्धिक विकास मन और हृदय के उचित प्रशिक्षण पर निर्भर है जो योग के अभ्यास के द्वारा ही सम्भव है।

आज हमारी शिक्षा का उद्देश्य बालक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास है। किन्तु खेद का विषय है कि उचित शिक्षा के अभाव में हम केवल मानसिक दृष्टि से विकसित बौद्धिक दानव ही तैयार कर रहे हैं जो स्वयं हमारी संस्कृति, सभ्यता एवं ज्ञान की जड़ों को उखाड़ फेंकने में तत्पर हैं। आज आवश्यकता है मन और शरीर के संयम और नियंत्रण की, और इसका एकमात्र हल शिक्षा में योग का समावेश है। योग पर आधारित शिक्षा न केवल छात्र की शारीरिक मानसिक व नैतिक उन्नति करेगी वरन वह मानवत्व में देवत्व का संचार कर इस धरा को स्वर्ग बना देने में समर्थ हो सकेगी। ●

हिन्दी साहित्य

हिन्दी वैष्णव साहित्य में रस परिकल्पना : प्रेम स्वरूप, डबल डिमाई, पृष्ठ ४४०, मूल्य ३४.००
शृङ्गार युग में संगीत काव्य : हेम भटनागर, डबल डिमाई, पृष्ठ २७६, मूल्य २५.००
आचार्य विज्ञान भिक्षु और भारतीय दर्शन में उनका स्थान : डा० सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, डिमाई, पृष्ठ २९८, मूल्य १६.००
कबीर ग्रन्थावली : सटीक : सम्पादक डा० भगवत् स्वरूप मिश्र, डिमाई, पृष्ठ ६२५, मूल्य १२.००
कबीर ग्रन्थावली : माता प्रसाद गुप्त, डिमाई, पृष्ठ ४२४, मूल्य १२.००
हिन्दी साहित्य परिवर्तन के सौ वर्ष : ओंकारनाथ श्रीवास्तव, डिमाई, पृष्ठ ४१५, मूल्य ३०.००
अस्वीकृत उपलब्धियाँ : डा० प्रभात, डिमाई, पृष्ठ १२८, मूल्य ६.००
हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ : डा० जयकिशन प्रसाद,डिमाई, पृष्ठ ६२८, मूल्य १०.००
मैथिलीशरण गुप्त और उनका साहित्य : दान बहादुर पाठक, डिमाई, पृष्ठ ५२०, मूल्य १०.००
साकेत : एक अध्ययन : दान बहादुर पाठक, डिमाई, पृष्ठ २५६, मूल्य ६.००
भारतीय काव्यशास्त्र : प्रो० कृष्णदेव शर्मा, क्राउन, पृष्ठ ३२०, मूल्य ३.५०

संस्कृत साहित्य

संस्कृत साहित्य की प्रवृत्तियाँ : डा० जयकिशन प्रसाद, डिमाई, पृष्ठ ३५१, मूल्य ७.५०
संस्कृत नाट्य साहित्य : डा० जयकिशन प्रसाद, डिमाई, पृष्ठ २२२, मूल्य ६.००
पुरुषसूक्तम् : डा० जयकिशन प्रसाद, क्राउन, पृष्ठ ५१, मूल्य १.००
अभिज्ञान शाकुन्तलम् चतुर्थ अंक : डा० रामकृष्ण आचार्य, क्राउन, पृष्ठ ९२, मूल्य १.५०
महाकाव्यामृतम् : डा० राजकिशोरसिंह, क्राउन, पृष्ठ ७६, मूल्य १.५०
सांख्यकारिका : ब्रज मोहन चतुर्वेदी, डिमाई, पृष्ठ २५१, मूल्य १३.००

विविध

शिक्षा और जन साधन : वी० के० आर० वी० राव, डिमाई, पृष्ठ २२७, मूल्य १०.००
औद्योगिक मनोविज्ञान : डा० राजकुमार ओझा, डिमाई, पृष्ठ ४३२, मूल्य १२.५०
माध्यमिक शिक्षाशास्त्र (सम्पूर्ण) : डा० सरयूप्रसाद चौबे, डिमाई, पृष्ठ ४९८, मूल्य ८.००
माध्यमिक शिक्षा सिद्धान्त और शैक्षिक विकास : डा० सरयूप्रसाद चौबे, डिमाई, पृष्ठ २९०, मूल्य ५.००
माध्यमिक शिक्षा मनोविज्ञान परिचय : डा० सरयूप्रसाद चौबे, डिमाई, पृष्ठ २०८, मूल्य ४.००
शिक्षण कला : भाई योगेन्द्र जीत, डिमाई, पृष्ठ २६८, मूल्य ५.००
छत्तीस गढ़ी बोली व्याकरण और कोश : कांतिकुमार, डिमाई, पृष्ठ २००, मूल्य ८.००
हिन्दी लेखक चित्रावली : (हिन्दी के तीस लेखकों के चित्र) मुखबन्ध डा० नगेन्द्र, मूल्य २५.००

प्राप्ति-स्थान

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

प्रकाशक एवं मुद्रक : विनोदकुमार अग्रवाल। हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस के हेतु कैलाश प्रिंटिंग प्रेस, आगरा–२ में मुद्रित।

साहित्य-परिचय

राष्ट्रभाषा और साहित्य की गतिविधियों का परिचायक पत्र

सितम्बर १९६९

16-9-69

प्राथमिक शिक्षा को मैं सबसे ज्यादा महत्व देता हूं। मेरे विचार में यह शिक्षा अंग्रेजी को छोड़कर और विषयों में आजकल की मैट्रिक तक होनी चाहिए। अगर कालेज के सब ग्रेजुएट अपना पढ़ा-लिखा एकाएक भूल जायें, और इन कुछ लाख ग्रेजुएटों की याददाश्त के यों एकाएक बेकार हो जाने से देश का जो नुकसान हो उसे एक पलड़े पर रखिए और दूसरी ओर उस नुकसान को रखिए जो तैंतीस करोड़ स्त्री-पुरुषों के अज्ञानान्धकार में घिरे रहने से आज भी हो रहा है, तो साफ मालूम होगा कि दूसरे नुकसान के सामने पहला कोई चीज़ नहीं है। देश में निरक्षरों और अनपढ़ों की जो संख्या बतायी जाती है, उसके आँकड़ों से हम लाखों गाँवों में फैले हुए घोरतम अज्ञान का पूरा अनुमान नहीं कर सकते।

◉ ◉ ◉ ◉

मैं इस बात का दावा करता हूँ कि मैं उच्च शिक्षा का विरोधी नहीं हूँ। लेकिन उस उच्च शिक्षा का मैं जरूर विरोधी हूँ जो कि इस देश में दी जा रही है। मेरी योजना के अन्दर तो अब से अधिक और अच्छे पुस्तकालय होंगे, अधिक संख्या में और अच्छी रसायनशालाएँ तथा प्रयोगशालाएँ होंगी। उसके अन्तर्गत हमारे पास ऐसे रसायनशास्त्रियों, इंजीनियरों तथा अन्य विशेषज्ञों की फौज की फौज होनी चाहिए जो राष्ट्र के सच्चे सेवक हों और उस प्रजा की बढ़ती हुई विविध आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें।

—महात्मा गांधी

हमारी प्रकाशित संस्कृत साहित्य की

कुछ श्रेष्ठ पुस्तकें

डॉ० खण्डेलवाल एवं मुसलगाँवकर

- **संस्कृत साहित्य की प्रवृत्तियाँ** ७.५०

डॉ० जयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल

- **संस्कृत नाट्य साहित्य** ६.००
  (मृच्छकटिक, रत्नावली, वेणीसंहार, मुद्राराक्षस तथा उत्तर-रामचरित का आलोचनात्मक अध्ययन, संस्कृत नाटक की उत्पत्ति, उद्भव और विकास सहित)
- **पुरुषसूक्तम्** (हिन्दी टीका सहित) १.००

डॉ० रामकृष्ण आचार्य

- **ब्रह्मसूत्रों के वैष्णव भाष्यों का तुलनात्मक अध्ययन** (शोध-प्रबन्ध) १०.००
- **ऋक् सूक्त रत्नाकर** (पीटर्सन एवं सायण के आधार पर) ६.००
- **दशकुमार चरितम्** (पूर्वपीठिका, उच्छ्वास १) १.००
- **रघुवंश : द्वितीय सर्ग** १.५०
- **,, पंचम सर्ग** १.५०
- **,, त्रयोदश सर्ग** १.५०
- **अभिज्ञान शाकुन्तलम् : अंक चतुर्थ** १.५०
- **मित्र सम्प्राप्तिः** (साहित्यरत्न द्वितीय वर्ष के लिए) ३.५०
- **संस्कृत निबन्धांजलिः** (एम. ए. विद्यार्थियों के लिए) (प्रेस में)

डॉ० राजकिशोर सिंह

- **प्राचीन भारतीय कला और संस्कृति** ७.५०
- **संस्कृत भाषाविज्ञान** ६.००
- **महाकाव्यामृतम्** (आगरा विश्व० बी० ए० प्रथम वर्ष के लिए स्वीकृत) १.५०
- **वैदिक साहित्य का इतिहास** (प्रश्नोत्तर) ४.००

अन्य

- **शिशुपाल वधम्** (सर्ग १,२ : सटीक) — डा० पारसनाथ द्विवेदी ३.५०
- **काव्य प्रकाश** (प्रश्नोत्तर) — ,, २.५०
- **संस्कृत साहित्य का इतिहास** (प्रश्नोत्तर) — डा० द्वारिका प्रसाद सक्सेना ४.००
- **संस्कृत व्याकरण** (एम. ए. विद्यार्थियों के लिए) — डॉ० बाबूराम त्रिपाठी (प्रेस में)

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
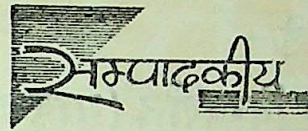
साहित्य-परिचय

[शिक्षा और साहित्य की प्रगति का परिचायक पत्र]

वर्ष ४ : अंक ९

सितम्बर, १९६९

सम्पादक
विनोदकुमार अग्रवाल
एम. ए., साहित्यरत्न

प्रबन्ध सम्पादक
सतीशकुमार अग्रवाल

स्वामित्व
विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–२

मूल्य
एक प्रति ०.२५ : वार्षिक ५.००

साहित्य-परिचय
डॉ० रांगेय राघव मार्ग
आगरा–२
फोन : ७६४८६

गाँधी-जन्म-शताब्दी पर

अब से सौ वर्ष पूर्व भारत की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ बड़ी ही शोचनीय थीं। देश पर अंग्रेजों का शासन था जो पहले तो व्यापारी बनकर देश के आर्थिक साधनों का उपभोग करते रहे पर बाद में शासक बनकर देश का आर्थिक शोषण करने के साथ-साथ सामाजिक विघटन भी करते रहे। ऐसे समय में गांधी जी का जन्म भारत के सौभाग्य से ही हुआ जिन्होंने भारत में जन-जागृति का बीड़ा उठाया। उनके नेतृत्व में जनता ने स्वातन्त्र्य संग्राम का अहिंसात्मक युद्ध किया और परिणामस्वरूप हम स्वतन्त्र हुए।

महात्मा गाँधी के हमारे ऊपर अनेक उपकार हैं। उन्होंने हमें स्वतन्त्र कराया, अहिंसा का पाठ पढ़ाया, धर्म में आस्था जाग्रत की, राजनीति को नैतिकता पर आधारित किया, सत्य का आग्रह सिखाया, ग्रामीणों के प्रति उचित व्यवहार करना सिखाया, बेकारी को दूर करने का रास्ता दिखाया। इसी प्रकार के अनेकानेक कार्य उन्होंने जनकल्याण के लिए किये।

किन्तु गाँधी जी का सर्वोत्तम कार्य उनके ही मतानुसार शिक्षा के क्षेत्र में था। बुनियादी तालीम को गाँधी जी देश को अपनी सर्वोत्तम भेंट के रूप में समझते थे।

स्वतन्त्रता के बाद देश में गाँधी जी के नाम की दुहाई प्रत्येक क्षेत्र में दी गई। राजनीति एवं प्रशासन के क्षेत्र में हमने गाँधीवाद की घोषणा करके गाँधी जी के सिद्धान्तों की जो दुर्दशा की, वह देश के सामने प्रत्यक्ष ही है। आर्थिक क्षेत्र में हमने गाँधी जी का नाम तो लिया किन्तु गाँधी जी को एक पिछड़ा हुआ व्यक्ति समझकर उनके सिद्धान्तों को तिलांजलि देने में हमने कोई संकोच नहीं किया।

शिक्षा के क्षेत्र में हम प्रारम्भ में सौ फीसदी गाँधीवादी हो गए। एक रात में ही हमारे सभी प्रारम्भिक विद्यालय गाँधी जी की बुनियादी तालीम के साइनबोर्ड से युक्त हो गए। गाँधी जी के शैक्षिक सिद्धान्तों को हमने इतना सस्ता समझा कि हमने यह स्वीकार कर लिया कि केवल नाम-पट बदल देने से हम गाँधी जी के अनुयायी हो जाएँगे। और फिर वही हुआ, जो होना चाहिए था। बेसिक शिक्षा के एक आधार-स्तम्भ डा० ज़ाकिर हुसैन के शब्दों में 'बेसिक शिक्षा को जिस प्रकार राज्यों में व्यवहृत किया गया, वह एक प्रकार से प्रवंचना मात्र थी।'

[शेष पृष्ठ ८ पर]

गांधी जी का शिक्षा दर्शन

करनसिंह चौहान, एम० ए०

महात्मा गांधी जी शिक्षा को साधन व साध्य रूप में जीवन का नया दर्शन मानते हैं। हर व्यक्ति को चर्म लक्ष्य तक पहुँचने की छूट है। यदि नया समाजवर्ग, रंग एवं जाति भेद से विहीन बन सके तो सही अर्थ में स्वतन्त्र एवं लोकतन्त्रात्मक समाज निर्मित होगा। शिक्षा का विकेन्द्रीकरण ग्राम राज्य एवं सर्वोदयी समाज को लक्ष्य कर प्रारम्भ किया गया है। गांधी जी के विचारों को हम निम्न रूपों में जान सकते हैं :—

दार्शनिक मत—बापू जी पूर्णतया अध्यात्मवादी थे। उन्हें ईश्वर पर विश्वास एवं निष्ठा थी। मनुष्य को वे ईश्वर का अंश मानते थे। अद्वैतवादी एवं द्वैतवादी दोनों थे। एकोऽहम् बहुष्यामि एवं बसुधैव कुटुम्बकम् उनके प्रिय मन्त्र थे। उनका कथन था कि जिस प्रकार सूर्य एक होता है और उसकी किरणें अनन्त होती हैं, जो उसीसे निकलकर संसार में आतीं और प्रकाश फैलातीं हैं तथा अपना समय पूर्ण कर अंत में उसी में विलीन हो जाती हैं। उसी तरह आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध है। किसी भी प्रकार का मानवकृत वर्गगत, जातिगत, रंगगत एवं वर्णगत भेदभाव व्यर्थ है।

ईश्वर को देखने एवं पाने के सम्बन्ध में उनका यह विचार है कि वह केवल अनुभव का विषय है। इस पर जब कुछ लोगों ने उन्हें विवश किया तब उन्होंने कहा "सत्य का ही दूसरा नाम ईश्वर है, सत्य पर ही डटे रहना ही ईश्वर की उपासना है, और यह उपासना अहिंसा द्वारा ही हो सकती है।" इस प्रकार गांधी जी ने ईश्वर उपासना को एक नया व्यावहारिक रूप दिया। सत्य और अहिंसा ईश्वर रूपी सिक्के के दो पहलू हैं। अथवा साध्य व साधन हैं तथा बुनियादी शिक्षा के ध्रुवबिन्दु हैं।

मानव कर्त्तव्य—गांधी जी व्यक्ति और समाज दोनों को एक ही तुला के दो समान पक्ष मानते थे। एक ओर वे समाज को व्यक्ति के विकास का आवश्यक साधन मानते थे और दूसरी ओर व्यक्ति को समाज का एक बहुमूल्य उपयोगी घटक मानते थे। मानव नैतिक मूल्यों के द्वारा ही अपना तथा समाज का विकास कर सकता है। नैतिक मूल्य शाश्वत एवं मंगलमय होना चाहिए जैसे सत्य, अहिंसा, प्रेम, न्याय, समानता आदि मनुष्यों के द्वारा किसी भी प्रकार का शोषण भौतिकवादी विचारधारा है। ईश्वर भक्ति, मानव प्रेम एवं समानता की त्रिवेणी संगम पर चारित्रिक निर्माण किया जा सकता है।

चारित्रिक विकास—गांधी जी उस शिक्षा को शिक्षा नहीं मानते थे जो साक्षरता के बल पर मानव में दम्भ उत्पन्न करती है। वे उसी शिक्षा को शिक्षा मानते थे जिसके शुभ्र मन्दिर में चरित्र का ध्वज फहराता हो। एक ओर चरित्रवान होकर परीक्षा में उत्तीर्ण भले हो जाना और दूसरी ओर छल, नकल आदि करके उत्तीर्ण हो जाना और फिर समाज को मास्टरी, पटवारीगिरी, तहसीलदारी, डाक्टरी, वकीली आदि धन्धों के द्वारा चूसना, इन दोनों में से कौन श्रेयस्कर है। यह प्रश्न स्वयं ही उत्तर है। गांधी जी साध्य व साधन दोनों की सात्विकता पर विश्वास रखते थे।

पारिवारिक जीवन—गांधी जी विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त पर विश्वास रखते थे। परिवार एवं ग्राम इन दोनों को रामराज्य की प्राप्ति के दो महान साधन मानते थे। सरल स्नेहपूर्ण सामाजिक जीवन उन्हें प्रिय था। वे सभ्यता को पीछे नहीं ले जाना चाहते थे। वर्तमान सभ्य पाश्चात्य देशों में भी प्रजातन्त्र का सही स्वरूप यही माना जाता है। ग्रामराज्य और रामराज्य का लक्ष्य वे शिक्षा के द्वारा पूर्ण करना चाहते थे।

क्रियाशीलता—'जो कमावे सो खावे' विनोबा जी का यह कथन गांधी जी की ही देन है। वे क्रियाशीलता

को समस्त शिक्षा का मूलबिन्दु मानते थे। क्रिया द्वारा ही ज्ञान की प्राप्ति उनका लक्ष्य था। उनके शब्दों में राष्ट्र तभी उन्नति कर सकता है जब उसके नौजवान कर्मठ हों, और व्यवहारिक कार्य कर दिखाने में समर्थ हों, कोरे विचारों से कोई लाभ नहीं उठता। जिस शिक्षा द्वारा बालकों में सृजनात्मक शक्ति का विकास न हो, वह व्यर्थ है।

उद्योग—उद्योग एवं उत्पादन के साधन, सामाजीकरण शोषण का अंत नहीं कर सकता है। उनके मतानुसार एक ओर कुटीर उद्योग एवं ग्रामोद्योग तथा दूसरी ओर दीर्घ उद्योग इन दोनों का समन्वयीकरण करना आवश्यक है। केवल मशीन मानव के स्वभाव को भी मशीन बना देती है। मध्यमार्गी औद्योगिक विकास का गांधी जी समर्थन करते थे। वे चाहते थे कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी शक्ति व परिस्थिति के अनुसार उत्पादन करे।

स्वावलम्बन—उद्योग के साथ गांधी जी स्वावलम्बन पर अधिक जोर देते थे। उनका कहना था कि यदि शासकीय बल पर और पैसे के आधार पर शिक्षा का प्रचार होगा तो दोहरा घाटा होगा। प्रथम तो यह कि आवश्यकतानुसार शासकीय सहायता नहीं मिल पाती और दूसरी यह कि जनता अपने कर्त्तव्यों का पालन नहीं कर पाती। अतः शिक्षा की ऐसी प्रणाली हो कि जिसमें विद्यालय स्वावलम्बी हो सकें।

समवाय—गांधी जी की शिक्षा नीति जिस प्रकार अन्य बातों में मौलिक थी उसी तरह पद्धति के क्षेत्र में भी वे क्रान्ति चाहते थे। मनोवैज्ञानिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से उपलब्ध ज्ञान सम्पूर्ण एवं परिपक्व रहता है। कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों का सन्तुलित विकास होता है। किसी उपयोगी हस्तकला को बापू जी शिक्षा को माध्यम बनाने के पक्ष में थे। गाँधी जी शिक्षा का व्यापक अर्थ लगाते थे। वे जीवन के द्वारा, जीवन के लिए, जीवन की शिक्षा मानते थे। इस सूत्र वाक्य में शिक्षा के सम्पूर्ण अंग और उसकी विशेषताएं, समाहित हैं। शिक्षा आचरणों की प्रयोगशाला है। शिक्षा एक ओर गर्भाधान से लेकर मृत्यु पर्यन्त तक और दूसरी ओर कक्षा के कमरे से लेकर अखिल विश्व तक की सीमा बनाती है। इस प्रकार सम्पूर्ण जीवन ही शिक्षा की परिधि है। इसका लक्ष्य जीवन को उन्नत, सुखी, शान्तिमय तथा मंगलमय बनाना है।

मातृभाषा—'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' इस उक्ति को सर्वोपरि मानकर वे मातृभूमि के साथ मातृभाषा का अभिन्न सम्बन्ध मानते थे। बालकों को अन्य माध्यम से पढ़ाने से उनके समय व शक्ति का व्यय तो होता ही है। इससे भी अधिक मूल्यवान संस्कृति का ह्रास होता है। देश की वर्तमान संकटकालीन परिस्थिति में गांधी जी का शिक्षा दर्शन अत्यन्त सार्थक है। संघर्षकालीन प्रक्रियाओं पर विजय प्राप्त करने के लिए आत्मबल की आवश्यकता है। मातृभाषा, एकता, अखण्डता एवं संप्रभुता की रक्षा करती है।

गांधी जी आत्मबल की जागृति को सर्वोपरि मानते थे। उनके ध्येय के अनुसार मारना सीखने से पहिले मर मिटने की अविचल भावना होना चाहिए। डांडी यात्रा एवं अन्य संघर्ष के अवसर इस बात के प्रमाण हैं। वे विद्यार्थियों में उस आत्मबल की सृष्टि कराना चाहते थे जिसका निर्देश गीता में किया गया है। उद्योग, श्रम, निष्ठा एवं संघर्षशीलता का प्रतीक है। सहयोग और सद्भावना की जागृति उद्योग से होती है। छात्र जीवन से ही उसका आचरण पड़ना आवश्यक है। छात्र भविष्य में इन गुणों से सम्पन्न होकर सुनागरिक बनेगा।

मातृभाषा का माध्यम सांस्कृतिक चेतना, सामुदायिक भावना एवं शान्तिमय जीवन में यदि त्रिवेणी संगम उपस्थित कर सकते हैं तो विदेशी आक्रमण के समय वे आत्मरक्षा के लिए त्रिशूल भी बन सकते हैं। शिक्षा बालक का चतुर्मुखी विकास करने वाली होनी चाहिए। बालक की शिक्षा कोई उपयोगी शिल्प सिखाकर करनी चाहिए। पाश्चात्य शिक्षा एकांगी एवं अपूर्ण है। व्यक्तिगत तथा समाजगत आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर शिक्षा की विद्वानों ने परिभाषाएं दी हैं। परन्तु गांधी जी की मान्यता सर्वथा भिन्न है और सभी भावनाओं को अपने में समाहित करती है।

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा के आलोचनात्मक प्रकाशन

● शोध-प्रबन्ध

प्रसाद दर्शन (डी. लिट.) (१६६६)	डा. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना	१२.००
हिन्दी और तेलुगु वैष्णव-भक्ति साहित्य : तुलनात्मक अध्ययन (१६६८)	डा. के. रामनाथन्	१५.००
भूषण और उनका साहित्य (१६६८)	डा. राजमल बोरा	१५.००
रीतिकाल और आधुनिक हिन्दी कविता (१६६८)	डा. रमेशकुमार शर्मा	८.००
गुजरात के कवियों की हिन्दी काव्य साहित्य को देन (१६६८)	डा. नटवरलाल अम्बालाल	१२.००
कृष्णभक्ति साहित्य में रीतिकाव्य परम्परा	डा. राजकुमारी मित्तल	१२.००
विद्यापति : युग और साहित्य	डा. अरविन्द नारायण सिन्हा	१२.५०
ब्रज और बुन्देली लोकगीतों में कृष्णकथा	डा. शालिग्राम गुप्त	१२.५०
नाथपंथ और निर्गुण सन्तकाव्य	डा. कोमलसिंह सोलंकी	१२.००
सन्त वैष्णव काव्य पर तांत्रिक प्रभाव	डा. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय	१५.००
आलवार भक्तों का तमिल प्रवन्धम् और हिन्दी कृष्णकाव्य	डा. मलिक मोहम्मद	२०.००
मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन	डा. सत्येन्द्र	१५.००
रीतिकाल के प्रमुख प्रबन्ध काव्य	डा. इन्द्रपालसिंह 'इन्द्र'	१५.००
आधुनिक हिन्दी साहित्य	डा. रामगोपालसिंह चौहान	१५.००
गद्यकार–बाबू बालमुकुन्द गुप्त	डा. नत्थनसिंह	१२.५०
हिन्दी गद्य के निर्माता–बालकृष्ण भट्ट	डा. राजेन्द्र शर्मा	१०.००
हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव	डा. श्रीपति शर्मा	१२.५०
कामायनी में काव्य, संस्कृति और दर्शन	डा. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना	१०.००
हिन्दी में प्रत्यय विचार	डा. मुरारीलाल उप्रैतिः	१५.००
हिन्दी समास रचना का अध्ययन	डा. रमेशचन्द्र जैन	१०.००
रस सिद्धान्त की दार्शनिक व नैतिक व्याख्या	डा. तारकनाथ बाली	८.००
मैथिली लोकगीतों का अध्ययन	डा. तेजनारायणलाल	१०.००
हिन्दी और कन्नड में भक्ति आन्दोलन का तुलनात्मक अध्ययन	डा. हिरण्मय	१०.००
ब्रह्मसूत्रों के वैष्णव भाष्यों का तुलनात्मक अध्ययन	डा. रामकृष्ण आचार्य	१०.००
हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ (१६६६)	डा. शशिभूषण सिंहल	प्रेस में

आलोचनात्मक साहित्य

साहित्यिक निबन्ध [७१ साहित्यिक निबन्ध] (१६६६)	राजनाथ शर्मा एम. ए.	१०.००
विचार, दृष्टिकोण एवं संकेत	डा. जैन एवं डा. अग्रवाल	१०.००
हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास (१६६८)	राजनाथ शर्मा	११.००
हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ (१६६६)	डा. जयकिशनप्रसाद	१०.००

हिन्दी साहित्य का आधुनिककाल (१९६९)	डा. जयकिशनप्रसाद	६.००
हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास (१९६९)	राजनाथ शर्मा	१.७५
आधुनिक-साहित्य विशेषांक	राजनाथ शर्मा एवं विनोद कुमार	४.५०
आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका	डा. शम्भुनाथ पाण्डेय	१०.००
सूफी-काव्य-विमर्श (१९६८)	डा. श्याममनोहर पाण्डेय	६.००
भारतीय साहित्य : तुलनात्मक अध्ययन	सं. डा. ब्रजेश्वर वर्मा	८.००
भारतीय भाषाओं का भाषा-शास्त्रीय अध्ययन	,,	८.००
नवीन और उनका काव्य	प्रो. जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव	८.००
हिन्दी रेखाचित्र : उद्भव और विकास	प्रो. कृपाशंकर सिंह	५.००
काव्य, कला और शास्त्र	डा. रांगेय राघव	३.००
काव्य, यथार्थ और प्रगति	,,	३.००
समीक्षा के सिद्धान्त	डा. सत्येन्द्र	३.५०
रस, अलंकार, पिंगल (१९६८)	डा. शम्भुनाथ पाण्डेय	२.५०
काव्यशास्त्र (१९६८)	,,	३.००
अलंकार प्रवोध	डा. शम्भुनाथ पाण्डेय एवं विश्वम्भर अरुण	१.२५
सुबोध काव्यशास्त्र (१९६९)	विश्वम्भर अरुण	२.००
हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास	डा. गुणानन्द जुयाल	५.००
हिन्दी भाषा : अतीत और वर्तमान	डा. अम्बाप्रसाद 'सुमन'	६.००
हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि	डा. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना	१०.००
हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि	,,	१०.००
हिन्दी और उसके कलाकार	फूलचन्द्र जैन 'सारंग'	८.००
हमारे कवि और लेखक (१९६९)	,,	२.००
शैलियाँ	,,	१.५०
हिन्दी के कवि और लेखक (१९६८)	राजनाथ शर्मा	२.००
गीतकार विद्यापति	रामवाशिष्ठ एम. ए.	३.००
भारतेन्दु साहित्य	डा. रामगोपालसिंह चौहान	६.७५
भारतेन्दु युग	डा. रामविलास शर्मा	३.००
रत्नाकर की साहित्य साधना	दानबहादुर पाठक	६.००
मैथिलीशरण गुप्त और उनका साहित्य (१९६९)	,,	१०.००
निराला का साहित्य और साधना	डा. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय	६.००
महादेवी का वेदना भाव	डा. जयकिशनप्रसाद	५.००
महाकवि हरिऔध और प्रियप्रवास	देवेन्द्र शर्मा	६.००
भ्रमरगीत सार (व्याख्या एवं विवेचन)	डा. नरेन्द्रदेव शास्त्री	४.००

सूर का भ्रमरगीत : एक अन्वेषण	डा. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय	३.५०
कामायनी भाष्य (१९६९)	डा. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना	१२.५०
जयशंकर प्रसाद और आँसू (१९६८)	देवेन्द्र शर्मा	२.५०
जयशंकर प्रसाद और स्कन्दगुप्त (१९६९)	डा. राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी	३.००
जयशंकर प्रसाद और तितली	राजनाथ शर्मा	३.५०
ध्रुवस्वामिनी : आलोचनात्मक अध्ययन (१९६८)	फूलचन्द्र जैन 'सारंग'	३.००
जयशंकर प्रसाद और अजातशत्रु (१९६७)	डा. तारकनाथ बाली	२.५०
साकेत : एक अध्ययन (१९६९)	दानबहादुर पाठक	६.००
साकेत में काव्य, संस्कृति और दर्शन	डा. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना	१०.००
प्रियप्रवास में काव्य, संस्कृति और दर्शन (१९६९)	,,	८.००
केशव और रामचन्द्रिका : पुनर्मूल्यांकन (१९६९)	डा. रामगोपालसिंह चौहान	६.००
महादेवी वर्मा और 'स्मृति की रेखाएँ' (१९६८)	राजनाथ शर्मा एम. ए.	३.००
महादेवी वर्मा और 'अतीत के चलचित्र'	,,	३.००
महादेवी और आधुनिक कवि	डा. तारकनाथ बाली	२.५०
रामधारीसिंह दिनकर और 'कुरुक्षेत्र' (१९६८)	,,	२.५०
सुमित्रानन्दन पंत और आधुनिक कवि	,,	४.००
सुमित्रानन्दन और उत्तरा	,,	३.००
रश्मिबन्ध और सुमित्रानन्दन पंत (१९६९)	देवेन्द्र शर्मा	४.००
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और उनकी चिन्तामणि (१९६९)	राजनाथ शर्मा एम. ए.	३.५०
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और त्रिवेणी (१९६९)	,,	२.५०
गुरुभक्तसिंह और नूरजहाँ	डा. तारकनाथ बाली	३.००
वृन्दावनलाल वर्मा और 'झाँसी की रानी'	राजनाथ शर्मा एम. ए.	३.५०
विश्वास का बल : आलोचनात्मक अध्ययन	,,	३.५०
चित्रलेखा : एक मूल्यांकन (१९६९)	,,	३.००
कथा कुसुमांजलि : आलोचनात्मक अध्ययन (१९६९)	,,	२.५०
राम की शक्तिपूजा तथा निराला (१९६९)	देवेन्द्र शर्मा एम. ए.	३.५०
वाणभट्ट की आत्मकथा : एक अध्ययन (१९६८)	राजेन्द्र मोहन भटनागर	३.५०

टीकाएँ

कामायनी की टीका (१९६९)	डा. तारकनाथ बाली	४.००
प्रियप्रवास की टीका (१९६९)	,,	४.००
साकेत की टीका (१९६९)	फूलचन्द्र जैन 'सारंग'	४.००
भ्रमरगीत-सार की टीका (१९६९)	डा. नरेन्द्रदेवसिंह एवं डा. राजेन्द्र शर्मा	४.००
रश्मिबंध की टीका (१९६९)	देवेन्द्र शर्मा	४.००

प्राचीन काव्य-ग्रन्थ (सटीक)

कबीर ग्रन्थावली (संजीवनी भाष्य सहित, १६६६)	डा. भगवत्स्वरूप मिश्र	१२.००
विद्यापति पदावली [सटीक]	डा. देशराजसिंह भाटी	(प्रेस में)
भ्रमरगीत-सार (१६६६)	सं. राजनाथ शर्मा	१०.००
विनय पत्रिका (१६६६)	,,	७.००
जायसी ग्रंथावली (१६६६)	,,	१२.००
बीसलदेव रासो	,,	२.५०
'घनानन्द कवित्त' का काव्य-वैभव (१६६६)	डा. प्रकाश दीक्षित	२.५०
विद्यापति वैभव (१६६६)	डा. गुणानन्द जुयाल एवं विश्वम्भर 'अरुण'	२.५०
कबीर साखी-सार (कबीरदास कृत) १६६८	डा. रामवाशिष्ठ एवं तारकनाथ बाली	३.५०
कबीर काव्य संग्रह (कबीर के चुने पद और साखियाँ)	डा. राजेश्वर प्रसाद	३.५०
सुदामा चरित (नरोत्तमदास कृत)	फूलचन्द्र जैन	०.७५
भँवरगीत (नन्ददास कृत)	डा. सुधीन्द्र	१.५०
पृथ्वीराज रासो (पदमावती समय)	डा. हरिहरनाथ टण्डन	२.५०
कयमास-वध (पृथ्वीराज रासो)	राकेश	२.५०
बिहारी-सतसई (१६६८)	देवेन्द्र शर्मा	५.००
रहीम सतसई (दोहावली)	विश्वम्भर 'अरुण'	१.५०

प्रश्नोत्तर शैली में

भारतीय काव्यशास्त्र (१६६६)	प्रो. कृष्णदेव शर्मा	३.५०
पाश्चात्य काव्यशास्त्र (१६६६)	,,	४.००
प्रेमचन्द (१६६८)	राजनाथ शर्मा	२.५०
कबीर (१६६८)	,,	२.५०
निराला (१६६७)	,,	२.५०
सुमित्रानन्दन पन्त (१६६७)	,,	२.५०
ग़बन (१६६६)	,,	१.००
गोदान (१६६६)	,,	२.५०
हिन्दी कहानियाँ (१६६६)	,,	४.५०
हिन्दी साहित्य का इतिहास (१६६६)	,,	२.५०
हिन्दी भाषा का इतिहास (१६६८)	,,	२.५०

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा के प्रमुख प्रकाशन

• प्रशिक्षण

भारतीय शिक्षा का इतिहास (पंचम संस्करण, १९६९)	जौहरी एवं पाठक	१०.००
An Outline of Indian Education	,,	9.00
भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ (१९६९)	,,	९.००
भारतीय शिक्षा की सामयिक समस्याएँ (१९६९)	चौधरी एवं उपाध्याय	९.००
भारतीय शिक्षा के आयोग (कोठारी कमीशन सहित)	पाठक एवं त्यागी	६.००
शिक्षा आयोग [कोठारी कमीशन] (द्वितीय संस्करण, १९६८)	,,	५.००
शिक्षा समस्या विशेषांक (१९६९)	[साहित्य-परिचय]	५.००
शिक्षा मनोविज्ञान (आठवाँ संस्करण, १९६९)	डा. एस. एस. माथुर	१२.५०
Educational Psychology (Third Edition, 1968)	Dr. S. S. Mathur	16.00
शिक्षा के सामान्य सिद्धान्त (१९६८)	पाठक एवं त्यागी	९.००
शिक्षा सिद्धान्त (शिक्षा के दार्शनिक तथा सा० आधार, १९६९)	डा. एस. एस. माथुर	७.००
शिक्षण कला (१९६८)	,,	७.००
सफल शिक्षण कला (१९६९)	पाठक एवं त्यागी	७.००
कक्षाध्यापन, पाठ संकेत निर्माण एवं विशिष्ट विधियाँ (१९६९)	भाई योगेन्द्रजीत	५.००
Basic Principles of Education	Johri & Pathak	12.50
विद्यालय प्रशासन एवं संगठन (१९६९)	एस. पी. सुखिया	६.००
शैक्षिक एवं विद्यालय प्रशासन (१९६७)	भाई योगेन्द्रजीत	६.००
स्वास्थ्य शिक्षा (पाँचवाँ संस्करण, १९६९)	डा. जी. पी. शेरी	७.५०
Health Education	Dr. S. P. Chaube	10.00
शिक्षा में क्रियात्मक अनुसन्धान (१९६९)	के. पी. पाण्डेय	३.५०
शिक्षा और मनोविज्ञान में सरल सांख्यिकी	,,	(प्रेस में)
शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन (१९६७)	रामपालसिंह एवं राधावल्लभ उपाध्याय	६.००
शैक्षिक पर्यवेक्षण के मूल तत्व (१९६९)	पारसनाथ राय	५.००
शिक्षा दर्शन (एम. एड्. तथा एम. ए. विद्यार्थियों के लिए)	डा. रामशकल पाण्डेय	८.००
शिक्षा के दार्शनिक सिद्धान्त (१९६९)	पाठक एवं त्यागी	७.००
सोवियत जनशिक्षा का स्वरूप	प्रो. नरेन्द्रसिंह चौहान एवं राजेन्द्रपालसिह	४.००
इंग्लैंड की शिक्षा प्रणाली	एच. एन. सिंह	४.५०
महान पश्चिमी शिक्षा-शास्त्री	डा. रामशकल पाण्डेय	५.००
अन्य भाषा शिक्षण	डा. महावीरसरन जैन	४.००

नैतिक-शिक्षा शिक्षण (१९६९)	के. सी. मलैया	३.००
शिक्षक प्रशिक्षण	विद्यावती मलैया	४.००
कक्षा शिक्षण में सहायक सामग्री (१९६७)	एम. एल. चौरसिया	३.००
A Sociological Approach to Indian Education	Dr. S. S. Mathur	12.50
Nehru on Society, Education and Culture	Dr. Sitaram Jayaswal	5.00
हिन्दी भाषा शिक्षण (१९६८)	भाई योगेन्द्रजीत	६.००
मातृभाषा शिक्षण (१९६८)	के० क्षत्रिया	६.००
इतिहास शिक्षण (१९६८)	गुरुसरनदास त्यागी	४.५०
सामाजिक अध्ययन तथा नागरिक शास्त्र शिक्षण (१९६७)	,,	४.००
नागरिक शास्त्र शिक्षण (१९६८)	,,	३.५०
भूगोल शिक्षण (१९६८)	एच. एन. सिंह	५.००
विज्ञान शिक्षण (१९६८)	डी. एस. रावत	४.००
गणित शिक्षण (१९६८)	एम. एस. रावत एवं मुकुटबिहारीलाल अग्रवाल	४.००
संस्कृत शिक्षण (१९६९)	डा. रामशकल पाण्डेय	४.५०
वाणिज्य शिक्षण (१९६७)	उदयवीर सक्सेना	४.००
गृह विज्ञान शिक्षण (१९६८)	डा. जी: पी. शेरी	६.००
अर्थशास्त्र शिक्षण (१९६८)	गुरुसरनदास त्यागी	४.००
Essentials of English Teaching (1968)	R. K. Jain	9.00

नार्मल परीक्षाओं के लिए

सरल शिक्षा मनोविज्ञान (१९६७)	डा. एस. एस. माथुर	४.००
नवीन शिक्षा सिद्धान्त तथा शिक्षण कला (१९६९)	डी. सी. भारद्वाज	३.००
नवीन शिक्षा मनोविज्ञान (१९६९)	,,	३.००
पाठशाला प्रबन्ध, स्वास्थ्य शिक्षा तथा सामुदायिक संगठन (१९६९)	,,	३.००
सरल शिक्षण विधियाँ (१९६९)	,,	५.००
बी० टी० सी० पाठ संकेत निर्माण (१९६८)	पी. एस. आर्य	३.००
प्रशिक्षण विद्यालयों में अंग्रेजी शिक्षण विधि (१९६९)	एम. एल. वर्मा	४.००
उद्यानशास्त्र तथा बागवानी (१९६८)	,,	४.००
कृषि शिक्षण (१९६८)	,,	३.००
कताई-बुनाई शिक्षण (१९६८)	कवलसिंह	३.००
बी० टी० सी० हिन्दी भाषा शिक्षण (१९६८)	उदयवीर सक्सेना	१.५०
बी० टी० सी० संस्कृत शिक्षण (१९६८)	,,	१.५०
बी० टी० सी० सामाजिक अध्ययन शिक्षण (१९६८)	,,	१.५०

बी० टी० सी० सामान्य विज्ञान शिक्षण (१९६८)	सुमतीशचन्द्र चौधरी	१.५०
बी० टी० सी० गणित शिक्षण (१९६८)	बी. पी. दुबे	२.००
बी० टी० सी० पुस्तककला शिक्षण (१९६९)	सत्यनारायण दूबे	१.५०
शिल्प-शिक्षण (१९६८)	,,	५.००
काष्ठकला शिक्षण (१९६९)	,,	१.५०
चित्रकला शिक्षण (१९६९)	आर. पी. वैश्य	२.००
चर्मकला शिक्षण	मानकचन्द गुप्ता	१.२५
बी० टी० सी० शिक्षा दिग्दर्शन [गाइड] (१९६९)	दिनेशचन्द्र भारद्वाज	७.५०
बी० टी० सी० प्रश्नपत्र उत्तर सहित (१९६७-६९)	शरतेन्दु	३.००
बुनियादी शिक्षा शास्त्र	बी. डी. शर्मा एवं तिवारी	४.५०
बुनियादी शिक्षा सिद्धान्त	बी. डी. शर्मा	२.५०
बुनियादी पाठन पद्धतियाँ	,,	२.५०

इण्टरमीडिएट के लिए

माध्यमिक शिक्षा शास्त्र (१९६९)	डा० सरयूप्रसाद चौबे	८.००
माध्यमिक शिक्षा सिद्धान्त और शैक्षिक विकास (१९६९)	,,	५.००
माध्यमिक शिक्षा मनोविज्ञान परिचय (१९६९)	,,	४.००

● मनोविज्ञान

मनोविज्ञान का इतिहास (१९६९	डा. जे. डी. शर्मा एवं डा. जी. डी. सारस्वत	१०.००
मनोविज्ञान के सम्प्रदाय (१९६८)	रामपालसिंह वर्मा	४.००
सामान्य मनोविज्ञान (१९६९)	डा. एस. एस. माथुर	७.५०
समाज मनोविज्ञान : प्रारम्भिक अध्ययन (१९६९)	डा. एस. एस. माथुर	७.००
समाज मनोविज्ञान (१९६८)	,,	१२.५०
Social Psychology	Dr. S. S. Mathur	14.00
शिक्षा मनोविज्ञान (१९६९)	डा. एस. एस. माथुर	१२.५०
Educational Psychology (1968)	Dr. S. S. Mathur	16.00
औद्योगिक मनोविज्ञान (१९६९)	डा. आर. के. ओझा	१२.५०
विकासात्मक मनोविज्ञान (१९६७)	भाई योगेन्द्रजीत	६.००
बाल मनोविज्ञान (१९६९)	भाई योगेन्द्रजीत	८.००
बाल व्यवहार विकास	डा० सरयू प्रसाद चौबे	७.००
Physiological Psychology	Dr. J. D. Sharma	8.00
मनोविज्ञान और शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन (१९६७)	आर. एन. अग्रवाल	११.००
Educational and Psychological Measurement	R. N. Agrawal	12.00
व्यक्तित्व : प्रकृति एवं मापन	,,	२.५०

बुद्धि : प्रकृति, सिद्धान्त एवं मापन	आर. एन. अग्रवाल	३.००
व्यावहारिक मनोविज्ञान	सुरेशचन्द्र शर्मा एम. ए.	६.००

(प्रश्नोत्तर शैली में)

बी० एड्० दिग्दर्शन (गाइड) [१९६९]	सं. दिनेशचन्द्र भारद्वाज, आदि	१५.००
शिक्षा-सिद्धान्त (१९६९)	भाई योगेन्द्रजीत	३.००
शिक्षा मनोविज्ञान (१९६९)	"	३.००
शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा (१९६९)	"	६.००
शिक्षा सिद्धान्त की रूपरेखा (१९६८)	"	६.००
शिक्षण कला (१९६९)	"	५.००
आधुनिक भारतीय शिक्षा (१९६८)	पाठक एवं त्यागी	६.००
भारतीय शिक्षा का इतिहास (१९६९)	कपूरचन्द जैन	४.००
भारतीय शिक्षा की आधुनिक समस्याएँ (१९६९)	दिनेशचन्द्र भारद्वाज	४.००
विद्यालय प्रशासन एवं स्वास्थ्य शिक्षा (१९६८)	"	६.००
विद्यालय प्रशासन (१९६८)	"	४.००
पाठशाला प्रबन्ध (१९६९)	"	३.५०
स्वास्थ्य-विज्ञान (१९६८)	"	३.००
हिन्दी भाषा शिक्षण (१९६८)	"	३.००
भूगोल शिक्षण (१९६८)	"	२.००
विज्ञान शिक्षण (१९६७)	डी. सी. शर्मा	२.००
English Teaching (1969)	Prof. Pathak	3.00
इतिहास शिक्षण (१९६९)	जी. डी. सत्संगी	२.००
सामाजिक अध्ययन शिक्षण (१९६९)	"	२.००
नागरिक शास्त्र शिक्षण (१९६८)	"	२.००
अर्थशास्त्र शिक्षण (१९६८)	"	२.००
आगरा विश्वविद्यालय बी० एड० प्रश्नपत्र (१९६३ से १९६९ तक)	प्रो० सक्सेना	७.५०
राजस्थान विश्वविद्यालय बी० एड्० प्रश्नपत्र (१९६६ से १९६९ तक)	प्रो. वर्मा	६.००

● गृहविज्ञान

वस्त्र विज्ञान के मूल सिद्धान्त (१९६९)	डा. जी. पी. शेरी	६.००
मातृकला एवं शिशुकल्याण (१९६८)	"	६.००
गृह व्यवस्था (१९६९)	"	६.००

धार्मिक और नैतिक शिक्षा

प्रो० बालकृष्ण त्रिपाठी
श्री जैन शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, अलवर (राज०)

धर्म का अर्थ—हमारा देश प्राचीनकाल से धर्म तथा नैतिकता प्रधान रहा है। महाभारत के शान्ति पर्व में धर्म को मानव जीवन की अत्यधिक परिष्कृत तथा महत्त्वपूर्ण धारणा माना गया है, जो मानव को आध्यात्मिक जगत् के उच्च जीवन को व्यतीत करने को प्रभावित करती है। ईसाई मत के अनुसार धर्म एक ऐसा विचार है जो समस्त व्यक्तियों को प्रेम एवं सहानुभूति तथा पारस्परिक कर्त्तव्यों एवं अधिकारों के बन्धन में बाँध देता है। इस्लाम शब्द की उत्पत्ति सालम शब्द से हुई है जिसका अर्थ है शान्ति अथवा शान्तिपूर्वक ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार कर लेना। सिकेरा के मतानुसार धर्म का अर्थ है 'व्यक्ति की पूर्णभावना ईश्वर में होना। यह भावना केवल इस पर आधारित नहीं कि जो कुछ व्यक्ति स्वयं ईश्वर के प्रति बना लेता है अपितु इस भावना का मुख्य आधार ईश्वर द्वारा प्रतिपादित वे सिद्धान्त जिन्हें ईश्वर ने स्वयं अपने विषय में बताये हैं—अपनी प्रकृति तथा जीवन के विषय में अथवा व्यक्ति के मोक्ष के विषय में जिस तरीके का अनुसरण करके व्यक्ति उसके पास पहुँच सकता है।'

कुछ लोग धर्म से तात्पर्य किसी मतमतान्तर को मानना, धार्मिक पुस्तकों को पढ़ना तथा धार्मिक कृत्यों को करना-मात्र मानते हैं।

डा० राधाकृष्णन के अनुसार "धर्म का अभिप्राय मतमतान्तर को मानना, भावनाओं की अनुभूति करना अथवा धार्मिक कृत्यों की पूर्ति करने से नहीं है अपितु यह तो एक परिवर्तित जीवन है।" इन्होंने धर्म को आत्मानुभूति माना है क्योंकि आत्मानुभूति से धर्मान्धता नहीं पनपती है।

उपर्युक्त लिखित विभिन्न विचारों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि धर्म शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया जाता है—एक तो संकुचित अर्थ में और दूसरा विस्तृत अर्थ में। जब हम धर्म शब्द का प्रयोग संकुचित रूप में करते हैं तो प्रत्येक धर्म में तीन सामान्य बातें पाते हैं—(१) एक ईश्वर या किसी पारलौकिक सत्ता में विश्वास (चाहें जिस रूप में)। (२) एक धार्मिक पुस्तक। (३) एक निश्चित धार्मिक स्थान (मन्दिर, गिरजाघर, मस्जिद)। धर्म का संकुचित रूप ही धार्मिक कृत्यों को करने, मतमतान्तर को मानने तथा अन्धविश्वासों में श्रद्धा बनाये रखने की प्रेरणा देता है। धर्म का यही रूप विश्व में समय-समय पर रक्तपात को जन्म देता रहा है।

जब हम धर्म शब्द का प्रयोग विस्तृत रूप ले लेते हैं तो इसका तात्पर्य कर्त्तव्य होता है। इसके अन्तर्गत उन सब गुणों का समावेश होता है जो मानव को जीवन के चिरन्तन मूल्यों—सत्यं, शिवम्, सुन्दरम् की प्राप्ति में सहायक होते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में जब हम धार्मिक शिक्षा की बात करते हैं तो धर्म के विस्तृत रूप से ही हमारा तात्पर्य होता है।

नैतिकता का अर्थ—धर्म शब्द का अर्थ समझ लेने के पश्चात् नैतिकता का अर्थ भी स्पष्ट होना आवश्यक हो जाता है। मोटे तौर पर मानव की समस्त क्रियाओं को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है—(१) अनिवार्य अथवा मूलप्रवृत्यात्मक क्रियायें (२) स्वेच्छा पर आधारित क्रियायें। स्वेच्छा पर आधारित क्रियायें भी दो प्रकार की होती हैं-(अ) रचनात्मक तथा समाजोपयोगी (ब) विघटनात्मक तथा समाज विरोधी क्रियायें। व्यक्ति की वे क्रियायें जो स्वेच्छा पर आधारित होते हुये भी रचानात्मक तथा समाजोपयोगी होती हैं नैतिक क्रियायें कहलाती हैं। नैतिकता शब्द का अंग्रेजी रूपान्तर शब्द Morality है। Morality शब्द लैटिन भाषा के 'Mores' शब्द से बना है जिसका अर्थ है—तरीके, रीति-रिवाज या एक समूह के सिद्धान्त।

T. Raymont महोदय ने सद् आचरण को

ही नैतिकता माना है। Hurlock के मतानुसार "सच्ची नैतिकता का अर्थ व्यक्ति के उस व्यवहार से है जो सामाजिक मान्यताओं के अनुकूल होता है तथा जिसे व्यक्ति स्वेच्छा से करता है। व्यक्ति की आत्मा इस प्रकार के व्यवहार को करने की प्रेरणा देती है तथा नियन्त्रण रखती है। इसे करने में व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत उत्तरदायित्व की भावना महसूस करता है तथा व्यक्तिगत हितों की अपेक्षा समूह के हितों को प्राथमिकता देता है।" नैतिक क्रियाओं को दो भागों में बाँटा जा सकता है—

(१) **सर्वमान्य नैतिक क्रियायें**—वे नैतिक क्रियायें जो सम्पूर्ण मानव समाज द्वारा मान्यता प्राप्त होती हैं, जैसे सत्य बोलना, परोपकार करना, कर्त्तव्य परायण होना।

(२) **समाज विशेष की नैतिक क्रियायें**—इस प्रकार की नैतिक क्रियायें देश, काल तथा परिस्थितियों की विभिन्नता के कारण भिन्न-भिन्न मानव समुदायों में भिन्न-भिन्न रूप में पायी जाती हैं, जैसे भारतवर्ष में खुलेआम प्रेम प्रदर्शन एक अनैतिक कार्य माना जाता है जब कि इङ्गलैण्ड में ऐसा नहीं माना जाता।

धर्म तथा नैतिकता में अन्तर—कुछ लोग धर्म तथा नैतिकता में कोई सम्बन्ध नहीं मानते। वे अपने पक्ष में निम्नांकित तर्क प्रस्तुत करते हैं—

(१) बड़े-बड़े धर्माधिकारी भी नैतिकता रहित पाये गये।

(२) धर्म में पाप तथा पुण्य का अधिक महत्व है; किन्तु नैतिकता में दण्ड तथा पुरस्कार का निम्नतम् स्थान है।

धर्म तथा नैतिकता में सम्बन्ध—जब हम धर्म शब्द का प्रयोग विस्तृत अर्थ में लेते हैं तो धर्म तथा नैतिकता में कोई भेद नहीं रह जाता। बर्ट्राण्ड रसल के मतानुसार धर्म ने ही नैतिक आचरण की सृष्टि की है। अतः बिना धर्म के नैतिकता की कल्पना करना व्यर्थ है।

रायबर्न महोदय का मत है कि जब तक नैतिकता को किसी धर्म से सम्बन्धित न किया जायगा, बालकों को नैतिकता की शिक्षा देना असम्भव होगा।

धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा का महत्त्व—धर्म तथा नैतिकता के अर्थ में मत विभिन्नता होते हुए भी सभी विद्वान इनके महत्त्व को एकमत से स्वीकार करते हैं। रॉस के मतानुसार कोई भी नवयुवक धर्म के द्वारा ही जीवन के शाश्वत मूल्यों की प्राप्ति कर सकता है। इटली के प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री G. Gentile का कथन है कि राष्ट्रीय संस्कृतियों को इस समय मन की उच्च-तर-आवश्यकतायें पूर्ण करने की जितनी अधिक जरूरत इस समय है, पहले कभी न थी। यह मानसिक आव-श्यकतायें न केवल सौन्दर्यानुभूति तथा सूक्ष्म बौद्धिक ही हैं वरन् ये धार्मिक तथा नैतिक भी हैं। केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड का विचार है कि यदि कोई राष्ट्र धार्मिक तथा नैतिक गुणों से अपने आपको वंचित कर दे और केवल भौतिक सुख साधनों को ही जुटाने में पड़ जाय तो यह भौतिक सुख चाहे जितने मूल्यवान हों किन्तु वह राष्ट्र बिल्कुल प्राणहीन शरीर के तुल्य होगा। डा० राधाकृष्णन के अनुसार तो यदि हम शिक्षा संस्थाओं को आध्यात्मिक शिक्षा से वंचित कर दें तो हम अपने ऐतिहासिक विकास की धारा से ही विमुख हो जायेंगे।

आधुनिक युग में धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा की प्रधान आवश्यकता के कारण—आज का युग प्रधानतः भौतिक युग है। इसमें जीवन के शाश्वत मूल्यों का कोई महत्त्व नहीं रह गया है। राज्यकर्मचारियों, व्यापारियों तथा जीवन के प्रत्येक अंग में भ्रष्टाचार का बोलबाला दिखाई पड़ रहा है। छात्रों में नैराश्य-भावना, अशिष्टता तथा अराजकता जैसे दुर्गुण पनपने लगे हैं। गुरु तथा शिष्य में पुनीत सम्बन्धों का अभाव है। नव-युवकों में आत्मबल तथा आत्मविश्वास की कमी दिखाई पड़ रही है। इन सभी अवांछनीय तत्त्वों को निर्मूल करने तथा सामाजिक शृङ्खलाओं को दृढ़ करने के लिए धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा को अपनाना होगा।

विश्व के अधिकांश देशों ने आज के भौतिकवादी युग में धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा की आवश्यकता का अनुभव किया है। जापान में नैतिकता की शिक्षा पर बड़ा बल दिया जाता है। वहाँ नैतिकता की शिक्षा औपचारिक ढंग से दी जाती है। फ्रांस जो कि एक धर्म निरपेक्ष राज्य है नैतिकता की शिक्षा को गणित तथा भाषा की शिक्षा से कम महत्त्वपूर्ण नहीं मानता। जर्मनी में धार्मिक तथा धर्म निरपेक्ष दो प्रकार के विद्यालय होते हैं। धर्म निरपेक्ष विद्यालयों में भी नाग-रिकता के शिक्षण के साथ-साथ नैतिकता की शिक्षा

दी जाती है। अमेरिका में वातावरण को नैकिततापूर्ण बनाकर इस प्रकार की शिक्षा का प्रबन्ध किया गया हैं। इंगलैंड में भी इस पर जोर दिया जा रहा है। मुस्लिम देशों में भी धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा का जोर है।

Whitehead का कथन भारतवर्ष में धर्म के महत्त्व को पूर्णरूप से स्पष्ट कर देता है "विश्व में कोई भी ऐसा देश नहीं है जहाँ पर धर्म, लोगों के दैनिक जीवन को इतना अधिक प्रभावित करता हो जितना कि भारतवर्ष में। भारतवर्ष में धर्म केवल जन्म, विवाह, मृत्यु तथा समाज में व्यक्ति का स्थान निश्चित करने जैसे महत्त्वपूर्ण कार्यों तक ही सीमित नहीं अपितु यह भी निश्चित करता है कि लोग क्या खा सकते हैं? क्या पी सकते हैं? कौन उनका खाना बना सकता है? और कब उन्हें बाल मुड़ाना उचित है।"

भारतवर्ष में धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा इतिहास—भारतवर्ष में प्राचीन काल में शिक्षा तथा धर्म का घनिष्ट सम्बन्ध था। धार्मिक शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का पूर्ण विकास कर शाश्वत सत्य का साक्षात्कार कराना था। वैदिक काल में शिक्षा का ध्येय बालकों को आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर कर ईश्वर प्राप्ति कराना था। अतः धर्म का शिक्षा में प्रधान स्थान था। बौद्ध काल में भी शिक्षा में धर्म की प्रधानता थी। बालक को शिक्षा प्रारम्भ करते वक्त पवज्जा संस्कार करना पड़ता था और उसे तीन प्रण करने पड़ते थे—

(अ) 'बुद्धं शरणं गच्छामि
(ब) धर्मं शरणं गच्छामि
(स) संघं शरणं गच्छामि'

मध्यकाल में भी धार्मिक शिक्षा की प्रधानता रही। मुसलमानों ने शिक्षा को धर्म प्रचार का साधन बनाया। ब्रिटिश काल में पुर्तगाली, फ्रांसीसी तथा अंग्रेजी मिशनरियों ने शिक्षा के माध्यम द्वारा ईसाई धर्म का प्रचार प्रारम्भ किया। सन् १८५४ के वुड घोषणा पत्र, सन् १८५८ में महारानी विक्टोरिया की घोषणा तथा सन् १८८२ के हण्टर कमीशन के सुझावों ने धार्मिक शिक्षा के क्षेत्र में तटस्थता की नीति अपनाई। सन् १९०२ के भारतीय विश्वविद्यालय आयोग ने धार्मिक शिक्षा के सम्बन्ध में पाठ्यक्रम तथा पाठ्य-पुस्तकों को अस्वीकार कर दिया। सन् १९४४ में केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार समिति ने धर्म को पाठ्यक्रम का अनिवार्य अंग बताया। सन् १९४८ के राधाकृष्णन आयोग ने धार्मिक शिक्षा के महत्त्व को स्वीकार करते हुए इसे क्रियान्वित करने के लिए अनेक सुझाव दिये।

सन् १९५० में धर्म निरपेक्ष राज्य की घोषणा कर राज्य द्वारा चलाये जाने वाले विद्यालयों में किसी भी धर्म की शिक्षा पर प्रतिबन्ध लगाया गया। सन् १९५२-५३ में माध्यमिक शिक्षा आयोग तथा सन् १९६४-६६ में कोठारी शिक्षा-आयोग ने धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुये इनकी आवश्यकता का अनुभव किया।

धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा के मार्ग में कठिनाइयाँ—धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा को विद्यालयों में क्रियान्वित करने में निम्नांकित कठिनाइयों का आभास किया जाता है—

(१) धर्म निरपेक्ष राज्य में इस प्रकार की शिक्षा देना प्रसंवैधानिक है।

(२) धार्मिक पढ़ाई से केवल ज्ञानात्मक पक्ष की वृद्धि होगी, व्यवहारिक लाभ की आशा नहीं।

(३) नैतिकता को सिद्धान्त रूप में समझाना कठिन है।

(४) कभी-कभी बार-बार धार्मिक विषयों तथा नैतिकता की बात छात्रों से करने में उन्हें ये वस्तुएँ भयावह मालूम पड़ने लगती हैं।

(५) अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाने से छात्रों की रुचि नहीं होगी। इसे कैसे पढ़ाया जाय तथा इसे कौन पढ़ाये? आदि अनेक समस्यायें हैं।

धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा को व्यवहारिक बनाने के सुझाव—यदि उपर्युक्त अंकित कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुये धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा को न अपनाया गया तो यह उसी प्रकार होगा जैसे रोगों के भय से शरीर को ही समाप्त कर दिया जाय। महत्मा गांधी ने बताया कि सभी धर्मों के मूलभूत सिद्धान्त एक हैं अतएव इस प्रकार के सिद्धान्तों की शिक्षा देना वांछनीय है। डा० राधाकृष्णन के मतानुसार कक्षा का कार्य प्रारम्भ होने से पूर्व प्रत्येक को प्रातः थोड़ा सा समय मौन चिंतन के लिए अवश्य देना चाहिए। यह विद्यालय के जीवन का एक अभिन्न अंग बन जाय। इन थोड़े से क्षणों में हम अपने मस्तिष्क को प्रतिदिन की बाधाओं से मुक्त कर सकें और इस बात को जान सकें कि

जीवन का क्या मूल्य तथा अर्थ है ? माध्यमिक शिक्षा आयोग ने बताया कि विद्यालय के उपयुक्त वातावरण तथा सच्चरित्र अध्यापकों के प्रभाव से धार्मिक शिक्षा सरलता से दी जा सकती है । इस आयोग के अनुसार स्कूल प्रारम्भ होने के समय ऐसी सामूहिक ईश प्रार्थना हो जो किसी विशेष धर्म से सम्बन्धित न हो । सच्चरित्र विद्वानों के भाषणों द्वारा नैतिकता की शिक्षा दी जाय । श्री प्रकाश समिति ने सुझाव दिया कि जन शिक्षा के प्रसार द्वारा घर के वातावरण में सुधार किया जाय । विद्यालयों में कार्य प्रारम्भ के पूर्व कुछ मिनट शान्त प्रार्थना हो । प्राथमिक स्तर से विश्वविद्यालय स्तर तक के लिये उचित पुस्तकें तैयार की जाँय । इनमें प्रत्येक धर्म के मूल सिद्धान्तों व प्रत्येक धर्म के प्रमुख प्रवर्त्तक की जीवनगाथा का वर्णन हो। शिष्टाचार के गुणों तथा सहगामी क्रियाओं को प्रोत्साहन दिया जाय ।

निष्कर्ष—छात्रों में बढ़ती हुई अनुशासनहीनता को रोकने, समाज में व्याप्त शोषण तथा भ्रष्टाचार को निर्मूल करने तथा देश के नैतिक स्तर को उच्च उठाने के लिए विभिन्न आयोगों द्वारा दिये गये सुझावों के आधार पर धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा का एक संगठित कार्यक्रम क्रियान्वित करना होगा । इस प्रकार के कार्यक्रम में सभी धर्मों की सामान्य बातों का समावेश करना होगा । पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं में धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा के अभ्यास का अवसर दिया जाय । अध्यापकों के चयन में दृढ़ चरित्र, सहनशीलता तथा विशाल दृष्टिकोण जैसे गुणों को प्रधानता दी जाय । नैतिक तथा धार्मिक मूल्यों को विद्यालय के उद्देश्य घोषित किये जायें । अध्यापकों को उनके प्रशिक्षण काल में ही इन मूल्यों से अवगत करा दिया जाय । धार्मिक शिक्षा की विधि तथा पाठ्यक्रम स्तर के अनुसार होना चाहिए । धार्मिक तथा नैतिक मूल्यों की शिक्षा विद्यालय के सभी साधनों—पाठ्यक्रम, पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं, नाटक, खेलकूद, सांस्कृतिक आयोजन के माध्यम से दी जाय । धार्मिक शिक्षा के मार्ग में आयी कठिनाइयाँ वस्तुतः धर्म को संकुचित अर्थ में लेने से उपस्थित होती हैं अन्यथा धर्म तथा नैतिकता की शिक्षा में किसी प्रकार के पारस्परिक विरोध का प्रश्न ही नहीं उठता । जहाँ तक संविधान की धर्म निरपेक्ष प्रकृति की बात है इस प्रकार की शिक्षा में कोई बाधा उत्पन्न नहीं करती । डा० राधाकृष्णन के मतानुसार धर्म निरपेक्ष राज्य का अर्थ अधार्मिक नहीं है । इसका आशय तो यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को स्वतन्त्रता है कि वह उस परम प्रभु की अपने मन के मुताबिक और अपनी शक्ति के अनुकूल आराधना करे । यदि हमारे धर्म निरपेक्ष राज्य का यह आधार है तो धर्म निरपेक्ष का मतलब धार्मिक निरक्षर भट्टाचार्य होना नहीं, इसका अर्थ है गहन रूप से आध्यात्मिक होना तथा संकुचित रूप से धर्म का पालन नहीं ।

◉

[पृष्ठ १ का शेषांश]

इसके फलस्वरूप स्वतन्त्रता के लगभग उन्नीस वर्ष बाद कोठारी आयोग ने संस्तुति प्रस्तुत की कि भविष्य में किसी भी विद्यालय को बेसिक स्कूल न कहा जाए ।

उपर्युक्त विवरण यह स्पष्ट कर देने के लिए पर्याप्त हैं कि हमने गाँधी जी के नाम का लाभ प्रत्येक क्षेत्र में उठाने की कोशिश की किन्तु गाँधी जी के सिद्धान्तों पर हमने आचरण किसी क्षेत्र में नहीं किया ।

आज आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने हृदय को टटोलें और देखें कि हम गाँधी जी के सिद्धान्तों पर किस सीमा तक चल सकते हैं ? गाँधी जी के बताए हुए मार्ग पर यदि चलना है, तो हम सच्चे दिल से चलें । आडम्बर एवं पाखण्ड से काम नहीं चलेगा । गाँधी जी को यदि हम शिक्षाशास्त्री स्वीकार करते हैं तो उनके शैक्षिक सिद्धान्तों को अपनाने का भी हमें साहस दिखाना चाहिए ।

प्रस्तुत अंक में गाँधी जी के शैक्षिक सिद्धान्तों से सम्बन्धित कुछ लेख हैं । गाँधी-जन्म-शताब्दी के अवसर पर **साहित्य-परिचय** की यह राष्ट्रपिता के प्रति एक प्रकार से श्रद्धांजलि है । **साहित्य-परिचय** की यह कामना है कि शिक्षा-जगत् में गाँधी जी के सिद्धान्तों के पठन-पाठन में युवा-वर्ग की रुचि जागृत हो ।

◉

तुलसीदास (१९६९)	प्रो. भारतभूषण सरोज	२.५०
भाषा-विज्ञान (१९६९)	,,	२.५०
साहित्यालोचन (१९६९)	,,	२.५०
बिहारी (१९६९)	,,	२.५०
जायसी (१९६८)	,,	२.५०
उद्धव-शतक (१९६९)	,,	२.५०
कामायनी (१९६९)	,,	१.००
प्रियप्रवास (१९६७)	,,	१.००
साकेत (१९६९)	,,	१.५०
सूरदास (१९६९)	वासुदेव शर्मा शास्त्री	२.५०
कवि प्रसाद (१९६७)	डा. शम्भुनाथ पाण्डेय	२.५०
गद्यकार प्रसाद	डा. शम्भुनाथ पाण्डेय	२.५०
चन्द्रगुप्त (१९६९)	,,	२.५०
महाकवि देव (१९६९)	सीताराम शास्त्री	१.५०
विद्यापति (१९६८)	डा. मुरारीलाल उप्रैतिः	२.५०
केशवदास (१९६८)	डा. जयकिशन प्रसाद	२.५०
नन्ददास	कामताप्रसाद साहू	१.५०
विनय-पत्रिका (१९६९)	डा. रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'	२.५०
भ्रमरगीत-सार (१९६८)	,,	२.५०
पदमावती समय (१९६८)	राकेश	२.५०
रामचन्द्रिका (१९६८)	,,	२.५०
चन्द्रावली नाटिका (१९६८)	,,	२.५०
संस्कृत साहित्य का इतिहास (१९६९)	डा. द्वारिकाप्रसाद	४.००
पालि साहित्य का इतिहास (१९६९)	डा. राजकिशोर सिंह	२.५०
वैदिक साहित्य का इतिहास (१९६९)	,,	४.००
काव्यप्रकाश (१९६८)	डा. पारसनाथ द्विवेदी	२.५०

प्रकाशक :

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा.

पुस्तक समीक्षा

मैथिलीशरण गुप्त और उनका साहित्य

लेखक—दानबहादुर पाठक 'वर'; प्रकाशक—विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा; पृष्ठसंख्या—५१२; मूल्य—१०.०० ।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग में जिन दो-तीन महाकवियों के नाम शीर्षस्थ हैं उनमें से मैथिलीशरण गुप्त अपना विशिष्ट महत्त्व रखते हैं। मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओं की संख्या ४० से अधिक है, और उनमें विषय और शैली का वैविध्य भी दिखाई पड़ता है। गुप्त जी का काव्य मूलतः सामाजिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय भूमिकाओं पर है। आज के युग में इन भूमिकाओं पर लिखे जाने वाले महत्त्वपूर्ण साहित्य का अभाव है। गुप्त जी के साहित्य का एक और पक्ष है। हम यह कह सकते हैं कि यदि व्यापक लोकप्रियता की कसौटी पर कसा जाये तो गुप्त जी का साहित्य सर्वाधिक लोकप्रिय सिद्ध होगा। अपनी लोकप्रियता में गुप्त जी का वही स्थान कविता साहित्य में है जो प्रेमचन्द जी का कथा साहित्य में है।

गुप्त जी एक समन्वयवादी कवि हैं। उनके भाव विचार और शैली तीनों में ही समन्वय देखने को मिलता है। उनके साहित्य का मूलतत्त्व प्राचीन परम्परा की धारा से सिंचित है। परन्तु उसका अंकुरण आधुनिक वातावरण में हुआ है। अतः उसका स्वरूप आधुनिक है। प्राचीन और आधुनिक दोनों को लेकर चलने वाला उनका साहित्य हमारी संस्कृति की वास्तविक भूमि तैयार करता है।

श्री दानबहादुर पाठक ने अपने इस ग्रन्थ में महाकवि मैथिलीशरण गुप्त के व्यक्तित्व और साहित्य का अनुशीलन किया है। उन्होंने न केवल उनके कवित्व पक्ष का उद्घाटन किया है वरन् गुप्त जी के काव्य की आधार भूमि व परम्परा को भी स्पष्ट किया है। गुप्त जी की अन्य कृतियों का परिचयात्मक विवरण देते हुए उन्होंने साकेत का अत्यन्त विस्तार से विवेचन किया है। इसके अन्तर्गत साकेत के कथानक, उसकी विचार-धारा, भाषा शैली, भावसृष्टि और उसके महाकाव्यत्व पर विशेष विचार किया गया है। यह अध्ययन उच्च-कक्षा के विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त उपादेय है। इस ग्रन्थ के अन्तर्गत गुप्त जी की समस्त कृतियों के आधार पर उनके काव्य-शिल्प के विविध पक्षों का अनुशीलन और गुप्त जी के विभिन्न विषयों पर प्राप्त विचारों का आकलन है। इसके अन्तर्गत यह मूलतत्त्व उद्घाटित किया गया है कि गुप्त जी तत्त्वतः एक सांस्कृतिक कवि हैं।

इस प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ में पाठक जी ने गुप्त जी के व्यक्तित्व और कवि रूप का सुन्दर विश्लेषण किया है। उनका यह विश्लेषण तर्क संगत एवं प्रमाण पुष्ट विवेचन से संयुक्त है और इस सांगोपांग अनुशीलन के लिए पाठक जी बधाई के पात्र हैं।

—भगीरथ मिश्र

नैतिक-शिक्षा-शिक्षण

लेखक—के० सी० मलैया, प्रकाशक—विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, १९६९; पृष्ठसंख्या १०८, मूल्य—३.०० ।

नैतिक शिक्षा पर लगभग सभी आयोगों ने बल दिया है और यह संस्तुति की है कि विद्यालयों में छात्रों को नैतिक शिक्षा दी जाये। भारत में नैतिक शिक्षा पर सदा से बल रहा है किन्तु आधुनिक युग में विद्यालयों में इस ओर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। यह स्थिति शोचनीय है। नैतिकता व्यवहार में स्थिरता लाती है। नैतिकता और अनुशासन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसीलिए विश्व के सभी विचारकों ने नैतिक शिक्षा को बालकों के लिए आवश्यक माना है।

आश्चर्य की बात है कि इतने महत्त्वपूर्ण विषय पर हिन्दी में पुस्तकों का अभाव है। इस दृष्टि से श्री के० सी० मलैया का प्रयास सराहनीय है।

प्रस्तुत पुस्तक २२ अध्यायों में विभक्त है। जापान

फ्रांस, इङ्गलैंड और अमेरिका में प्रचलित नैतिक शिक्षा का भी एक-एक अध्याय में वर्णन किया गया है। नैतिक शिक्षा के अन्य पक्षों पर भी प्रकाश डाला गया है।

पुस्तक का नाम भ्रामक है। शिक्षा शब्द शिक्षण का समावेश कर लेता है। अतः 'नैतिक-शिक्षा-शिक्षण' के स्थान पर 'नैतिक-शिक्षा' नाम ही पर्याप्त होता। मुद्रण एवं साजसज्जा उत्तम है।

कार्निवाल

लेखक—मोहन राकेश, प्रकाशक—राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली; पृष्ठ संख्या १९६, मूल्य ४.०० ।

आधुनिक साहित्य—विशेषकर कथा-साहित्य, मनोविश्लेषण की पद्धति के प्रभाव स्वरूप मानव मन की कुण्ठाओं, मनःग्रन्थियों और अतृप्त लालसाओं से उद्भूत घुटन का चित्रण करता है। इस सबसे हटकर सामान्य रूप से जीने और अपने अनुतापों, चिन्ताओं आदि का बोझ मन पर से फेंककर पारस्परिक स्नेह और प्यार के आदान-प्रदान करने के इच्छुक जनवर्ग का चित्रण वस्तुतः पाठक को राहत देने वाला होता है। सभ्यता के तथाकथित और तथाप्रतिष्ठित कृत्रिम आवरणों और व्यवहारों से परे बम्बई के झोंपड़ीवासी सामान्य इन्सानों के जीवन का यथार्थ एवं अन्तरंग चित्रण कृश्न चन्दर के इस उपन्यास की विशिष्ट उपलब्धि है। कार्निवाल जिन्दगी का प्रतीक है और "इसमें जाने वाला आखिर को हारता है—हर कोई जीतने वाला भी, हारने वाला भी, टिकट बेचने वाला भी, टिकट खरीदने वाला भी। अन्त में हर कोई हारता है। कुछ मिनट की खुशी, कुछ मिनट की रोशनियाँ, कुछ मिनट के लिए आदमी झूले में ऊपर जाता है, फिर नीचे आ जाता है, वहीं से जहाँ से वह चला था।"

पर यह निष्कर्ष न तो उपन्यास का मुख्य भाव है और न उसके प्रमुख पात्र पर घटित ही होता है। उपन्यास का नायक 'लाली' कार्निवाल के एक बूथ का 'बार्कर' है। वह उन सब लोगों का प्रतीक है जो अपने छोटे-छोटे अरमानों को पूरा कर जीवन की स्वस्थ और सही राह पाने के लिए उत्सुक हैं। उसका उद्देश्य केवल अपनी ब्याहता शोभा और भावी सन्तान के साथ सुखी और स्वस्थ जीवन बिताना है। उसकी कमजोरी है केवल कार्निवाल के 'बार्कर' के काम के अतिरिक्त और कोई काम न जानना। अपना काम उसे आत्म-सम्मान के लिए छोड़ना पड़ता है और फिर अपनी भावी सन्तान का ख्याल करके होशंगबाई—जिसके बूथ पर वह काम करता था—के चंगुल से बचने के लिए उसे पा भी नहीं सकता। अपने साथी झग्गा के साथ खजांची को लूटकर रुपया प्राप्त करने के लिए वह केवल इसी अरमान से अपनी आत्मा और स्वयं की अवहेलना करके जाता है कि उस रुपये से वह आसाम में अपनी बीबी और बच्चे के साथ आराम से रह सकेगा। पर योजना असफल हो जाने और स्वयं का पकड़ा जाना निश्चित होने पर वह छुरा मारकर आत्म-हत्या कर लेता है। इस काम के लिए उसे कोई पश्चाताप नहीं और मरने से पहले उसे केवल यही संतोष है कि उसने जीवन भर किसी से माफी नहीं माँगी और व वह ऐसा कर ही सकता था। यही संदेश वह अपनी पत्नी को, अपनी भावी सन्तान को देने के लिए छोड़ जाता है।

यह उपन्यास मोलनार के एक प्रसिद्ध नाटक पर आधारित है। नाटक को उपन्यास में रूपान्तरित करने के प्रयास में लेखक को भारी सफलता मिली है। विवरण की न्यूनता और कथोपकथनों की प्रधानता, उनका गठन और पात्रानुकूल भाषा ने उपर्युक्त देश-काल और वातावरण की सफल सृष्टि की है। कथा-वस्तु सुगठित एवं नाटकीय विशेषताओं को लिए हुए है तथा पात्रों के जीवन का सजीव चित्रण प्रस्तुत करने में सफल है।

—अम्बिकाचरण शर्मा

हिन्दी साहित्य

नई कविता स्वरूप और समस्यायें : डा० जगदीश गुप्त, क्राउन, पृष्ठ ४०८, मूल्य १०.००
जयशंकर 'प्रसाद' और लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन : (शोध प्रबन्ध) शशिशेखर नैथानी, डिमाई, पृष्ठ ३८४, मूल्य २०.००
हिन्दी साहित्य का आधुनिककाल : डा० जयकिशन प्रसाद, डिमाई, पृष्ठ ३४६, मूल्य ६.००
महादेवी : नया मूल्यांकन : डा० गणपतिचन्द्र गुप्त, डिमाई, पृष्ठ ३४८, मूल्य १५.००
सन्त साहित्य और साधना : भुवनेश्वरनाथ मिश्र, डिमाई, पृष्ठ २७६, मूल्य १४.००
हिन्दी निबन्ध की विभिन्न शैलियाँ : डा० मोहन अवस्थी, डिमाई, पृष्ठ ३५३, मूल्य १६.००
पाश्चात्य काव्यशास्त्र : कृष्ण देव शर्मा, क्राउन, पृष्ठ ३३४, मूल्य ४.००
महादेवी वर्मा और 'सन्धिनी' : (आलोचना एवं व्याख्या) डा० देशराजसिंह भाटी, क्राउन, पृष्ठ ३३५, मूल्य ४.००

शिक्षा, मनोविज्ञान

भारत में दृश्य-श्रव्य शिक्षा : सुजीत के० चक्रवर्ती, डबल क्राउन, पृष्ठ ३१२, मूल्य १८.००
सामान्य मनोविज्ञान : डा० एस० एस० माथुर, डिमाई, मूल्य ७.००
शिक्षा मनोविज्ञान : डा० एस० एस० माथुर, डिमाई, पृष्ठ ७४७, मूल्य १२.५०
स्वास्थ्य शिक्षा : डा० जी० पी० शैरी, डिमाई, पृष्ठ ३६८, मूल्य ७.५०
बाल व्यवहार विकास : डा० सरयूप्रसाद चौबे, डिमाई, पृष्ठ ३४७, मूल्य ७.००
नवीन शिक्षा मनोविज्ञान : (पुनः मुद्रित) दिनेशचन्द्र भारद्वाज, डिमाई, पृष्ठ १८३, मूल्य ३.००

विविध

हिन्दी विश्वकोश भाग ११ : सं० फूलदेव सहाय वर्मा, डबल डिमाई, पृष्ठ ५०६ मूल्य ३०.००
रसलीन ग्रन्थावली : सं० सुधाकर पाण्डे, डिमाई, पृष्ठ ४४१, मूल्य २५.००
संत रोहल की बानी : (शोध ग्रन्थ) लेखक डा० दशरथराज, डिमाई, पृष्ठ २६२, मूल्य १५.००
मोरारजी देसाई : (जीवन चरित्र) सं० तेजराज जैन, डिमाई, पृष्ठ २०६, मूल्य १०.००
हँसली बाँक की उपकथा : (उपन्यास) ताराशंकर वन्द्योपाध्याय, डिमाई, पृष्ठ ३४६, १०.००
नागिनी कन्या की कहानी : (उपन्यास) ताराशंकर वन्द्योपाध्याय, क्राउन, पृष्ठ २०८, मूल्य ६.००
अँधेरे की आँखें : (कहानी संग्रह) श्रवण कुमार, क्राउन, पृष्ठ १४०, मूल्य ४.००
अंधेरी कवितायें : (कवितायें) भवानीप्रसाद मिश्र, डिमाई, पृष्ठ १४३, मूल्य ५.००
इतिहास के स्वर : (नाटक) डा० रामकुमार वर्मा, डिमाई, पृष्ठ ४८६, मूल्य २०.००
आहें और मुस्कान : (नाटक) बिमला रैना, डिमाई, पृष्ठ ६३० मूल्य २५.००

प्राप्ति-स्थान

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

बिना टिकट प्रेषण करने का प्रमाण-पत्र संख्या—५७

साहित्य-परिचय सितम्बर १९६९ पंजीबद्ध संख्या एल–३८५

प्रकाशक एवं मुद्रक : विनोदकुमार अग्रवाल। हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस के हेतु कैलाश प्रिंटिंग प्रेस, आगरा–२ में मुद्रित।

साहित्य-परिचय

राष्ट्रभाषा और साहित्य की गतिविधियों का परिचायक पत्र

दिसम्बर १९६९

संस्कृत के निकट चलने वाली हिन्दी ही देश भर में मान्य होगी, ऐसा मेरा विश्वास है। क्योंकि अन्य प्रदेशों में जहाँ संस्कृत से उनका सम्पर्क छूटा नहीं है वहाँ वे हमारी संस्कृत-निष्ठ हिन्दी कहीं अधिक समझ जाते हैं बनिस्बत संस्कृत से दूर उर्दू के निकट चलने वाली हिन्दी को। यह मैं स्वयं अपने अनुभव से भी कह सकता हूँ। कलकत्ता में एक सभा में व्याख्यान देते हुए मैंने चेष्टा की। लोगों के कहने समझाने पर कि मैं अपनी भाषा को अधिकतम संस्कृत शब्दों से अलंकृत करूँ। परिणाम यह हुआ कि एक नहीं अनेक बंगला के लेखकों ने, जो वहाँ मौजूद थे, उन्होंने कहा कि मुशकिल से कोई शबद ऐसा था जो हम नहीं समझ पाए और यह बात इससे भी अधिक दक्षिण में सत्य होगी। अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी के विरुद्ध जो कुछ इधर हुआ था, संयोग से, और संयोग से ही नहीं, चेष्टा करके, उन दिनों मैं वहीं था—मद्रास में था जिस दिन वहाँ ढेले चले, लाठी चार्ज हुआ और कोयम्बतूर में सामान्य लोगों से मैंने हिन्दी में बात की। मुझे कहीं एक बार भी ऐसा नहीं लगा कि किसी भी व्यक्ति के मन में हिन्दी के विरुद्ध किसी प्रकार का दुर्भाव है। बहुत से लोग भ्रमवश, बहुत से लोग बिना सोचे समझे उपद्रवकारियों के साथ हो लेते हैं, हमें इसकी चिन्ता नहीं करनी है। हमें यही विश्वास रखना है और भाग्य से यह विश्वास सही भी है कि उनके मन में हिन्दी के प्रति आदर है। यदि कुछ नहीं है तो ज्ञान नहीं है। ज्ञान हिन्दी का ही नहीं, हिन्दी की स्थिति का, हिन्दी क्या कार्य करने जा रही है, इस बात का ज्ञान नहीं है। इन सभी बातों का प्रचार आवश्यक है और वे सब निश्चय पूर्वक करने में, अहिन्दी भाषीजन उनसे अधिक समर्थ हैं जिनकी मातृ-भाषा हिन्दी है।

—डॉ० बालकृष्ण राव

('राष्ट्रभाषा-सन्देश' से साभार)

साहित्य-परिचय

का

चतुर्थ सामयिक

"शिक्षा और राष्ट्रीय एकता" विशेषांक

प्रधान सम्पादक : डा० रामशकल पाण्डेय

सम्पादक : विनोदकुमार अग्रवाल

परामर्शदाता : डा० सीताराम जायसवाल; डा० सरयूप्रसाद चौबे

आज देश को जिन अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है उनमें 'राष्ट्रीय विघटन की समस्या' प्रमुख है। जिधर दृष्टि फेरिए उधर ही लोग विघटनकारी तत्वों के शिकार नजर आते हैं। इन तत्वों पर विजय पाने के लिए जनमानस में परिवर्तन आवश्यक है क्योंकि विघटनकारी तत्व वस्तुतः मनुष्य के मन की ही उपज है और इन पर विजय पाने का मार्ग भी लोगों के मन से इन तत्वों को निकालना है। इस दिशा में वर्तमान काल में प्रयत्न भी हो रहे हैं। शासन अपने सीमित क्षेत्र में इस दिशा में सोचता अवश्य है किन्तु उसकी अपनी सीमाएं हैं। अतः शासन का मुँह ताकने से राष्ट्रीय एकता की सम्भावना कम ही है। इस दिशा में शिक्षा विशेष कार्य कर सकती है—ऐसी हमारी मान्यता है।

इसी दृष्टिकोण से राष्ट्रीय एकता के सन्दर्भ में शिक्षा के विभिन्न पक्षों पर बुद्धिजीवियों के विचार एकत्र करने की योजना बनाई गई है।

जनवरी १९७० में प्रकाश्य आगामी विशेषांक 'शिक्षा और राष्ट्रीय एकता' की प्रस्तावित विषय-सूची निम्न प्रकार है।

प्रस्तावित विषय-सूची

१. भारत की भौगोलिक एकता
२. भारतीय इतिहास और एकता
३. भारत की सांस्कृतिक एकता
४. भारतीय राष्ट्रीयता और एकता
५. राष्ट्रीय एकता के आधार
६. राष्ट्रीय एकता के साधन
७. राष्ट्रीय एकता और साहित्य
८. राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता
९. राष्ट्रीय एकता और अर्थ-व्यवस्था
१०. राष्ट्रीय एकता और शिक्षा-व्यवस्था

(शेष आवरण के तृतीय पृष्ठ पर)
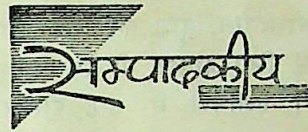
साहित्य-परिचय

[शिक्षा और साहित्य की प्रगति का परिचायक पत्र]

वर्ष ४ : अंक १२
दिसम्बर, १९६९

सम्पादक
विनोदकुमार अग्रवाल
एम. ए., साहित्यरत्न

प्रबन्ध सम्पादक
सतीशकुमार अग्रवाल

स्वामित्व
विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–२

मूल्य
एक प्रति ०.२५ : वार्षिक ५.००

साहित्य-परिचय
डॉ० रांगेय राघव मार्ग
आगरा–२
फोन : ७६४८६

छात्रों को जनसंख्या की शिक्षा

नई दिल्ली में छह दिन की एक गोष्ठी हुई है। इस गोष्ठी का विषय स्वास्थ्य और जनसंख्या से सम्बन्धित था। इसमें देश के अस्सी शिक्षाविदों और स्वास्थ्य विशेषज्ञों ने भाग लिया। इस गोष्ठी का समारम्भ १ दिसम्बर १९६९ को केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्रालय में राज्य-मंत्री डा० चन्द्रशेखर ने किया। डा० चन्द्रशेखर ने अपने भाषण में इस बात पर बल दिया है कि छात्रों को जनसंख्या की शिक्षा दी जानी चाहिए।

मन्त्री महोदय का सुझाव स्वागत करने योग्य है। पर प्रश्न उठता है कि यह शिक्षा किस स्तर पर दी जाए। डा० चन्द्रशेखर के अनुसार यह शिक्षा प्रत्येक स्तर पर दी जानी चाहिए। इस बात से सहमत होना बहुत-से शिक्षकों को कठिन लग सकता है। शिक्षकों की कठिनाई के पीछे कुछ कारण भी हैं। एक कारण है वर्तमान सामाजिक परिस्थितियाँ। समाज में इस प्रकार की शिक्षा को बहुत अच्छा नहीं समझा जाता। बहुत-से माता-पिता अपने बच्चों के सामने बच्चों के जन्म आदि की बातें करना अच्छा नहीं समझते।

दूसरा कारण धर्म से सम्बन्धित है। कुछ सम्प्रदायों में दुर्भाग्यवश जनसंख्या की वृद्धि करने को धर्म से जोड़ा जाता है। ऐसी परिस्थिति में एक सम्प्रदाय के लोग परिवार नियोजन में सहयोग नहीं देंगे तो दूसरे सम्प्रदाय के लोगों को शिकायत करने का अवसर मिलेगा कि परिवार नियोजन से जनसंख्या में किसी सम्प्रदाय के अनुपात को अस्तव्यस्त किया जा रहा है।

किन्तु इन सब कारणों की अपेक्षा मनोवैज्ञानिक कारण भी प्रत्येक स्तर पर जनसंख्या की शिक्षा के विरुद्ध हैं। प्रारम्भिक स्तर पर बालकों को सीमित परिवार के विषय में न तो कोई रुचि हो सकती है और न ही उन्हें इसका तात्पर्य समझने की उत्सुकता होगी। अतः प्रारम्भिक स्तर पर जनसंख्या की शिक्षा देना विशेष लाभकारी नहीं हो सकता। हाँ, माध्यमिक एवं उच्च स्तर पर सीमित परिवार के लाभ बताए जा सकते हैं।

माध्यमिक कक्षाओं में 'सामाजिक अध्यापन' विषय के अन्तर्गत जनसंख्या की शिक्षा देने का प्रयास किया जा सकता है। इसी प्रकार उच्च कक्षाओं में भी अर्थशास्त्र, राजनीति, भूगोल, इतिहास, विज्ञान आदि विषयों में तत्सम्बन्धी ज्ञान दिया जा सकता है। किन्तु पुनः यह

प्रश्न उठता है कि क्या इस प्रकार के ज्ञान मात्र से जनसंख्या में हो रही आशातीत वृद्धि को रोका जा सकता है। इस शंका के लिए आधार भी है। विगत कुछ वर्षों में सरकारी मशीनरी ने चार्ट, पोस्टर विज्ञापन आदि के माध्यम से साधारण जनता को परिवार-नियोजन के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी देने का प्रयास किया है। जहाँ तक जानकारी का प्रश्न है आज ५—६ वर्ष का बालक भी प्रायः बातचीत के दौरान यह कह बैठता है कि 'दो या तीन बच्चे बस' अथवा 'दो या तीन बच्चे, होते हैं घर में अच्छे'। प्रत्येक साक्षर व्यक्ति अब लाल त्रिभुज का संकेत समझने लगा है। क्योंकि वह बच के कहाँ जाएगा? बस, ट्रेन, पोस्टआफिस, अस्पताल, चौराहा—सभी जगहों पर तो उसे लाल तिकोन अथवा परिवार नियोजन सम्बन्धी सूक्तियों से पाला पड़ता है।

इतने प्रचार के बावजूद परिवार नियोजन के सम्बन्ध में हमारी उपलब्धियाँ गर्व करने योग्य नहीं हैं। शिक्षित एवं मेधावी व्यक्ति इस ओर झुके हैं और समाज के उच्चवर्ग में यह आन्दोलन कुछ सफल भी हुआ है किन्तु समाज के निम्न वर्ग पर और एक सम्प्रदाय विशेष पर इसका अधिक प्रभाव नहीं पड़ा है। इससे इस बात का खतरा भी सामने हो सकता है कि परिवार-नियोजन की धारा के आधार पर भावी समाज में योग्य एवं बुद्धिमान व्यक्तियों का अनुपात और कम हो जायेगा। वस्तुतः जनसंख्या की शिक्षा देते समय इस बात का विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है कि समाज योग्य सन्तानों से वंचित न हो और परिवार नियोजन के महत्व से सभी छात्र धीरे-धीरे परिचित हो जाएँ। किन्तु जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है केवल जानकारी प्रदान कर देने से ही इस दिशा में अधिक सफलता मिलना कठिन है। इसके लिए समाज के साधारण वर्ग के लोगों के निमित्त कुछ प्रलोभनों की योजना भी करनी होगी। वेतन भोगी लोगों के लिए अतिरिक्त वेतन-वृद्धि या वेतन-वृद्धि पर रोक अथवा आयकर में छूट आदि उपाय करने होंगे। ये उपाय शिक्षा की परिधि के बाहर हैं।

जनसंख्या की शिक्षा अथवा परिवार नियोजन की शिक्षा तभी सफल हो सकती है जब शिक्षा को विषाक्त राजनीति का शिकार न बनाया जाए और शिक्षा को प्रचार का साधन न माना जाए।

इस अंक में श्री गजानन वर्मा का एक लेख 'शिक्षा और राजनीति' के सम्बन्ध में प्रकाशित हो रहा है जिसमें शिक्षा और राजनीति के सम्बन्धों पर प्रकाश डाला गया है। श्री हरगोविन्द गुप्ता ने अपने लेख में शिक्षा में समान अवसर की समस्या एवं उसके समाधान पर विचार किया है।

साहित्य-परिचय के गतांक में "शिक्षा और राष्ट्रीय एकता" सम्बन्धी विशेषाङ्क की सूचना पाठकों तक पहुँच चुकी है। इस विशेषाङ्क के लिए हमें विद्वानों से सहयोग प्राप्त हो रहा है। आशा है हम यथा समय विशेषाङ्क को पाठकों तक पहुँचा सकेंगे।

⊙

सदस्यों से

मान्य सदस्यगण,

दिसम्बर ६९ के इस अंक के साथ ही 'साहित्य-परिचय' का आपका वार्षिक शुल्क समाप्त हो रहा है। आगामी वर्ष साहित्य-परिचय का **'शिक्षा और राष्ट्रीय एकता'** विशेषांक फरवरी ७० में (जनवरी-फरवरी का संयुक्तांक) प्रकाशित हो रहा है। इसकी सूचना आपको पिछले अंकों द्वारा प्राप्त हो चुकी है, एवं इस अंक में आवरण के द्वितीय-तृतीय पृष्ठ पर भी प्रकाशित की जा रही है। यह विशेषांक जैसा कि प्रस्तावित विषय-सूची से ही स्पष्ट है, शिक्षा के विद्यार्थियों एवं सामान्य पाठकों दोनों ही के लिए समान रूप से उपयोगी है।

अतः आपसे निवेदन है कि कृपया आगामी वर्ष का शुल्क ५.०० मनीआर्डर द्वारा भेजकर अपनी प्रति सुरक्षित करालें अथवा विशेषांक को वी० पी० द्वारा प्रेषित करने का आदेश तुरन्त ही देकर हमारे उद्देश्य को सफल बनाने में सहयोग दें।

—व्यवस्थापक

शिक्षा और राजनीति

गजानन वर्मा
उज्जैन (म० प्र०)

स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही हमारे मस्तिष्क में तथा नेताओं के मस्तिष्क में बड़े-बड़े सपने थे कि हम अब शीघ्र ही देश में बहुत से ऐसे काम करेंगे जिससे देश संसार में चमक उठेगा। अब तक हम गुलाम थे और अपना चाहा कुछ कर नहीं सकते थे। वास्तव में यह धारणा उत्तम थी और लोगों ने जो सोचा वह बड़ी निष्ठा और ईमानदारी से सोचा था अतः वे उत्साह-पूर्वक इस कार्य में जुट गये। प्रसन्नता के मूड में वे देश की समस्याओं को सुलझाने के लिये तो आगे बढ़े पर दूरदर्शिता से उसके हानि लाभ पर उन्होंने विचार नहीं किया और जिस काम में हाथ डाला—उसी का नतीजा इन २०-२२ वर्षों में उलटा ही सामने आया। इसका मुख्य कारण यह था कि लोगों में स्वार्थ और अपना हित साधन प्रधान हो गया। इन्हीं समस्याओं में एक महत्त्वपूर्ण समस्या शिक्षा की भी थी।

आज देश में शिक्षा की जो दुर्दशा है उसके अनेक कारण हैं जिनके विस्तार में उतरना मैं नहीं चाहता—केवल एक पक्ष पर ही विचार करूँगा और वह है राजनीति।

हमारे देश में प्रजातांत्रिक शासन है और इस शासन में हर किसी को कुछ भी कहने का या टाँग अड़ाने का अधिकार है। हमने देखा कि सस्ती राजनीति और नेतागिरी ने हर कहीं शिक्षण संस्थाओं में हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया और शिक्षा से सम्बन्धित जितने भी जिम्मेदार अधिकारी हैं—प्रधानाध्यापक से लेकर मंत्री तक—वे बुरी तरह से राजनैतिक प्रभावों से ग्रसित होकर जनता की हर बात चाहे वह शिक्षा-संस्था, छात्र, अध्यापक या शिक्षा नीति के हित में हो या अहित में हो—आँख मूँद कर मानने को तैयार होते चले गये। २० वर्षों में नतीजा यह हो गया कि पर-तंत्रता के जमाने में शिक्षा का ढाँचा (स्तर और व्यवस्था दोनों की दृष्टि से) जितना जमा हुआ था—सब अस्त-व्यस्त हो गया।

यह दुःख का विषय है कि हमारी शिक्षा की नीति को निर्धारित करने वाले लोग शिक्षाशास्त्री न होकर राजनैतिक नेता होते हैं और वे स्वयं शिक्षा के बारे में कुछ विशेष ज्ञान नहीं रखते। उनकी नीतियाँ सचिवों की सलाह पर निर्भर करती है तथा उनमें राजनैतिक स्वार्थ की प्रधानता रहती है।

राज्यों में जब-जब मंत्रिमंडल बदलता है हर नया मंत्री सारी शिक्षा व्यवस्था में आमूल परिवर्तन की घोषणा करता है—पिछले मंत्री की नीति को दोषपूर्ण और अपनी भावी नीति को लाभकारी बताकर उसे लागू कर देता है। सब के अपने-अपने स्वार्थ और दृष्टि-कोण होते हैं। इस प्रकार इन बीस वर्षों में बार-बार के परिवर्तनों, थोथे आदर्शों और कल्पित उत्तम सम्भा-वनाओं ने हमारी शिक्षण संस्थाओं को नष्ट कर दिया है। छात्रों में अनुशासनहीनता आ गई है, पाठ्यक्रम अव्यवहारिक हो गया है तथा सारी रचना प्रयोगात्मक ढंग से चलती रही है—पर कोई प्रयोग आज तक सफल नहीं हो सका और राष्ट्र का अरबों रुपया शिक्षा सुधार के नाम पर पानी की तरह बहाया जाता रहा है पर परिणाम शून्य ही रहा है।

हमारे सामने कई शिक्षा आयोगों का गठन किया गया। कई रिपोर्टें प्रकाशित की गईं—कई प्रणालियाँ लागू की गईं पर छात्र, शिक्षक, अभिभावक सभी भ्रमित से चौराहे पर खड़े हैं, उन्हें कोई राह नहीं सूझ रही है। शिक्षा का ढाँचा ऊपर से नीचे तक टूट गया है—पढ़ाई का स्तर गिर गया है, सस्ते नोट्स, नकल और अकर्मण्यता ने छात्र जीवन को ग्रस लिया है। शिक्षा के अंग-अंग में स्वार्थ, अनियमितता, भ्रष्टाचार, राजनीति तथा अन्य अनेकों बुराइयों ने अपने घोंसले बना लिए हैं। ऐसी हालत में भी जब-जब जो नेता शिक्षा संस्थाओं में आकर भाषण देता है तो उसका पहला वाक्य होता है—"ये छात्र हमारे राष्ट्र के कर्णधार हैं। ये भावी नेता हैं। इनमें से कोई राष्ट्रपति बनेगा, कोई प्रधान

मंत्री....!" और जब मौका आता है तो जिस छात्र को वास्तव में उच्चपद मिलना चाहिए—राजनैतिक दाव-पेंच के कारण उसका चुनाव नहीं हो पाता—रिश्वत और पक्षपात के अभाव में वह योग्यता का बोझा ढोता हुआ सड़कों पर घूमता नजर आता है। हमें इन वाक्यों पर तरस आता है—रोना आता है। आज जो हालत है और जैसी शिक्षा दी जा रही है उससे तो राष्ट्र उभरेगा नहीं। वास्तव में हमें कौन सी शिक्षा मिलनी चाहिए और किस जगह क्या खराबी है—उसकी पकड़ ही हाथ में नहीं आ रही है।

देहातों के विद्यालयों की हालत तो और भी शोचनीय हो रही है। वहाँ राजनीति नाई, धोबी, पान वाले, मोटर कण्डक्टर जैसे लोगों के हाथ में है—वे नेता बने हुए हैं—स्वयं अनपढ़ हैं फिर भी शिक्षा संस्थाओं में ज़रा-ज़रा सी बातों पर हस्तक्षेप कर देते हैं—यदि उनका विरोध किया गया या उनका मन-चाहा न हुआ जो वे एक तूफान खड़ा कर देते हैं। हुल्लड़ हड़ताल उनके शस्त्र हैं—किसी को भी बदनाम कर देना—आचार्य या शिक्षक को उखेड़ देना, उनका स्थानान्तर करा देना उनके बाँए हाथ का काम है। पढ़े लिखों की आबरू उनके हाथों में खेलती है। सरकार भी उनकी बात सुनती हैं—शिक्षकों का रक्षण नहीं करती। ये नेता इन कार्यों में अपने इलाके के विधायक का सहारा लेते हैं। शोक का विषय है कि विधायक जी स्वयं भी अनपढ़ है—कोई सूझ बूझ उनमें नहीं। समय की हवा का रुख रखना, अपने पद को सुरक्षित रखना-अपने वोट देने वालों को खुश करना उनका ध्येय होता है—शिक्षा, शिक्षक या छात्र की वास्तविक उन्नति से उनका कोई मतलब नहीं।

शिक्षा, समाज की रीढ़ है—जिस पर सारा राष्ट्र बनता है—शिक्षा से मनुष्य मनुष्य बनता है। एक स्वतन्त्र राष्ट्र में शिक्षा का विषय सब से महत्त्वपूर्ण और आवश्यक माना जाना चाहिए। उसी विभाग को सरकार ने एक लावारिस जैसा महत्त्वहीन विषय मान रखा है। क्योंकि इस विभाग से सरकार को आमदनी कुछ नहीं होती। यह विभाग तो केवल खर्च करने का विभाग है अतः सरकार की नज़र में यह विभाग कमाऊ पूत नहीं है इसीलिये इसके साथ सौतेला व्यवहार होता है।

पिछले वर्ष मध्यप्रदेश में—संविद शासन के अन्तर्गत शिक्षा की जो दुर्दशा और बदनामी हुई है वह किसी से छिपी नहीं है। शिक्षा जैसे पवित्र कर्म को निभाने वाले जिम्मेदार व्यक्तियों ने टाट पट्टी प्रकरण में लाखों का गोलमाल करके राज्य के पढ़े लिखें लोगों का मुँह नीचा कर दिया है। दूसरे हायर सेकण्डरी योजना को बदलकर जूनियर कॉलेजों को खोलने का जो कदम उठाया गया उसने सब चौपट कर दिया। यह कदम योजनाबद्ध नहीं था और अदूरदर्शिता के साथ अपरिपक्व दशा में इसको लागू कर दिया गया। नतीजा यह हुआ कि व्यवस्था और पढ़ाई दोनों दृष्टि से राज्य के लगभग ८०० विद्यालय आज ऐसी हालत में पहुँच गये हैं कि उनको देखने से तरस आता है। ये सारा परिवर्तन राजनैतिक कारणों से किया गया। ये पवित्र विद्यामन्दिर राजनीति के अखाड़े, स्टाफ की लड़ाइयों के केन्द्र, छात्रों की हुड़दंग के लीलाघर बने हुए हैं। राज्य के शिक्षा अधिकारी स्वयं इस स्थिति में नहीं हैं और न ही वे इतनी रुचि रखते हैं कि इनका निरीक्षण करें और कोई ठोस सुधार ला सकें। इस योजना को कागज पर लाकर, घोषित करके मंत्रिमण्डल बिखर गया—और सारी योजना अधर में लटक गई। छात्रों का क्या भविष्य होगा—इन संस्थाओं की क्या व्यवस्था होगी—इसकी किसी को चिन्ता नहीं है।

मंत्रीमण्डल पर राजनैतिक स्वार्थ का संकट सवार था और गत वर्ष शासन का सारा कारोबार शिथिल रहा। स्थान-स्थान से राजनैतिक दबाव आने के कारण हर कहीं जूनियर कॉलेज खोलकर जनता का मन रख दिया गया है पर वास्तविक जूनियर कॉलेज के लायक व्यवस्था अनेक जगह नहीं है। त्राहि-त्राहि मची हुई है—कोई किसी की सुन नहीं रहा है। इन विद्यालयों में न स्टाफ है, न पुस्तकें हैं, न पर्याप्त फरनीचर है, न किसी प्रकार की व्यवस्था है फिर भी कागज पर जूनियर कॉलेज चल रहे हैं। यदि वरिष्ठ अधिकारियों से कोई बात पूछी जाती है तो वे सही, स्पष्ट और सन्तोषजनक आदेश दे सकने की स्थिति में अपने को नहीं पाते। चारों ओर अराजकता है। सारे जूनियर कॉलेजों का हंगामा केवल राजनैतिक तमाशा बन गया है। वास्तविक शिक्षा से अथवा छात्रों या शिक्षकों की समस्या के निराकरण से किसी को कोई

मतलब नहीं। इस प्रकार राजनीति शिक्षा पर हावी है और शिक्षा चौपट हुई जा रही है। जिस दिन शिक्षा से राजनीति अलग हो जावेगी उसी दिन देश में योग्य लोग उत्पन्न होंगे और सही अर्थों में शिक्षा की उन्नति होगी।

राजनीति कहाँ नहीं हैं?—परीक्षा मण्डलों में, नियुक्तियों में, पदोन्नति में, स्थानांतरों में, पाठ्यक्रम में, फीस वृद्धि या फीस कम करने में, हुड़दंग, हड़तालों में, विद्यालयों की सामग्री की खरीदी में, पढ़ाई लिखाई में, छात्र-वृत्तियों में—सभी में राजनीति घुसी हुई है जिसने शिक्षा के वातावरण को जहरीला करा दिया है। जिसका जरा भी काम नहीं हुआ कि उसने बखेड़ा खड़ा कर दिया। इस बखेड़े के अनुसार झट से सुनवाई करने में शिक्षा जगत का हर जिम्मेदार व्यक्ति तैयार है। बखेड़े के औचित्य या अनुचितता को शिक्षा की सही दृष्टि या निष्पक्षता से उसे हल करने की वे जरूरत नहीं समझते-क्योंकि इस पचड़े में पड़ने से उनके हितों की हानि होती है। दो-चार दस की जिद और स्वार्थ पूर्ति के पीछे सारे शिक्षा जगत की शृंखला टूट गई है। छात्रों में नैराश्य की भावना व्याप्त है—शिक्षा नीति के कर्णधारों में मतैक्य नहीं रहा है। आज शिक्षा जैसी महत्त्वपूर्ण वस्तु जबरदस्त गम्भीर समस्या बन गई है जो राष्ट्र को उठाने के बजाय उसे दिन प्रतिदिन गिराती जा रही है। ऐसी दशा में हम कैसे यह आशा कर सकते हैं कि हमारे विद्यालय बड़े-बड़े नेताओं और विद्वानों का निर्माण करेंगे? और भविष्य की बागडोर उनके हाथों में जावेगी?

इस गम्भीर प्रश्न पर मनन पूर्वक विचार करने की नितांत आवश्यकता है और आवश्यकता है शीघ्र ही किसी लाभकारी हल पर पहुँचने की ताकि शिक्षा जगत में शान्ति उत्पन्न हो सके और छात्र अपने भविष्य की राह को स्पष्ट देखकर द्रुतगति से उस ओर कदम बढ़ा सकें।

शिक्षा में समान अवसर : समस्या एवं समाधान

हरगोविन्द गुप्ता
चारभुजा

स्वतन्त्रता, समानता एवं भ्रातृत्व जैसे आदर्शों की प्राप्ति सदैव से ही मानव का स्वप्न रहा है। इनमें भी 'समानता' के लिए उसके अपेक्षाकृत अधिक प्रयास रहे हैं। यहाँ 'समानता' एवं 'अवसरों की समानता' की संकल्पनाओं पर विचार कर लेना समीचीन होगा।

समानता के आदर्श से हमारा तात्पर्य है—मनुष्यों के साथ हमारा व्यवहार उनकी सुख-सुविधाओं पर आधारित न हो वरन् ऐसी क्षमता ही हमारे व्यवहार का मानदण्ड हो जिसका विकास समान अवसरों की स्थिति में हो सके। समानता के आदर्श का सार-तत्त्व है—प्रत्येक मनुष्य अपनी योग्यता, क्षमता एवं शक्ति के अनुरूप उद्देश्य प्राप्त करने का अधिकारी होगा और इस हेतु उसे समान अवसर प्रदान किए जाएँगे।

अवसर सम्बन्धी समानता के कुछ पहलू :

इससे पूर्व कि हम अवसर सम्बन्धी समानता की संकल्पना को कार्यरूप में परिणित करें, इससे सम्बन्धित कुछ पहलुओं पर विचार कर लेना उपयुक्त होगा। प्रथम, किनके मध्य अवसर सम्बन्धी समानता हो? निश्चय ही, उनके मध्य जो समान रूप से इसके योग्य हों अथवा वे जो किसी अवसर का उपयोग करने में समान रूप में सक्षम हों। अतः व्यक्तियों की क्षमताओं के अनुसार हमें उनका वर्गीकरण करना होगा। द्वितीय, हमें असमानता के मुख्य स्त्रोतों के विषय में भी विचार करना होगा। ऐसा करना इसलिए आवश्यक हो जाता है जिससे हम ऐसे व्यक्तियों की आपस में तुलना कर सकें जो समान रूप से सक्षम तो हैं किन्तु जिन्हें कुछ क्षेत्रों में समान अवसर प्राप्त नहीं हैं। यहाँ हम अपने को सौभाग्यपूर्ण स्थिति में पाते हैं क्योंकि इस क्षेत्र का पिछला अनुसन्धान यह बतलाता है कि असमानता के प्रमुख स्त्रोतों में से एक स्त्रोत सामाजिक वर्ग भी रहा है। अन्त में, हमें मानव-जीवन के लिये जो अवसर अत्यावश्यक हैं उनकी प्रकृति को भी समझ लेना चाहिए। समान रूप से सक्षम व्यक्तियों को क्या पुरस्कार प्रदान किये जाएँ? आधुनिक औद्योगिक प्रधान समाज के सदस्यों को प्राप्त व्यक्तिगत एवं सामाजिक पुरस्कारों का मुख्य प्रवेश-द्वार उच्च शिक्षा ही रहा है। प्राचीन काल में उच्च शिक्षा कई साधनों में से एक साधन ही था; किन्तु अब उत्तराधिकार से प्राप्त सम्पत्ति, व्यक्तिगत साहस एवं शक्ति, परम्परागत व्यवसाय जैसे साधनों का स्थान उच्च शिक्षा अधिक से अधिक लेती जा रही है।

समानता के आदर्श का ऐतिहासिक अध्ययन :

इस आदर्श का सबसे प्राचीन, सुन्दर एवं स्पष्ट वर्णन हमें प्लेटो द्वारा लिखित 'रिपब्लिक' में धातुओं की कथा (Parable of metals) में मिलता है। प्लेटो के अनुसार लोगों को एक असत्य—एक फीनिशियन कथा—से जानबूझकर अवगत कराया जाए जिसके अनुसार सारे मनुष्य उनके वयस्क होने तक पृथ्वी के गर्भ में पोषित किये गए हैं। इस आधार पर उनके देश की भूमि उनकी माता है एवं देश के सारे नागरिक उनके भाई।

मुझे यह स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं कि प्लेटो द्वारा सुझाया गया यह हल अवसरों की समानता में आने वाली सबसे बड़ी बाधा का सर्वोत्तम एवं सुन्दर हल प्रतीत होता है। साथ ही राज्य के सारे नागरिकों में इस बात का विश्वास जमाना कि उनका पोषण पृथ्वी के गर्भ में हुआ है बेहूदा सा लगता है क्योंकि इससे धर्म, जाति, वंश एवं पारिवारिक सम्बन्धों की सारी सम्भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं। अलगाव के ये सारे साधन किसी भी समाज को अच्छा अथवा बुरा बनाने की क्षमता अवश्य रखते हैं, किन्तु इनमें से प्रत्येक अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने का भरसक प्रयत्न करता है। इसीलिए प्लेटो ने इसे ही सच्ची समानता के लिए सबसे बड़ा खतरा माना था।

अवसरों की समानता के सम्बन्ध में हमारी संवैधानिक स्थिति :

सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं शैक्षिक अवसरों की समानता के हमारे अधिकार को सुरक्षित करने हेतु संविधान में कुछ सारगर्भित अनुच्छेद दिये हुए हैं। इस प्रसंग में कुछ अनुच्छेद उद्धरणीय हैं।

अनु० १५–(१) धर्म, वंश, जाति, लिङ्ग, जन्म-स्थान अथवा इनमें से किन्हीं एक के भी आधार पर राज्य किसी नागरिक के प्रति भेदभाव नहीं बरतेगा।

अनु० १६–(१) राज्य के किसी भी कार्यालय में नियुक्ति अथवा नियोजन सम्बन्धी मामलों में सभी नागरिकों को समान रूप से अवसर प्रदान किये जायेंगे।

(२) धर्म, वंश, जाति, लिङ्ग, जन्मस्थान, निवास-स्थान अथवा इनमें से किसी एक के आधार पर भी राजकीय कार्यालय में सेवा सम्बन्धी मामलों में किसी भी नागरिक के प्रति पक्षपात अथवा भेदभावपूर्ण व्यवहार नहीं किया जाएगा।

अनु० २९–(२) राज्य द्वारा सहायता प्राप्त सभी प्रकार की शैक्षिक संस्थाओं में किसी भी नागरिक को धर्म, वंश, जाति, भाषा, अथवा इनमें से किसी एक के आधार पर भी प्रवेश लेने से नहीं रोका जा सकेगा।

अनु० ३०–(१) धर्म अथवा भाषा पर आधारित किसी भी अल्प संख्यक वर्ग को अपनी पसन्द के अनुसार शैक्षिक संस्थायें स्थापित करने का अधिकार होगा।

(२) शैक्षिक संस्थाओं को अनुदान देते समय राज्य किसी भी शैक्षिक संस्था के प्रति इस आधार पर भेद-भाव नहीं बरतेगा कि उसका संचालन अल्पसंख्यक वर्ग द्वारा होता है।

अनु० ४६–राज्य समाज के कमजोर वर्गों विशेष कर अनुसूचित जातियों एवं वर्गों, के शैक्षिक एवं आर्थिक हितों को विशेष रूप से प्रोत्साहित करेगा तथा सामाजिक अन्याय एवं सभी प्रकार के शोषण से उनके हितों की रक्षा करेगा।

राष्ट्रीय शिक्षा कमीशन : अवसरों की समानता पर इसके विचार :

वास्तव में यह देखना अत्यन्त रुचिपूर्ण होगा कि कमीशन आँकड़े इकट्ठे करने में कहाँ तक वस्तुनिष्ठता दिखा पाया है। प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करने वाले बालकों के माता-पिता द्वारा शिक्षा पर किये गए व्यय के बारे में इस कमीशन ने निस्सन्देह ही गहन एवं व्यापक अध्ययन किया है। पाठ्य पुस्तकों एवं निःशुल्क शिक्षा से सम्बन्धित कमीशन की सिफ़ारिशें वस्तुनिष्ठ आँकड़ों पर आधारित हैं। कमीशन का ऐसा अभिमत है कि शिक्षा में अवसरों की समानता का ध्येय उस समय तक पूरा नहीं होता जब तक कि सभी बच्चों के लिये सभी स्तरों पर निःशुल्क शिक्षा का समुचित प्रबन्ध न हो और जब तक कि पाठ्य पुस्तकों एवं स्टेशनरी की कीमतें कम नहीं की जाती। कमीशन ने आगामी १० वर्षों में ७ वीं कक्षा तक निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की सिफ़ारिश की हैं। इससे आगे के दस वर्षों में दसवीं कक्षा तक निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की जा सके—ऐसी कोठारी कमीशन की आशा एवं सिफ़ारिश है। उच्च स्तर पर गरीब एवं मेधावी छात्रों को छात्र-वृत्तियों एवं ऋणों द्वारा पर्याप्त सुविधायें प्रदान की जानी चाहिए।

समान अवसर के आधार :

यह बात विचारणीय है कि समान अवसर जैसे आदर्श के क्या आधार हों। इस संदर्भ में यहाँ कुछ महत्त्वपूर्ण आधारों पर विचार किया जाता है।

नैतिक— शिक्षा में अवसरों की समानता नैतिक दृष्टि से न्यायोचित है। नैतिकता का सम्भवतः इससे अधिक सुपरिभाषित तत्त्व और कोई दूसरा नहीं हो सकता कि किसी भी मनुष्य को दूसरों को चोट पहुँचाने, परेशान करने अथवा उन पर जबरदस्ती दबाव डालने का अधिकार नहीं है। विश्व के सभी महान् धर्म इस बात पर जोर देते हैं कि दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करिए जैसा उनसे आप अपने लिए अपेक्षा करते हैं। सभी मनुष्यों के प्रति ठीक एवं समान न्याय एक जटिल आदर्श है और इस आदर्श का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं समान शैक्षिक अवसर—प्रशिक्षण हेतु समान शैक्षिक अवसर जिससे वृद्धि एवं विकास का पथ सुगम हो सके।

पेलोपोनीशियन युद्ध में वीरगति प्राप्त सैनिकों के सम्मान में बोलते हुए सुप्रसिद्ध सम्राट पेरीक्लीज कहता है :—

हमारी सरकार प्रजातन्त्र के नाम से जानी जाती

है जिसमें सभी मनुष्यों को केवल निजी वाद-विवाद के लिये ही कानूनी समानता प्राप्त नहीं है वरन् सार्वजनिक पदों के चुनाव में भी हमारे यहाँ वर्ग अथवा श्रेणी की दृष्टि से विचार नहीं किया जाता है। प्रत्येक मनुष्य का चुनाव उसके गुणों के आधार पर ही होता है। साथ ही गरीबी के कारण ही किसी भी मनुष्य की उपेक्षा नहीं की जाती।

संविधानों एवं शताब्दियों से सुरक्षित ऐतिहासिक अभिलेखों तथा विश्व के सभी भागों में समान रूप से महत्त्व रखने वाला यह आदर्श तभी साकार हो सकता है जब समाज के सभी वर्गों के लोगों की शिक्षा तक पहुँच हो।

आर्थिक—प्राचीन इतिहास का अध्ययन बतलाता है कि प्राचीन आर्थिक ढाँचों में जन्म एवं आर्थिक स्थिति पर आधारित होने के कारण शिक्षा केवल उच्च वर्ग तक ही सीमित थी। आज के संसार में कुशल, बुद्धिमान एवं सुप्रशिक्षित माँगों के प्रकाश में शिक्षा पर इस प्रकार का बन्धन न केवल नैतिक दृष्टि से ही त्रुटिपूर्ण है वरन् आर्थिक दृष्टि से पूर्णतः अव्यवहारिक भी है। सक्षम आर्थिक उत्पादन के लिये समान शैक्षिक अवसर सबसे बड़े प्रेरक हैं क्योंकि इससे पारिवारिक स्थिति एवं उच्च वर्ग में जन्म जैसी बातों का उतना महत्त्व नहीं रह जाता जितना प्रशिक्षित बुद्धि एवं परिश्रम का।

राजनैतिक—फ्रान्सीसी क्रान्ति होने का एक प्रमुख कारण एक गुप्त शाही आदेश भी था जिसके अनुसार बिना किसी अपराध एवं मुकदमें के निर्दोष व्यक्तियों को उनके घर से पकड़वा कर उन्हें जेल में ठूंस दिया जाता था और उनकी सम्पत्ति पर जबरन कब्जा कर लिया जाता था। इसी प्रकार प्रजातन्त्र के आज के युग में अज्ञान अथवा ईर्ष्या वश दिया मत-पत्र भी एक प्रकार से गुप्त शाही आदेश के समान ही है क्योंकि प्रत्येक मत-पत्र में निर्णायक शक्ति होती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि शैक्षिक अवसर की अनुपस्थिति में मत-पत्र अज्ञानी व्यक्ति को हानि ही पहुँचायेगा। दूसरी ओर, बुद्धिमत्तापूर्ण सम्मति एवं परिपक्व देश भक्ति के आधार पर दिये हुए मत-पत्र देश एवं इसके आदर्शों को दृढ़ करने में निश्चित रूप से सहायक सिद्ध होंगे।

अवसर की समानता के कुछ नमूने :

शैक्षिक अनुसन्धान पर आधारित निष्कर्ष योग्यता, सामाजिक वर्ग एवं उच्च शिक्षा तक पहुँच के पारस्परिक सम्बन्धों एवं इनमें अन्तर्निहित प्रक्रिया को स्पष्ट रूप से बतलाते हैं; किन्तु अवसर की समानता सम्बन्धी विभिन्न सम्भावनाओं एवं नमूनों के बारे में यथेष्ट अनुसन्धान सामग्री उपलब्ध नहीं है। आइए, हम इस विषय में कुछ 'नमूनों' पर विचार करें।

(अ) **नमूना**—कई शताब्दियों से मनुष्य ऐसे समाज का स्वप्न देखता आ रहा है जिसमें समान रूप से सक्षम लोगों के साथ (उनकी सामाजिक पैदाइश की उपेक्षा करते हुए) समान रूप से व्यवहार किया जा सके। अनुसन्धान की भाषा में मोटे तौर पर इसका यों अनुवाद किया जा सकता है :

विद्यालय (अथवा कॉलेज) जाने वाले बालकों की संख्या को हम सं य सा मान लेते हैं जिसमें 'य' बालकों के योग्यता-स्तर और 'सा' उनकी सामाजिक स्थिति को बतलाएगा। ऐसी स्थिति में—

सं क क = सं क ख = सं क ग = ... सं क ह; तथा

सं क क > सं ख क > सं ग क > .... सं ह क

इस नमूने के अनुसार योग्यता वृद्धि के साथ ही विद्यालय जाने वाले विद्यार्थियों की संख्या में वृद्धि होगी। दूसरी ओर योग्यता-वृद्धि पर सामाजिक स्थिति का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

(ब) **'मध्यम' नमूना**—ऐसी चयन पद्धतियों पर बल देना जिनसे प्रत्येक मनुष्य को उसकी योग्यता एवं क्षमता के अनुसार समाज में प्रतिष्ठित किया जा सके, असम्भव ही नहीं अवांछनीय भी लगता है। समाज की अनेक परिस्थितियों एवं प्रक्रियाओं के कारण मानव की नैसर्गिक योग्यता में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। इन प्रक्रियाओं पर नियन्त्रण का अर्थ है सामाजिक ढाँचे का अस्त-व्यस्त होना। अतः उचित यही है कि योग्यता के अनुरूप स्थिति-निर्धारण के लिये इतना ऊँचा मूल्य नहीं चुकाया जाए। अतः यहाँ हम ऐसे 'नमूने' पर विचार कर सकते हैं जिसमें केवल योग्यता ही नहीं वरन् योग्यता एवं सामाजिक स्थिति दोनों का योग हो। (विद्यालय अथवा कॉलेज जाने वाले विद्यार्थियों की संख्या ही हमारे उदाहरण का आधार होगा) :

(१) संकक > संखक > संगक .... संहक,

(२) संकख > संखक; (संयसा > संसाय)

(३) संकक > संकख > संकग > ····संकह

प्रथम स्थिति निश्चित रूप से सरलतम एवं सुस्पष्ट है । इसके अनुसार, किसी विद्यालय (अथवा कॉलेज) जाने वाले विद्यार्थियों की संख्या उनकी योग्यता-वृद्धि के साथ-साथ बढ़ती जाती है । इसके विपरीत, उच्च सामाजिक वर्गों में उनकी संख्या बढ़ती जाती है, चाहे वे किसी भी (निम्न) योग्यता स्तर के हों । दूसरे शब्दों में विद्यालय जाने वाले विद्यार्थियों की संख्या-वृद्धि में उनकी उच्च सामाजिक स्थिति सहायक होती है, चाहे वे किसी भी (निम्न) योग्यता-स्तर के ही क्यों न हों । हाँ, दूसरी स्थिति से, योग्यता-स्तर एवं सामाजिक-स्थिति का सापेक्षिक प्रभाव स्पष्ट है । इससे हमें यह पता चलता है कि योग्यता-स्तर का या तो सामाजिक स्थिति के बराबर प्रभाव होगा या उससे अधिक ।

(स) **'रूढ़िवादी' नमूना**—उपरोक्त वर्णन से रूढ़िवादी विचारधारा का रूपक स्पष्ट हो जाता है । इस विचारधारा के अनुसार किसी भी व्यक्ति की सामाजिक स्थिति ही सबसे अधिक महत्व रखती है और यदि हम इस बात में विश्वास रखते हैं कि निम्न सामाजिक वर्गों में पायी जाने वाली प्रतिभा एवं योग्यता को यथासम्भव प्रोत्साहित किया जाए और उसे पल्लवित करने के लिए हर सम्भव उपाय किये जाएँ तो यह हमारा आत्म-छलावा ही होगा । रूढ़िवादी विचारधारा के मतानुसार, कोई भी समाज तभी प्रगति कर सकेगा जब वह सामाजिक स्थिति के अनुरूप अवसरों का निर्धारण करता है तथा सदियों से चली आ रही सामाजिक प्रक्रियाओं में हस्तक्षेप नहीं करता है ।

मोटे तौर पर रूढ़िवादी नमूना निम्न प्रकार का होगा :

संकक = संखक = संगक = ····संहक; तथा

संकक > संकख > संकग > ····संकह

उक्त नमूने के अन्तर्गत, योग्यता-स्तर के प्रति उदासीनता दिखाई गयी है । इसके विपरीत, सामाजिक स्थिति की उच्चता में वृद्धि के साथ-साथ बालकों की संख्या में भी वृद्धि हो जाती है ।

निश्चय ही रूढ़िवादी नमूना हमारे लिये आदर्श नमूना नहीं हो सकता । मध्यम नमूना सामाजिक स्थिति अथवा सामाजिक मापदण्डों को कुछ राहत प्रदान करता है; किन्तु यदि हम शिक्षा में सभी के लिये समान अवसर प्रदान प्रदान करना चाहते हैं तो हमें नमूना ही अपनाना होगा ।

हमारी नीति : कुछ सुझाव :

(१) **विकास के पथ**—इस समस्या को हल करने के लिए कई पथ हैं । इन सब रास्तों के अन्तर्गत उच्च शिक्षा के लिए कई प्रकार की परिस्थितियाँ उत्पन्न करने की आवश्यकता होती है । साथ ही इनमें विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण की भी आवश्यकता होती है ।

(अ) माध्यमिक शिक्षा का द्वि-स्तरीय संगठन—इस प्रकार के संगठन के अन्तर्गत एक ऐसी योजना सम्भव है जिसके अनुसार सामान्य स्कूली शिक्षा को १५-१६ वर्ष की आयु तक बढ़ाया जा सकता है, तत्पश्चात उच्चतर विषयों का शिक्षण देने वाली तकनीकी एवं विशेष प्रकार की संस्थाओं की व्यवस्था की जा सकती है । दूसरे स्तर पर बालकों को विशेष प्रकार की शिक्षा दिलवाने का दायित्व उनके माता-पिता पर छोड़ा जा सकता है ।

(ब) 'व्यावहारिक पाठ्यक्रमों' एवं नियोजन का योग—इस प्रकार की पद्धति में हमारा जोर न तो पूर्णतया शैक्षिक पक्ष पर ही होगा और न ही पूर्णतः शारीरिक पक्ष पर । इस पद्धति में रचनात्मक व्यावहारिक शिक्षा की आवश्यकता होगी । 'व्यावहारिक' शब्द का प्रयोग शिक्षा के इसी रचनात्मक पहलू के अर्थ में किया जा रहा है । इस प्रकार का प्रशिक्षण किसी विशेष व्यवसाय से सम्बन्धित न होकर व्यापक वैज्ञानिक रुचियों के जागृत करने का एक सुव्यवस्थित प्रयास होगा । इस पद्धति में नवीन शिक्षण-पद्धतियों की आवश्यकता होगी जो ठोस उदाहरणों से सामान्य नियमों की ओर प्रवृत्त हो सकें तथा जो मौखिक संकल्पनाओं के स्थान पर किसी भी वस्तु के कार्य करने की विभिन्न प्रक्रियाओं पर अपेक्षाकृत अधिक बल दे सकें । ऐसे योग्य नवयुवक जिनके मस्तिष्क इस प्रकार की शिक्षा के लिए अधिक उपयुक्त हों तथा जिनके लिए शुद्ध शैक्षिक पथ प्रभावहीन हो, उनके लिए अठारह

अथवा इससे अधिक की आयु तक विशेष विद्यालयों एवं तकनीकी संस्थाओं में ऐसी शिक्षा प्राप्त करने के अपेक्षाकृत अधिक अवसर उपलब्ध होंगे। पूरे समय वाले पाठ्यक्रम निस्सन्देह सर्वोत्तम रहते हैं; किन्तु कुछ एक के लिए उनकी वय (अधिकांश, अठारह से कम) को दृष्टिगत रखते हुए नियोजन एवं 'सेण्डविच' पाठ्यक्रमों का योग ही उनकी प्रतिभा का उचित उपयोग है।

(स) प्रत्यक्ष रूप से जनता की राय को प्रभावित करने वाले अध्यापकों को नयी नीतियों का समर्थन करना चाहिए। माता-पिता एवं बड़े (किशोर) विद्यार्थियों को अच्छे पारिवारिक वातावरण के महत्व से परिचित किया जाना चाहिए। विद्यालय न जाने वाले किशोरों के लिए हमें विद्यालयों को आकर्षक स्थान बनाने का प्रयास करना चाहिए जिससे उनमें यह भावना अपनी जड़ें जमा सके कि विद्यालय एक अरुचिकर एवं उबा देने वाला स्थान नहीं है। इसका लाभ यह होगा कि आगे चलकर वे विद्यालय के सुखद दिनों की इस भावना से नयी पीढ़ी को प्रेरित कर सकेंगे। अत में, हमें ऐसी समाज-सेवी संस्थाओं से सहयोग करना चाहिए जो शिक्षा की प्रगति के लिए साधन जुटाती हों तथा जो अपने सामाजिक सुधार के कार्यक्रम में ऐसे उपायों पर बल देती हों जिनसे प्रतिकूल पारिवारिक परिस्थितियों में सुधार लाया जा सके।

(२) **भारतीय 'पब्लिक स्कूल'**—हमारी पूरी की पूरी सामाजिक व्यवस्था में भारतीय पब्लिक स्कूल अवसरों की असमानता का स्पष्ट उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। भारतीय पब्लिक स्कूल स्वतन्त्र तो होते ही हैं, साथ ही भारी शुल्कों के कारण समाज के केवल उच्च वर्ग के बालक ही इनमें शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। इनमें शिक्षा-प्राप्त विद्यार्थी अपने ही समाज में अपने आपको विशेष ऊँचा समझने लगते हैं। और इस प्रकार उच्च एवं मध्यम वर्ग के बीच एक नयी उप-संस्कृति (नये वर्ग) का निर्माण करते हैं।

हमारी राय में निम्न तथ्यों के प्रकाश में भारतीय पब्लिक स्कूलों से सम्बन्धित नयी नीति का निर्माण किया जा सकता है।

(अ) हमारे प्रजातन्त्र में प्रत्येक बालक को उसकी योग्यता के अनुरूप श्रेष्ठतम शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त है। यह मानते हुए कि पब्लिक स्कूल जो शैक्षिक दृष्टि से उत्तम स्कूल हैं (यदि नहीं तो उनमें सुधार किया जाए अथवा उन्हें पूर्णत बन्द कर दिया जाए) सभी योग्य बालकों के लिये समान रूप खुले रहें जिससे वे उनका लाभ उठा सकें। कोई भी स्कूल (कम से कम प्रजातन्त्र में) सामाजिक दृष्टि से किसी वर्ग विशेष के लिए न हो—नयी नीति निर्मित करते समय यह बात विशेष रूप से हमारे ध्यान में रहे।

(ब) इन पब्लिक स्कूलों में प्रवेश पाने की योग्यता ऊँची फीसें देने की क्षमता न हो जिससे शिक्षा के 'क्रय-विक्रय' पर नियन्त्रण रखा जा सके। यहाँ एक ठोस तर्क यह दिया जाता है कि ऐसे माता-पिता, जो अपने बालकों को इन स्कूलों में शिक्षा दिलवाना चाहते हों, अपनी इच्छा-पूर्ति के लिये स्वतन्त्र रहें; किन्तु सार्वजनिक हित की दृष्टि से कुछ बन्धन इसलिये आवश्यक हो जाते हैं कि मनुष्य अपने धन का किस प्रकार उपयोग करता है। इस विषय में राज्य को उन परिस्थितियों को निर्धारित करने का अधिकार है जिनमें कोई भी अपने धन का उपयोग करने में स्वतन्त्र हो। इसी सिद्धान्त को शिक्षा के क्षेत्र में भी लागू किया जा सकता है जिसके अनुसार पब्लिक स्कूलों को धनिक एवं उच्च वर्ग के बालकों को प्रवेश देने का अधिकार प्राप्त हो बशर्ते छात्रवृत्ति प्राप्त योग्य बालकों की एक निश्चित संख्या (जो समाज के सभी वर्गों का सही प्रतिनिधित्व कर सके) के लिये सुरक्षित स्थान रहें।

(स) यहाँ हमें इस बात का भी निर्णय कर लेना होगा कि एक सीमित वर्ग के लिए इस प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था क्या प्रजातन्त्र के मूलभूत उद्देश्य से मेल खाती है? यदि नहीं, तो हमारा यह कर्त्तव्य हो जाता है कि पब्लिक स्कूल की इस पद्धति को पूर्णतया समाप्त कर दिया जाए क्योंकि यह हमारे ही समाज में एक विशेष वर्ग (Elite) का निर्माण करती है। यदि पब्लिक स्कूल के दरवाजे सभी के लिये खुले भी रहें तब भी इसमें प्रवेश की सफलता को एक पुरस्कार—एक विशेष योग्यता—ही माना जायेगा। तो फिर ऐसी शिक्षा-पद्धति को अधिक अनावश्यक प्रोत्साहन क्यों?

(३) **सामाजिक तथ्य एवं मूल्य दण्ड**—अन्त में किसी भी शिक्षा नीति पर विचार एवं निर्णय लेते समय हमें उन मूल्य-दण्डों पर भी विस्तार से विचार करना होगा जिन पर हमारे सारे कार्य एवं अभिप्राय

आधारित होते हैं। सामाजिक तथ्यों का विश्लेषण हमें यह बतलाता है कि हमारे समाज में अभी क्या हो रहा है और इस प्रकार यह विश्लेषण हमारे समाज के व्यावहारिक परिणामों के लिये मूल्याङ्कन का कार्य भी करता है। हमें यहाँ इस बात पर भी विचार कर लेना होगा कि हमारे व्यापक सामाजिक उद्देश्यों एवं भावी समाज (जिसमें हम रहना चाहेंगे) के आदर्श के प्रकाश में हमें क्या करना है। हमारे जैसे विकासशील समाज में हमें शिक्षा के कार्य की संकलपना पर पुनः विचार करने के लिये तैयार रहना चाहिए।

वर्तमान में हमारे विद्यालयों में प्रतिभा का अत्यधिक अपव्यय हो रहा है। हम यह जानते है कि इन विद्यालयों में भावी वैज्ञानिकों एवं तकनीक विशेषज्ञों का भारी अपव्यय गम्भीर चिन्ता का विषय है; किन्तु भावी कलाकारों एवं लेखकों (जो हमारी ऐतिहासिक परम्पराओं एवं सांस्कृतिक धरोहर के प्रति जागरुक रह सकेंगे) का भारी अपव्यय क्या कम चिन्ता का विषय है ? यदि नहीं, तो शिक्षा में समान अवसर के सम्बन्ध में नयी नीति का निर्माण किया जाए—यही आज की प्राथमिक आवश्यकता है।

उपसंहार—आज के प्रजातन्त्र की सफलता के लिए अवसरों की समानता एक मूलभूत आवश्यकता है। शिक्षा (सभी स्तरों पर) इस उद्देश्य को प्राप्त करने का सर्वोत्तम साधन है। इस विषय में नीति-निर्धारित करते समय इस समस्या के सभी पहलुओं पर विस्तार से विचार किया जाना अत्यावश्यक है। समाज के कुछ वर्गों से विरोध में आवाज उठेगी—इसके लिए तैयार रहना चाहिए। किसी भी कार्य के समारम्भ में व्यवधान तो आएँगे ही। अच्छा होगा कि सरकार एवं समाज दोनों ही इस दिशा में प्रभावी कदम उठाकर अवसर-सम्बन्धी समानता की वर्तमान समस्या का निर्णय करें।

●

जिन्होंने मानव पर शासन करने की कला का अध्ययन किया है उन्हें यह विश्वास हो गया है कि युवकों की शिक्षा पर ही राज्यों का भाग्य आधारित है।

—अरस्तू

साहित्य, समालोचना

आधुनिक युग की हिन्दी लेखिकाएँ : (शोध-प्रबन्ध), डा० (श्रीमती) उमेश माथुर, डिमाई, पृष्ठ ४१६, मूल्य २५.००

पन्त का काव्य : (शोध-प्रबन्ध), डा० प्रेमलता बाफना, डिमाई, पृष्ठ ५५६, मूल्य ३०.००

कवि स्वयंभू : (शोध-प्रबन्ध), डा० संकटाप्रसाद उपाध्याय, रायल अठपेजी, पृष्ठ २२४, मूल्य १२.५०

नयी कहानी की भूमिका : कमलेश्वर, डिमाई, पृष्ठ २११, मूल्य १०.००

आधुनिकता-बोध और आधुनिकीकरण : रमेश कुन्तल मेघ, डिमाई, पृष्ठ ४४८, मूल्य ३०.००

हिन्दी रेखाचित्र : सिद्धान्त और विकास : डा० मक्खनलाल शर्मा, डिमाई, पृष्ठ ३११. मूल्य २५.००

साहित्य-विमर्श : श्रुतिकान्त, डिमाई, पृष्ठ २६०, मूल्य १२.५०

प्रेमनामा : डा० दशरथ राज, डिमाई, पृष्ठ २४४, मूल्य १५.००

शिक्षा

शिक्षा के सिद्धान्त : (मेरठ विश्वविद्यालय संस्करण), पाठक एवं त्यागी, डिमाई, पृष्ठ ४३५, मूल्य ६.००

विज्ञान शिक्षण : (चतुर्थ संस्करण) डी० एस० रावत, डिमाई, पृष्ठ २०१, मूल्य ४.००

कथा साहित्य

सुबह से पहिले : मोहन राकेश, क्राउन, पृष्ठ १२६, मूल्य ४.००

हम राही : वनफूल, क्राउन, पृष्ठ ६६, मूल्य ३.००

स्वप्नमयी : विष्णु प्रभाकर, क्राउन, पृष्ठ १२४, मूल्य ४.००

कँचुकी बँध : शिवकुमार जोशी, क्राउन, पृष्ठ ३२२, मूल्य १०.००

धुल हुई शाम : (कहानी संग्रह), डा० शशिप्रभा शास्त्री, डिमाई, पृष्ठ १३७, मूल्य ६.००

जमी हुई झील : (कहानी संग्रह), रमेश उपाध्याय, क्राउन, पृष्ठ १६२, मूल्य ५.००

विविध

कश्मीर : समस्या और पृष्ठभूमि : गोपीनाथ श्रीवास्तव, डिमाई, पृष्ठ २३८, मूल्य १२.००

उभरते प्रतिमानों के रूप : (कविता-संग्रह) बच्चन, डिमाई, पृष्ठ २३८, मूल्य १२.००

खड़िया का घेरा : (नाटक), बार्टोल्ट ब्रेख्ट, डिमाई, पृष्ठ १४०, मूल्य ८.००

लघु सिद्धान्त कौमुदी : (सन्धि-प्रकरण), डा० रामकृष्ण आचार्य, क्राउन, पृष्ठ ६६, मूल्य १.५०

काव्य-दीपिका (अष्टम शिखा), डा० रामकृष्ण आचार्य, क्राउन, पृष्ठ ७२, मूल्य १.००

प्राप्ति-स्थान

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

लोकभारती द्वारा प्रकाशित

ग्यारह महत्त्वपूर्ण नवीन पुस्तकें

क्रम	लेखक	पुस्तक		मूल्य
१.	श्री सुमित्रानन्दन पंत	गीत हंस (पंतजी की सद्यःरचित ६५ नवीनतम कविताएँ)	:	१४.००
२.	आचार्य काका कालेलकर / डा० नगेन्द्र	भारतीय काव्य-सिद्धान्त	:	१२.५०
३.	डा० सुकुमार सेन	पालि-प्राकृत-अपभ्रंश व्याकरण	:	१०.००
४.	डा० एहेतेशाम हुसैन	उर्दू साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	:	१५.००
		(विद्यार्थी संस्करण)	:	१०.००
५.	डा० माताप्रसाद गुप्त	कबीर ग्रन्थावली (सटीक)	:	१२.००
६.	डा० शिवप्रसाद सिंह	विद्यापति (विवेचन तथा संकलन)	:	८.००
७.	डा० रामकुमारी मिश्र	बिहारी विभूति (विद्यार्थी संस्करण)	:	१२.५०
		(बिहारी सतसई का प्रामाणिक पाठ, व्याख्या एवं भावार्थ)	:	१८.००
८.	श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय	महीयसी महादेवी	:	१५.००
९.	डा० प्रतापनारायण टंडन	साहित्यिक निबन्ध	:	१६.००
		(विद्यार्थी संस्करण)	:	१०.००
१०.	डा० प्रेमनारायण शुक्ल	हिन्दी साहित्य में विविधवाद	:	१५.००
११.	डा० सर्वजीत राय	हिन्दी उपन्यास साहित्य में यथार्थवाद	:	१०.००

पाँच श्रेष्ठ नये उपन्यास

उपन्यास		लेखक	मूल्य
◉ चलो कलकत्ता	:	विमल मित्र	७.५०
◉ उलटा दाँव	:	प्रबोधकुमार सान्याल	७.५०
◉ निवेदिता रिसर्च लेबोरेटरी (आदमी और कीड़े)	:	शंकर	७.५०
◉ आँगन	:	खदीजा मस्तूर	१०.००
◉ दो अकालगढ़	:	बलवन्त सिंह	१५.००

लोकभारती प्रकाशन

१५–ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद–१

११. राष्ट्रीय एकता के लिए शिक्षा
१२. राष्ट्रीय एकता और गाँधीजी
१३. राष्ट्रीय एकता और जवाहरलाल नेहरू
१४. राष्ट्रीय एकता और अल्पसंख्यक
१५. राष्ट्रीय एकता में बाधक तत्त्व
१६. राष्ट्रीय एकता और डा० राधाकृष्णन्
१७. राष्ट्रीय एकता और रवीन्द्रनाथ ठाकुर
१८. राष्ट्रीय एकता और शिक्षक
१९. राष्ट्रीय एकता और शासन
२०. राष्ट्रीय एकता और पाठ्यक्रम
२१. भावात्मक एकता समिति की रिपोर्ट : एक विवेचन
२२. पाठ्य पुस्तकें और राष्ट्रीय एकता
२३. कोठारी शिक्षा आयोग और राष्ट्रीय एकता
२४. राष्ट्रीय एकता : कुछ समस्यायें
२५. हिन्दी कविता और राष्ट्रीय एकता
२६. हिन्दी कहानी और राष्ट्रीय एकता
२७. राष्ट्रीय एकता और शिक्षण विधि
२८. अनुशासन और राष्ट्रीय एकता
२९. विद्यालय प्रबन्ध और राष्ट्रीय एकता
३०. राष्ट्रीय एकता और अन्तरराष्ट्रीयता

हमारा पाठकों व लेखकों से विनम्र निवेदन है कि वह हमारे कार्यालय में अपने निबन्ध ३१ दिसम्बर तक अवश्य भेज दें। यदि प्रस्तावित विषय-सची पर ही निबन्ध लिखे जायँ तो उत्तम है, इससे सम्बन्धित विषय-सूची पर भी लेख स्वीकार किए जा सकते हैं।

गत वर्ष 'शिक्षा समस्या विशेषांक' के लिये कार्यालय में अत्यधिक लेख समय पर न आने से, हम उनका उपयोग विशेषांक में करने में असमर्थ रहे थे। अतः लेखकों से निवेदन है कि वे अपना लेख समय से ही भेजने का कष्ट करें। निबन्ध के विषय की सूचना कार्यालय में शीघ्र ही आ जानी चाहिए जिससे कि हम आश्वस्त हो सकें कि आपका निबन्ध किस विषय पर होगा। साधारणतया यदि निबन्धों का आकार फुलस्केप कागज के एक तरफ लिखे हुए ५-६ पृष्ठों तक हो तो उत्तम है। सम्पादक-मण्डल का निर्णय अन्तिम व सर्वमान्य होगा।

अतिरिक्त विवरण के लिए आप कार्यालय के पते पर पत्र-व्यवहार करने की कृपा करें।

—**व्यवस्थापक**

साहित्य-परिचय कार्यालय
डा० रांगेय राघव मार्ग, आगरा–२

बिना टिकट प्रेषण करने का प्रमाण-पत्र संख्या—५७
साहित्य-परिचय दिसम्बर १९६९ पंजीबद्ध संख्या एल-३८५

हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास

- स्नातक एवं स्नातकोत्तर छात्रों के लाभार्थ
- पुस्तकालयों के लिए उपयोगी
- एक महत्त्वपूर्ण कृति का पुनमुद्र ण

लेखक
राजनाथ शर्मा
●
द्वितीय संस्करण
●
डिमाई साइज
●
पृष्ठ संख्या ८१७
●
मूल्य १२.००

हिन्दी साहित्य के 'आलोचनात्मक' और 'विवेचनात्मक' इतिहास के अनेक ग्रन्थ साहित्य के इतिहास लेखकों द्वारा लिखे गए और लिखे जा रहे हैं। किन्तु श्री राजनाथ शर्मा द्वारा लिखित ' ! साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास' में अपनी कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो प्राय: अन्य इतिहासों में नहीं मिलती। हिन्दी में लिखित अनेक शोध-प्रबन्धों की उपयोगी सामग्री का आकलन, पूर्ववर्त्ती साहित्य के इतिहासों में निबद्ध ख्यातिप्राप्त विद्वानों के मतों, मान्यताओं और स्थापनाओं की, विवेचनात्मक और समीक्षात्मक दृष्टि से स्वीकृति ग्रहण, पुष्टि तथा यथोचित निराकरण का समावेश, प्रथम बार इस ग्रन्थ में किया गया है। हिन्दी के आरम्भ काल से आधुनिक काल तक की भाषा के उद्भव और विकास की समस्याओं तथा साहित्य के सर्वाङ्गीण विकास और विधाओं का सम्यक् विवेचन इसमें किया गया है। उच्च कक्षाओं के विश्वविद्यालयी छात्रों तथा प्राध्यापकों के लिए यह प्रमेय बहुल ग्रन्थ उपयोगी एवं संग्रहणीय हो गया है, इसमें सन्देह नहीं। रूढ़िवादी चिन्तनधारा से मुक्त निर्भीक और स्वाधीन समीक्षक की मौलिक और नूतन मान्यताओं से मंडित इस इतिहास से हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि हुई है जिसके लिए लेखक बधाई के पात्र हैं। पुस्तक का मुद्रण और रूपसज्जा सुन्दर और आकर्षक हैं। इसके लिए प्रकाशक श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा प्रशंसा के अधिकारी हैं। हम इस ग्रन्थ का प्रचुर प्रचार चाहते हैं।

—**कैलासचन्द मिश्र**
भूतपूर्व प्राध्यापक–हिन्दी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–२

प्रकाशक एवं मुद्रक : विनोदकुमार अग्रवाल। हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस के हेतु कैलाश प्रिंटिंग प्रेस, आगरा–२ में मुद्रित।